शोध दिशा

ISSN 0975-735X

विश्वस्तरीय शोध-पत्रिका : केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा से अनुदान प्राप्त

शोध अंक 27 | जुलाई-दिसंबर 2014 | 200 रुपए

संपादकीय कार्यालय
हिंदी साहित्य निकेतन, 16 साहित्य विहार,
बिजनौर 246701 (उ॰प्र॰)
फोन : 01342-263232, 07838090732
ई-मेल : shodhdisha@gmail.com
वैब साइट : www.hindisahityaniketan.com

क्षेत्रीय कार्यालय
दिल्ली एन॰सी॰आर॰
डॉ॰ अनुभूति
सी-106, शिव कला
बी 9/11, सैक्टर 62, नोएडा
फोन : 09958070700

हरियाणा
डॉ॰ मीना अग्रवाल
बी-203, पार्क व्यू सिटी-2 सोहना रोड,
गुड़गाँव (हरियाणा)
फ़ोन : 0124-4076565, 07838090237

डॉ॰ हरिशरण वर्मा
एफ-120, सेक्टर 10
डी॰एल॰एफ॰ (के॰एल॰ मेहता स्कूल के पास)
फरीदाबाद (हरियाणा)

(सभी पद मानद एवं अवैतनिक हैं।)

संपादक
डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल

प्रबंध संपादक
डॉ॰ मीना अग्रवाल 07838090237

संयुक्त संपादक
डॉ॰ शंकर क्षेम

उपसंपादक
डॉ॰ रश्मि त्रिवेदी

कला संपादक
गीतिका गोयल/ डॉ॰ अनुभूति

उपसंपादक
डॉ॰ अशोककुमार 09557746346

विधि परामर्शदाता
अनिलकुमार जैन, एडवोकेट

आर्थिक परामर्शदाता
ज्योतिकुमार अग्रवाल, सी॰ए॰

शुल्क
आजीवन :
व्यक्तिगत : चार हज़ार रुपए
संस्थागत : पाँच हज़ार रुपए
वार्षिक शुल्क : पाँच सौ रुपए
यह प्रति : दो सौ रुपए

प्रकाशित सामग्री से संपादकीय सहमति आवश्यक नहीं है। पत्रिका से संबंधित सभी विवाद केवल बिजनौर स्थित न्यायालय के अधीन होंगे। शुल्क की राशि 'शोध दिशा' बिजनौर के नाम भेजें। (सन् 1989 से प्रकाशन-क्षेत्र में सक्रिय)

स्वत्वाधिकारी, मुद्रक, प्रकाशक डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल द्वारा श्री लक्ष्मी ऑफसैट प्रिंटर्स, बिजनौर 246701 से मुद्रित एवं 16 साहित्य विहार, बिजनौर (उ॰प्र॰) से प्रकाशित। पंजीयन संख्या : UP HIN 2008/25034

संपादक : डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल

परामर्श-मंडल

डॉ॰ सुधा ओम ढींगरा, 101, Guymon Court, MorrisVille, NC-27560 USA
डॉ॰ सुरेशचंद्र शुक्ल, अध्यक्ष इंडो-नार्वेजियन सूचना एवं सांस्कृतिक मंच
प्रो॰ हरिशंकर आदेश, भारतीय प्राच्य विद्या संस्थान, कनाडा
डॉ॰ कमलकिशोर गोयनका, ए-98, अशोक विहार फ़ेज-1, दिल्ली 110052
डॉ॰ आर॰पी॰ सिंह (पूर्व कुलपति, मेरठ विश्वविद्यालय) प्राचार्य बरेली कॉलेज, बरेली (उ॰प्र॰)
डॉ॰ अशोक चक्रधर, जे-116, सरिता विहार, नई दिल्ली
डॉ॰ आदित्य प्रचंडिया, प्रोफ़ेसर हिंदी विभाग, दयालबाग एजुकेशनल इंस्टीट्यूट (डीम्ड यूनिवर्सिटी) दयालबाग, आगरा (उ॰प्र॰)
डॉ॰ हरिमोहन, प्रोफ़ेसर हिंदी विभाग, के॰एम॰मुंशी हिंदी विद्यापीठ, आगरा विश्वविद्यालय, आगरा
डॉ॰ बाबूराम, प्रोफ़ेसर एवं अध्यक्ष, हिंदी-विभाग, कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय कुरुक्षेत्र (हरियाणा)
डॉ॰ राजेंद्र मिश्र, 14/4 स्नेहलता गंज, इंदौर 452003 (म॰प्र॰)
डॉ॰ रामसजन पांडेय, प्रोफ़ेसर हिंदी विभाग, महर्षि दयानंद विश्वविद्यालय, रोहतक (हरियाणा)
डॉ॰ दामोदर खड़से, कार्याध्यक्ष, महाराष्ट्र राज्य हिंदी साहित्य अकादमी, मुंबई (महा॰)
डॉ॰ आनंदप्रकाश त्रिपाठी, अध्यक्ष हिंदी अध्ययन मंडल, डॉ॰ हरिसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर
डॉ॰ पद्मा पाटिल, प्रोफ़ेसर एवं अध्यक्ष हिंदी विभाग, शिवाजी विश्वविद्यालय, कोल्हापुर (महा॰)
डॉ॰ माया टाक, पूर्व प्रोफ़ेसर संगीत विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर (राज॰)
डॉ॰ नंदकिशोर पांडेय, प्रोफ़ेसर हिंदी विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर (राज॰)
डॉ॰ अनिलकुमार जैन, प्रोफ़ेसर हिंदी विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर (राज॰)
डॉ॰ हनुमानप्रसाद शुक्ल, प्रोफ़ेसर हिंदी विभाग, महात्मा गांधी अंतर्राष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा
डॉ॰ चंद्रकांत मिसाल, अध्यक्ष हिंदी विभाग, एस॰एन॰डी॰टी॰ महिला विद्यापीठ, पुणे (महा॰)
डॉ॰ मुकेश गर्ग, असिस्टेंट प्रोफेसर हिंदी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली
डॉ॰ जितेंद्र वत्स, प्रोफ़ेसर हिंदी विभाग, मगध विश्वविद्यालय, बोध गया (बिहार)
डॉ॰ हरेराम पाठक, अध्यक्ष हिंदी विभाग, डिगबोई महिला महाविद्यालय, डिगबोई (तिनसुकिया) असम
डॉ॰ शंभुनाथ तिवारी, रीडर हिंदी विभाग, अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय, अलीगढ़ (उ॰प्र॰)
डॉ॰ श्यामधर तिवारी, प्रोफ़ेसर हिं॰वि॰, संघटक महाविद्यालय पौड़ी, गढ़वाल विश्वविद्यालय, श्रीनगर
डॉ॰ दिनेशकुमार चौबे, हिंदी विभाग, पूर्वोत्तर पर्वतीय विश्वविद्यालय, शिलांग (मेघालय)
डॉ॰ सभापति मिश्र, पूर्व प्राचार्य, हंडिया कालेज, हंडिया, इलाहाबाद (उ॰प्र॰)
डॉ॰ शाहबुद्दीन शेख़, प्राचार्य, लोकसेवा कला व विज्ञान महा॰, औरंगाबाद (महा॰)
डॉ॰ योगेंद्रनाथ शर्मा 'अरुण', (पूर्व प्राचार्य) 74/3 नया नेहरूनगर, रुड़की (उत्तराखंड)
डॉ॰ महेशचंद्र, पूर्व असिस्टेंट प्रोफेसर हिंदी विभाग, मेरठ कॉलेज, मेरठ (उ॰प्र॰)
डॉ॰ संतोषकुमार गौड़, असिस्टेंट प्रोफेसर एवं अध्यक्ष हिंदी विभाग, मेरठ कॉलेज, मेरठ (उ॰प्र॰)
डॉ॰ महेश दिवाकर, अध्यक्ष, अंतर्राष्ट्रीय हिंदी साहित्य एवं कला मंच, मुरादाबाद (उ॰प्र॰)
डॉ॰ घनश्याम अरोरा, पूर्व रीडर इतिहास विभाग, वर्धमान कालेज, बिजनौर (उ॰प्र॰)
डॉ॰ सुधारानी सिंह, वरिष्ठ प्रवक्ता हिंदी विभाग, शहीद मंगल पांडेय राजकीय महिला स्ना॰ महा॰, मेरठ
डॉ॰ एम॰एस॰ विमल, सहायक प्राध्यापक अँग्रेजी, शासकीय महाराजा पी॰जी॰ महा॰, छतरपुर (म॰प्र॰)

आजीवन सदस्य

उत्तर प्रदेश/ उत्तराखंड

डॉ॰ रामानंद शर्मा
अध्यक्ष हिंदी विभाग, हिंदू (पी॰जी॰) कालेज
9, जिगर कालोनी, मुरादाबाद (उ॰प्र॰)

डॉ॰ मधुलिका तिवारी
रीडर एवं अध्यक्ष, इतिहास विभाग,
एल॰आर॰ पी॰जी॰ कॉलिज, साहिबाबाद
गाज़ियाबाद (उ॰प्र॰)

श्री हरिराम 'पथिक'
स्नेहगंगा, विष्णुधाम कालोनी,
गली नं॰ 3, न्यू माधोनगर, सहारनपुर (उ॰प्र॰)

डॉ॰ वंदना सेमल्टे
टी॰एफ॰ 7, प्रेरणा अपार्टमेंट्स,
गांधीनगर, गाषियाबाद 201001

डॉ॰ मनमोहन शुक्ल
147, मायापुरी, आवास योजना
झूँसी, इलाहाबाद 211019

श्री अरुणकुमार भगत
माखनलाल चतुर्वेदी राष्ट्रीय पत्राकारिता
एवं संचार विश्वविद्यालय, नोएडा परिसर
'माध्यम' सी-56, ए/5, सेक्टर-62
नोएडा 201301 (उ॰प्र॰)

डॉ॰ विपिनकुमार गिरि
पुराना माधवनगर, भारद्वाज गली,
सहारनपुर (उ॰प्र॰)

प्राचार्या
आर॰बी॰डी॰ महिला महाविद्यालय
बिजनौर (उ॰प्र॰) 246701

डॉ॰ सुधारानी सिंह
सी-54, सेक्टर-3, सुशांत सिटी,
दिल्ली बाईपास, मेरठ (उ॰प्र॰)

डॉ॰ प्रेमव्रत तिवारी
सरस्वती सदन, बेतियाहाता,
गोरखपुर (उ॰प्र॰)

डॉ॰ पूनम भारद्वाज
17 प्रेम विहार, मुजफ़्फ़रनगर 251001
09997100697

श्रीमती अल्पना
द्वारा श्री अरुण कपूर, III एच 288 नेहरू नगर
पवन सिनेमा के पीछे, राकेश मार्ग
गाजियाबाद 201001

डॉ॰ वंदना श्रीवास्तव
के 83 सी आशियाना, लखनऊ 226012
09415917170

डॉ॰ अर्चना वालिया
286, जौनपुर दक्षिण, स्नेहकुंज कालोनी,
कोटद्वार (गढ़वाल) उत्तराखंड 246149

डॉ॰ सुचित्रा मलिक
37 गांधी आश्रम, विष्णु गार्डन
कनखल (हरिद्वार) उत्तराखंड

मध्य प्रदेश

डॉ॰ राजेंद्र मिश्र
14/4 स्नेहलता गंज, इंदौर 452003 (म॰प्र॰)

डॉ॰ स्मृति शुक्ला
ए-16 पंचशील नगर, नर्मदा रोड,
जबलपुर (म॰प्र॰)

डॉ॰ सुरेंद्र यादव
301 नवदीप अपार्टमेंट, 7 शंकर नगर (साकेत),
इंदौर 452018

डॉ॰ ज्योतिसिंह
213 अनूपनगर
सी॰एच॰एल॰ अपोलो हास्पिटल के सामने
ए॰बी॰ रोड, इंदौर 452008 (म॰प्र॰)
09926300355

डॉ॰ चंदा तलेरा जैन
जी-17, रेडियो कालोनी
इंदौर (म॰प्र॰) 452001
09425944773

डॉ॰ वंदना अग्निहोत्री
194 सुखदेव नगर, एरोड्रम रोड
इंदौर (म॰प्र॰) 452001
09926477787

डॉ॰ पुष्पा शाक्य
110, सुंदर नगर मेन
सुकलिया, इंदौर (म॰प्र॰)
09827281203

डॉ॰ चंद्रकिरण अग्निहोत्री
108, रेडियो कालोनी, इंदौर (म॰प्र॰) 452001

प्राचार्य
शासकीय महारानी लक्ष्मीबाई
कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय
किला भवन, इंदौर (म॰प्र॰)

पंजाब/ हरियाणा

श्री हेमांशु शर्मा
हिंदी विभाग, साईंदास ए॰एस॰सी॰ सी॰से॰ स्कूल
पटेल चौक, जालंधर शहर (पंजाब)

प्राचार्या
कमला नेहरू कालेज फॉर वुमैन
फगवाड़ा (कपूरथला) पंजाब

प्राचार्या
कन्या महाविद्यालय
विद्यालय मार्ग, जालंधर (पंजाब) 144004

डॉ॰ विद्या चौधरी
मिर्जापुर फार्म,
कुरुक्षेत्र (हरियाणा) 136119

डॉ॰ विजय इंदु
1608 हाउसिंग बोर्ड कॉलोनी
सेक्टर 10 ए, गुड़गाँव (हरियाणा) 122001

कविता यादव
पुत्री श्री सुनिलकुमार, ग्राम व पोस्ट पालावास
जिला रेवाड़ी (हरियाणा) 123035

डॉ॰ राजाराम अग्रवाल
ग्राम व पोस्ट शेखपुर दरौली
जिला फतेहाबाद (हरि॰) 125053
मो॰ 09896789100

महाराष्ट्र

डॉ॰ अश्विनीकुमार 'विष्णु'
अध्यक्ष अँग्रेज़ी विभाग
सीताबाई आर्ट्स कालेज, अकोला (महा॰)

डॉ॰ शहाबुद्दीन नियाज़ मुहम्मद शेख़
(प्राचार्य, लोकसेवा कला व विज्ञान महा॰औरंगाबाद)
अध्यक्ष, राष्ट्रीय हिंदी सेवी महासंघ
78/484 सिविल हडको, अहमदनगर 414003
09850119687

डॉ॰ लियाक़त मियाँ भाई शेख़
अखिलेश नगर, प्लाट क्र॰ 11
नए बस स्टेंड के पास,
गंगापुर, (औरंगाबाद) महा॰
09423933402

प्रो॰ शेख़ मुहम्मद शाकिर शेख़ बशीर
अध्यक्ष हिंदी विभाग
पूना कालेज ऑफ़ आर्ट्स, कामर्स एंड साइंस
कैंप, पुणे 411201 (महा॰)
09423017017

डॉ॰ मेहमूद रसूल पटेल
दारुल अमन, काशीनगर,
जालना रोड, बीड़ (महा॰)

प्रा. डॉ॰ अभयकुमार रमेश खैरनार
मु. पो. जुनवणे,
तह. जि. धुले (महाराष्ट्र)

प्रा॰ अनंत नानाजी केदारे
5 पार्वती अपार्टमेंट, अयोध्या कॉलोनी
दाते नगर, गंगापुर रोड
नासिक 422005 (महा॰)

डॉ॰ मंजूर चाँदभाई सय्यद
'गुलसिता' 223 औदुंबरनगर, अमृतधाम
पंचवटी, नासिक 422004 (महा॰)
09822991516

डॉ॰ शोभा साहेबराव राणे
17 स्वर समृद्धि अपार्टमेंट, नंदनवन लॉन के सामने
आशाराम बापू आश्रम मार्ग, सावरकर नगर,
गंगापुर रोड, नासिक (महा॰) 422013

डॉ॰ अशोक द्रौपद गायकवाड़
'कृतज्ञता', अवधूत पार्क, आरोह निसर्ग के पास
कादंबरी नगर क्रमांक 1 के पास
पाइप लाइन रोड, सावेडी
अहमदनगर (महा॰) 414003
09822941330

प्रा॰ दत्तात्रय माधवराव टिलेकर
द्वारा संतोष मेडिकल, साई प्रेस्टिज, फ्लैट नं॰ 13
पाटील अली, ओतूर
तह॰ जुन्नर, षिला पुणे (महा॰) 412409
09860229544

डॉ॰ मजीद मुनीर शेख़
ग्राम व पो॰ साष्ट, पिंपल गाँव,
(वाया अंकुशनगर) तह॰ अंबड
ज़िला जालना (महा॰) 431212
09765944586

डॉ॰ भरत त्र्यंबक शेणकर
द्वारा होटल जय महाराष्ट्र
ग्राम, पो॰ व तह॰ अकोले
ज़िला अहमदनगर (महा॰) 422601
09423164521

डॉ॰ पोपट विट्ठल कोटमे
फ्लैट नं॰ 5, सत्यसंगम
कोआपरेटिव हाउसिंग सोसायटी
श्री जयनगर, इंदिरानगर, नासिक (महा॰) 422006
09850760866

डॉ॰ श्रीमती विजयालक्ष्मी नारायण रामटेके
सुशीला सोसायटी, प्लाट क्र॰ 5
अजय जिम के पीछे, तेलरांधे के सामने
जरी पटका रिंगरोड, जरी पटका पोस्ट ऑफ़िस
नागपुर 440014 (महा॰)

प्रा॰ (श्रीमती) ऐनूर अजीजभाई इनामदार
स्वामी समर्थनगर, राजूरी रोड
कोल्हार 413710
तहसील राहाता, जिला अहमदनगर (महा॰)
09011449636

डॉ॰ एस॰एन॰ देवरे
प्लाट नं॰ 17, सिद्धिविनायक कॉलोनी
देवपुर, धुले (महा॰) 424002

प्रो॰ डॉ॰ चंद्रकांत मिसाल
अध्यक्ष हिंदी विभाग,
एस॰एन॰डी॰टी॰ महिला विश्वविद्यालय,
कर्वे रोड,
पुणे 411038 (महाराष्ट्र)

सुश्री शारदा बी. जावरे
ओमकार, समृद्धि डेपलपर, फ्लेट क्र॰ 402
प्लाट नं॰ 26, सर्व क्र॰ 137/1 ए,
बराटे स्कूल के पास, वारजे, मालवाडी,
पुणे 411058 (महाराष्ट्र)
08805616654

सुश्री कामिनी अशोक न्यायाधीश
661 अरुणोदय कालोनी, सिडको एन-5
औरंगाबाद (महाराष्ट्र)
09975773345

प्रा. अशोक शामराव मराठे
116, सखाराम नगर,
पेरेजपुर रोड, साक्री, तह. साक्री,
ज़िला धुले 424304 (महाराष्ट्र)

प्रा. पंजाबी ममता नानकचंद
19/20, त्रिमूर्ति नगर,
मोरे अस्पताल के पास,
साक्री, तहसील साक्री,
ज़िला धुले 424304

प्रा॰ उषा पुंडलिक शिरोळे
द्वारा श्री शशिकांत हरी बागड़े
गुरुकृपा हास्पिटल, डाक पारीपत्यदार
सावतानगर मालेगाँव, तह-मालेगाँव
ज़िला नासिक (महा॰)

प्रा. करुणा दत्तात्रय अहिरे
व्ही.यू.पाटील कला एवं विज्ञान महाविद्यालय,
साक्री, तह॰ साक्री,
ज़िला धुले 424304

प्रा. डॉ॰ प्रमोद गोकुळ पाटील
मु.पो. मोराणे (प्र.ल.)
तह. षिला धुले 424001 (महाराष्ट्र)

प्रा. डॉ॰ संजय विक्रम ढोढरे
7, मोतीरामनगर, वाडीभोकर रोड,
देवपूर, धुले 424002 (महाराष्ट्र)

प्रा. डॉ॰ अश्फाक सिकलगर
जीएफ-102 ताज अपार्टमेंट,
चालीसगाँव रोड, धुले (महाराष्ट्र)

प्रा. डॉ॰ महेंद्रसिंह रघुवंशी
सरस्वती नगर, प्लॉट नं. 10,
वाघेश्वरी मंदिर के पास, नंदुरबार 425412

डॉ॰ रेखा वसंत पाटील
सीतामाई नगर, चालिसगाँव
ज़िला जलगाँव (महा॰) 424101

प्रा. डॉ॰ योगेश गोकुळ पाटिल
प्लॉट नं. 12, नयना सोसायटी,
नकाणे रोड, देवपूर, धुले 424002

प्रा. डॉ॰ मंजू तरड़ेजा (सिंघाणी)
ब्लॉक नं. आर-10, रूम नं. 10,
कुमारनगर, साक्री रोड, धुले 424001

प्रा. डॉ॰ चंद्रमादेवी पाटील
59, धनदाई नगर, गोंदुर रोड, वलवाडी,
देवपूर, धुले 424005 (महाराष्ट्र)

डॉ॰ संजयकुमार नंदलाल शर्मा
38, जमनानंद, गुरुकुल कालोनी,
तलोदा, जि॰ नंदुरबार (महाराष्ट्र) 425413

श्रीमती वर्षा सुभाषचंद्र देशमुख
बी-6, चंद्रवेल अपार्टमेंट, गोविंदनगर होटेल
प्रकाश्या भागे, मुंबई नाका,
नासिक (महाराष्ट्र) 422010

डॉ॰ देवकीनंदन महाजन
1 टेलीफोन कालोनी,
धुले रोड, अमलनेर (जलगाँव) महाराष्ट्र

डॉ॰ कल्पना राजेंद्र पाटील
38, जमनानंद, गुरुकुल कालोनी, तलोदा
जि॰ नंदुरबार (महाराष्ट्र) 425413

प्रा॰ डॉ॰ रामचंद्र माली
अध्यक्ष हिंदी विभाग, क॰वा॰वि॰ महाविद्यालय,
नवापुर, ज़िला नंदुरबार (महाराष्ट्र)

डॉ॰ सुषमा कोंडे
81/ए, प्लाट नं॰ 9/ए,
गिरिदर्शन हाउसिंग सोसायटी, बानेर रोड
पुणे 411007 (महाराष्ट्र)
09822848464

प्राचार्य
विद्यावर्धिनी महाविद्यालय,
धुले (महा॰) 424001

डॉ॰ हेमलता कांचनकर
43 नंदनवन कालोनी (कैंट),
औरंगाबाद (महाराष्ट्र)
09730202528

सुश्री नेहा संदीप घोरपड़े
द्वारा सुश्री सुनीता पवार
फ्लेट नं॰ 404, प्रकाश मेमाराइज
एस नं॰ 73, दूध डेयरी, पुणे-411046

सुश्री निर्मला पुरुषोत्तम तोमर
फ्लेट नं॰ 12, एस नं॰ 137/2
वारजे मलवाडी, पुणे 411058
08087612123

सुश्री भारती मधुकर पाटील
मु॰पो॰ सावलदे, तहसील शिरपूर
ज़िला धुले (महा॰)

प्रा॰ शिंदे नवनाथ सर्जेराव
अध्यक्ष, हिंदी विभाग
सांगोला महाविद्यालय, सांगोला
कडलास रोड, सांगोला (सोलानुर) 413307
09763602304

सुश्री मीनल वार्वे
बी-8, ड्रीम घरकुल,
एम.एस.ई.बी. कॉलोनी के पास,
शिवाजी नगर, जेल रोड,
नासिक रोड (महाराष्ट्र)

प्रा॰ ईश्वर पदमसिंग ठाकुर
जनशक्ति कालोनी
रिंग रोड, फैजपुर
तहसील यावल (जलगाँव)

प्रो॰ दीपक विश्वासराव पाटील
मुकाम पोस्ट सुन्दने
निकट कलाविश्व कंप्यूटर सेंटर
तहसील षिला धुले
घुलेवाडी, संगमनेर (महा॰) 424002
099923811609

डॉ॰ अनिता मधुकर अंतरे
मयूर सोलर ऐजेंसी
स्वामी समर्थ मंदिर के पास
पो॰ लोनी बी के, तालुका रहाता,
षिला अहमदनगर (महाराष्ट्र) 413736
09970343766

डॉ॰ विट्ठलसिंह नंदरामसिंह ढाकरे
'सी' टाइप कालेज
शास्त्रीनगर, लासलगाँव
ज़िला नासिक (महाराष्ट्र) 422306
08888590156

प्रो॰ अमानुल्लाह मो॰ शेख़
श्रद्धा रेजिडेंसी, बिल्डिंग ए, बिंग ए-201
आई॰टी॰आई॰ कालेज के पास
पो॰ मुकिन्दपुर, तह॰ नेवासा
ज़िला अहमदनगर (महा॰)

डॉ॰ उर्मिला मानसिंह गायकवाड
प्लॉट नं॰ 290-292, सेक्टर-29
गुरु स्मृति अपार्टमेंट, ए-विंग, फ्लैट नं॰ 303 रावेत
निकट डी-मार्ट, पुणे 412101
मो॰ 07620225839

डॉ॰ एफ॰एम॰ शाह
द्वारा श्री टी॰एम॰ धुवारे
छोटा दत्त मंदिर के पास, टी॰बी॰ टोली
गोंदिया (महा॰) 441614
मो॰ 07620042772

डॉ॰ शैला पांडुरंग चव्हाण
फ्लेट नं॰ 1, सुविधिनाथ हाउसिंग सोसायटी
मुख्य फायर ब्रिगेड आफिस के सामने
हीरा-मोती शोरूम के पीछे, सिंघाड़ा तालाब
नासिक (महा॰) 422001
मो॰ 09850827138

श्री शेख शिराज हसन
पोस्ट बोरी, तालुका खंडाला (सतारा)
415521 (महा॰)
मो॰ 09011444059

प्राचार्य
कला, वाणिज्य व कंप्यूटर एप्लीकेशन महिला महा॰
डोंगर कठोरे, यावल
षिला जलगाँव (महा॰)

डॉ॰ सचिन कदम
हिंदी विभाग, संगमनेर महाविद्यालय
संगमनेर (महाराष्ट्र)

प्रा॰ पुरुषोत्तम कुंदे
हिंदी विभाग, न्यू आर्ट्स कामर्स एंड साइंस कालेज
शेवगाँव (अहमदनगर) 414502 महाराष्ट्र
09850947267

गुजरात

श्री गुलाबराव शांताराम बाविस्कर
201, के-टॉवर, श्रीनंदनगर
सोखड़ा रोड, छाणी, बड़ोदरा (गुजरात) 391740
09624501415

तमिलनाडु

Dr. V. Jayalakshmi
Mathura, Plot No. 38
5th Cross Street, Gokul Nagar
Preumbakkam, Chennai-600100

कर्नाटक

डॉ॰ जुबैदा हाशिम मुल्लाँ
बैतुल हाशमी, म॰नं॰ 152, ताजनगर
हुबली 580031 (कर्नाटक)

जनसुलभ साहित्य माला

हिंदी साहित्य निकेतन ने जनसुलभ साहित्य माला के अंतर्गत निम्नलिखित पुस्तकों को प्रकाशित किया है। इनमें से प्रत्येक पुस्तक का मूल्य केवल पचास रुपए है। 12 पुस्तकों का पूरा सैट मात्र 500 रुपए में।

कहानी

कमरा नंबर 103 / **सुधा ओम ढींगरा**

इमराना हाषिर हो / **महेशचंद्र द्विवेदी**

कुत्तेवाले पापा / **डॉ॰ मीना अग्रवाल**

प्रेमचंद : कालजयी कहानियाँ / **सं॰ डॉ॰ कमलकिशोर गोयनका**

लघुकथाएँ मानव-जीवन की / **सं॰ सुकेश साहनी, रामेश्वर कांबोज 'हिमांशु'**

कहानियाँ अमेरिका से / **सं॰ इला प्रसाद**

व्यंग्य

दूध का धुला लोकतंत्र / **गोपाल चतुर्वेदी**

आदमी और कुत्ते की नाक / **डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल**

सच का सामना / **डॉ॰ हरीशकुमार सिंह**

व्यंग्य-एकांकी

अफलातून की अकादमी / **डॉ॰ शिव शर्मा**

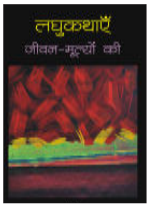

सिनेमा

सिनेमा, साहित्य और संस्कृति / **नवलकिशोर शर्मा**

कविता

मान भी जा छुटकी / **गीतिका गोयल**

संपादकीय

हिंदी और जैनसाहित्य का महनीय शब्द-स्मारक

मानव और उसका जीवन ही मनुष्य के आकर्षण का सबसे प्रमुख केंद्र है। व्यक्ति नाना अंतर्वृत्तियों के माध्यम से अपने आपको अभिव्यक्त करता है। जिस प्रकार गति जीवन का प्रमुख लक्षण है, उसी प्रकार गतिशीलता साहित्य का भी लक्षण है। साहित्य जीवन का सहवर्ती है, क्योंकि जीवन विविधता लिए हुए है। फिर साहित्य में भी विविधता क्यों न हो। मानव-चेतना की अभिव्यक्ति का दूसरा नाम साहित्य है। मानवीय चेतना के इतिहास के प्रथम चरण में मानव-हृदय संवेदनात्मक रागमूलक वृत्तियों की प्रमुखता लेकर चला, परंतु ज्यों-ज्यों जीवन जटिल होता गया, विचारतत्त्व को प्रमुखता मिली और चेतना गद्य में अभिव्यक्ति खोजने लगी। इसीलिए संपूर्ण विश्वसाहित्य में पहले पद्य फिर गद्य का अभ्युदय हुआ।

डॉ॰ महेंद्रसागर प्रचण्डिया के बाह्य और आंतरिक व्यक्तित्व पर दृष्टिपात करें तो दोनों में एकरूपता झलकती थी। डॉ॰ प्रचण्डिया का बाह्य व्यक्तित्व जितना ही आकर्षक और मनमोहक था, उससे कहीं अधिक वे अंदर से उदार एवं दयालु थे। किसी भी परिस्थिति से समझौता करने की कुशलता उनमें विद्यमान थी। डॉ॰ प्रचण्डिया देश व समाज से कभी भी अपने को अलग न कर सके। समाज-हित की भावना उनमें कूट-कूटकर भरी हुई थी। मानवतावादी विचारधारा होने के कारण किसी को दुखी देखकर दुखी हो जाना तथा उसके दुख को दूर करने के लिए प्रयास करना उनका स्वभाव था। व्यक्तिगत स्वार्थ की उपेक्षा करके वे दूसरों की भलाई के लिए हमेशा तत्पर रहते थे। डॉ॰ प्रचण्डिया भारतीय माटी की वह गंध थे, जिसमें जीवन रस-आनंद सर्वत्र महमहाता रहता था। प्रचण्डिया जी भारतीय संस्कृति के अभिवक्ता थे। जनसामान्य के दुख-दर्द से द्रवित होने वाले इंसान और परंपरागत गौरव-गरिमा के संरक्षक थे। कवि, लेखक, समाजसेवक, कुशलवक्ता, संपादक, अध्यापक और शोध-निर्देशक के रूप में आज भी लोग उन्हें याद करते हैं।

डॉ॰ महेंद्रसागर प्रचण्डिया अप्रतिम प्रतिभा के धनी थे। सहज, सरल, सौम्य, सहिष्णु, सद्भावी और सच्चरित्र एवं मानवमूल्यों से संपन्न डॉ॰ प्रचण्डिया ने साधुवत् साहित्य-साधना की। डॉ॰ प्रचण्डिया के विषय में आचार्य डॉ॰ नारायणसिंह दुबे का कहना है कि 'डॉ॰ प्रचण्डिया का कर्मक्षेत्र सहस्रधारा तीर्थ के समान बहुआयामी एवं बहुविस्तृत था। समाजसेवी और साहित्यसेवी डॉ॰ प्रचण्डिया हिंदीभाषा और साहित्य के प्रोफेसर थे। वे एक ओर प्रभावक प्रवचनकार थे तो दूसरी ओर काव्यकार, गीतकार, निबंधकार, जीवनीकार, संस्मरणकार, उपन्यासकार और संपादक थे। संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, पालि, नेपाली, राजस्थानी, गुजराती, अँग्रेजी आदि भाषाओं के ज्ञाता डॉ॰ प्रचण्डिया के शोधप्रबंध, शोधालेख और आलोचना-समालोचना विद्वत समाज में आदरास्पद

हैं। यश:शेष डॉ॰ प्रचण्डिया के समग्र साहित्य का संचयन सात खंडों में होना महनीय और सच्ची श्रद्धार्चना है।'

'डॉ॰ महेंद्रसागर प्रचण्डिया समग्र' खंड एक में पाँच सौ से अधिक गीतों के दस संग्रह–'समय का सूरज' 'वीणा के स्वर' ,'आत्मोदय', 'मानस-मंदाकिनी', 'गीत-गंगा', 'ज्ञानकलश', 'अनमोल वचन', 'सीख-सुरभि', 'समय से संवाद', आतम की आँखों से' संगृहीत हैं। 'डॉ॰ महेंद्रसागर प्रचण्डिया समग्र' का द्वितीय खंड दोहे और मुक्तक से अनुप्राणित 'अष्टक अर्णव', 'सिद्धांत सतसई' (जैनधर्म दर्शन काव्यकोश), 'शब्दों का शतदल' और 'इतस्तत:' नामक रचनाओं से अभिमंडित है। इन दोनों खंडों के आरंभ में चौरानवे वर्षीय संपादकाचार्य डॉ॰ रमाकांत श्रीवास्तव ने 'डॉ॰ महेंद्रसागर प्रचण्डिया : व्यक्ति और स्रष्टा' आलेख में डॉ॰ प्रचण्डिया के व्यक्तित्व और कृतित्व को रेखांकित किया है। उनका कहना है–'आत्मप्रचार और प्रशस्ति से निरंतर निपट उदासीन रहकर उन्होंने मिशनवत् साहित्य के सृजन में विश्वास किया। वह साहित्य के मौन साधकों और उपासकों की परंपरा से संबद्ध होते आ रहे थे, जो अब लुप्तप्राय होती जा रही है।' साथ ही दोनों खंडों में संयोजित डॉ॰ श्रीरंजन सूरिदेव ने अपने आलेख 'कविवर डॉ॰ महेंद्रसागर प्रचण्डिया की काव्यसाधना' में लिखा है कि 'सन् 1945-46 में गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही' के 'सुकवि' से समस्यापूर्ति करने वाले, सन् 1947 में हस्तलिखित पत्रिका 'जैन सौरभ' के संपादन से संपादन-क्षेत्र में प्रवेश पाने वाले, लगभग छह दशकों से अनेक संस्थाओं के पदाधिकारी के रूप में समाज को जागरूक बनाने वाले, अपनी ओजस्वी वाणी से अनेक नगरों में अपने अमूल्य प्रवचनों से प्रेरक अतीत के प्रति आस्था, आगत के प्रति संभावना भरी आशा और वर्तमान को प्रकाशपूरित करने की सामर्थ्य रखने वाले, अपने जीवन को ऋषिभाव से जीने वाले, आदर्श अध्यापक, सफल शोधनिर्देशक, मौलिक चिंतक, तेजस्वी संपादक, कवि, लेखक और समीक्षक विद्यावारिधि डॉ॰ महेंद्रसागर प्रचण्डिया की काव्यसाधना अपने आपमें विशिष्ट है।. ...आज के छंदोबद्ध काव्य की अति दुर्लभता के युग में छंदोबद्ध कविता के कवि डॉ॰ प्रचण्डिया की रचनाधर्मिता का ऐतिहासिक महत्त्व है। .....डॉ॰ प्रचण्डिया की काव्य-साधना एक ओर गीत और दूसरी ओर दोहे, मुक्तक, दशक, सप्तक, अष्टक, आरती आदि काव्यरूपों से अनुप्राणित है।' दोनों खंड के अंत में डॉ॰ महेश दिवाकर द्वारा लिया गया साक्षात्कार काव्यकार प्रचण्डिया की काव्यदृष्टि और जीवनदृष्टि को उजागर करता है।

'डॉ॰ महेंद्रसागर प्रचण्डिया समग्र' के तृतीय खंड में जीवनी, संस्मरण और कथासाहित्य संयोजित है। डॉ॰ प्रचण्डिया द्वारा लिखित जीवनियाँ–'आचार्य श्री नगराज : व्यक्तित्व और कृतित्व', 'बाबू कामताप्रसाद जैन : व्यक्तित्व और कृतित्व' समय, चरित्र तथा व्यक्तित्व से जीवंत और प्रभावंत हो उठी है। कृतिद्वय में श्रवण, मनन, एकत्रीकरण, विश्लेषण, चयन, सज्जीकरण तथा मार्मिक कथन के प्रयास दृष्टिगत होते हैं। संस्मरणकृति 'तीन बातें : तीन यादें' में तथ्यात्मक पद्धति में व्यक्तिगत संपर्क के आधार पर अपने चिर-परिचित व्यक्तियों की चारित्रिक विशिष्टताओं को मार्मिक और रोचक तरीके से रचनाकार ने शब्दबद्ध किया है। 'वैदेही' उपन्यास में 'जैन पद्मपुराण' पर आधृत जनकसुता सीता का चरित्र, सरल, सरस और प्रवाहमयी भाषा में प्रस्तुत हुआ है। अनेक संकलनों तथा समय-समय पर पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित लघु एवं बोध कथाएँ खंड के अंत में नियोजित हैं।

'डॉ॰ महेंद्रसागर प्रचण्डिया समग्र' का चतुर्थखंड में डॉ॰ प्रचण्डिया का आगरा विश्वविद्यालय, आगरा से सन् 1962 में स्वीकृत पीएच॰डी॰ का शोधप्रबंध 'हिंदी का बारहमासा साहित्य' है जिसमें विश्लेषण, विवेचन और वैज्ञानिक पद्धति से बारहमासों के भंडार के द्वार खोलने का प्रशंस्य प्रयास है। इस खंड में ज्ञान, कला और साहित्य के क्षेत्र में बारहमासों की दीर्घ परंपरा की देन का यथार्थ स्वरूप प्रतिभाषित है। खंड पाँच डॉ॰ प्रचण्डिया का डी॰लिट्॰ का शोध प्रबंध 'जैनकवियों के हिंदीकाव्य का काव्यशास्त्रीय मूल्यांकन' है, जो आगरा विश्वविद्यालय, आगरा से सन् 1974 में स्वीकृत हुआ। इस खंड में हिंदी जैनकाव्य परंपरा–15वीं शती से लेकर 19वीं शती तक–के अंतर्गत सौ कवियों के एक हजार काव्यग्रंथों को आधार बनाकर काव्यशास्त्रीय मूल्यांकन निरूपित है।

'डॉ॰ महेंद्रसागर प्रचण्डिया समग्र' का छठा खंड गद्य खंड प्रथम है, जिसमें 'अनुभूति और अभिव्यक्ति', 'शब्द बोलते हैं जब अर्थ अपना', 'चिंतन का चंदन', 'शोधश्री' तथा 'ट्रैक्ट्स' आदि कृतियाँ संगृहीत हैं। 'अनुभूति और अभिव्यक्ति' निबंध-संग्रह में डॉ॰ प्रचण्डिया ने स्वीकार किया था कि 'इन निबंधों में उन सभी भव्य भावनाओं का सामंजस्य है, जिनके नित्य और निरंतर चिंतवन तथा चर्या में चरितार्थ करने की प्रेरणा प्राप्त होती है।' कश्मीर विश्वविद्यालय के प्रोफेसर डॉ॰ रमेशकुमार शर्मा का कहना था–'अच्छी अनुभूति सर्वदा शुभ अभिव्यक्ति में फलित होती है।' 'शब्द बोलते हैं जब अपना अर्थ' निबंध-संग्रह के विषय में आचार्य देवेंद्रमुनि शास्त्री ने कहा था, 'शब्दों में छुपे अर्थ को जब डॉ॰ प्रचण्डिया जाग्रत-उद्घाटित करते हैं तो ऐसा लगता है शब्दों के मर्म को सहज भाषा में जनग्राह्य बना देने की उनकी अपनी कला है।' श्री परिपूर्णानंद वर्मा इस निबंध-संग्रह का प्रणयन समाज के हर वर्ग, हर धर्म, हर जीव का कल्याण करने में सहायक है, ऐसा मानते थे। डॉ॰ राकेश गुप्त का मानना था कि 'डॉ॰ प्रचण्डिया का चिंतन जैनशास्त्रों की रसमयी भूमि से उद्भिद होते हुए भी व्यापक मानवधर्म के आकाश को आच्छादित करता-सा अनुभाव्य होता है।' 'चिंतन का चंदन' संग्रह के निबंधों में दार्शनिक, सामाजिक और सांस्कृतिक विविध बिंदुओं पर मौलिक मूल्य और मूल्यांकन अभिव्यक्त है। 'शोधश्री' में अपभ्रंश और प्राकृत विषयों के उल्लेखनीय शोधालेख हैं। 'महाकवि सूरदास प्रणीत ऋषभदेव काव्य' और 'पालि भाषा का ऐतिहासिक महत्त्व' शोधात्मक निबंध विशेष महनीय हैं। इस खंड के अंत में 'सुखी जीवन कैसे जिएँ', 'आधुनिक जीवन के परिप्रेक्ष्य में अहिंसा', 'तीर्थंकर महावीर : जीवनवृत्त', 'तीर्थ : प्रयोग और प्रयोजन', 'बाहुबली और मस्तकाभिषेक', 'मनुष्य प्रकृति से शाकाहारी' नामक ट्रैक्ट्स अर्थात् लघुपुस्तिकाएँ संकलित हैं।

'डॉ॰ महेंद्रसागर प्रचण्डिया समग्र' खंड सात 'गद्य खंड द्वितीय' में दशद्वार : भव-भव पार', 'सूक्ति-सुधा', 'प्रकीर्णक', 'अमृतपुत्र', 'अर्घ्य' रचनाएँ संयोजित हैं। 'दशद्वार : भव-भव पार' निबंध-संग्रह के विषय में श्रीचंद सुराना 'सरस' ने लिखा था कि 'विद्वान प्रवचनकार प्रचंडिया जी शब्दों के ही नहीं, भावों के भी कलाकार हैं। शब्द-शब्द में छुपे अर्थ को प्रकट कर श्रोता को कुछ नया, कुछ मनभावना ऐसे देते हैं कि पढ़ने-सुनने के पश्चात् भी उसकी अनुगूँज भावों में बनी रहती है। विद्वान साधुचरित डॉ॰ महेंद्रसागर प्रचण्डिया की यह विचारोपयोगी जीवनपोथी बनेगी, ऐसा मुझे दृढ़ विश्वास है।' 'सूक्तिसुधा' की सूक्तियाँ जीवनस्पर्शी चिंतन के सारभूत उदात्तवचनों का गुलदस्ता हैं। इस कृति के 'स्वकथ्य' में डॉ॰ प्रचण्डिया ने लिखा था कि

'मुझे विश्वास है कि 'सुक्तिसुधा' की एक सौ चार विचारमणियाँ जीवन के विविध परिपार्श्वों को नवस्फूर्ति एवं नवचैतन्य से प्रबुद्ध करती हुई जीवन में उल्लास, उत्साह, संकल्प एवं कर्मयोग की स्फुरणा जाग्रत करेंगी।' 'प्रकीर्णक' में आगरा विश्वविद्यालय आगरा के पाठ्यक्रम की पुस्तकों 'काव्यकौमुदी' तथा 'कथाकानन' की भूमिकाओं को संयोजित किया गया है। 'अमृतपत्र' कृति में पत्र-शैली में दस धर्म के संदर्भ में अपनी विचारणा को शब्दित किया है। 'अर्घ्य' कृति में डॉ॰ प्रचण्डिया की स्मृति में डॉ॰ राजीव प्रचण्डिया द्वारा संपादित 'जयकल्याणश्री' मासिक पत्र के श्रद्धार्ध' अंक को शामिल किया गया है, जिसमें देश के गणमान्यजनों ने अपने भावोद्‌गार व्यक्त किए हैं।

इस प्रकार पद्य और गद्य लेखन में समान गति रखने वाले विद्यावारिधि डॉ॰ महेंद्रसागर प्रचण्डिया ने लेखनी और वाणी दोनों से ही हिंदी साहित्य की स्मरणीय सेवा की है। मानव-एकता और मानवता के ज्योतिर्मय भविष्य के प्रति आस्थावान डॉ॰ महेंद्रसागर प्रचण्डिया निस्संदेह विचारक मनीषी थे और जीवन के सही रूप के अन्वेषक दिखाई देते थे। वह समाज के यथार्थ से जुड़े थे और इन्हीं बातों का वर्णन वह अपनी कृतियों में कराते थे। हिंदी साहित्य निकेतन, बिजनौर से प्रकाशित डॉ॰ कनुप्रिया प्रचण्डिया द्वारा संयोजित और प्रोफेसर डॉ॰ आदित्य प्रचण्डिया, डी॰लिट्॰ द्वारा संपादित 'डॉ॰ महेंद्रसागर प्रचण्डिया समग्र' के सात खंड वस्तुतः हिंदी और जैन साहित्य का महनीय शब्द-स्मारक हैं। निश्चय ही हिंदी और जैनसाहित्य जगत् में इनका समुचित स्वागत होगा, ऐसा मुझे विश्वास है।

डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल

अनुक्रम

नरेश मेहता के उपन्यास साहित्य में सांस्कृतिक चैतन्य / **सुनीतारानी** 15
रामकुमार वर्मा रचित 'गजरे तारों वाले' में निरूपित दार्शनिकता / **सुनीतारानी** 23
राजस्थानी लोकसाहित्य में लोकमानस की अभिव्यक्ति के विभिन्न रूप / **सरिता विश्नोई** 31
स्वातंत्र्योत्तर हिंदी व्यंग्य-निबंधकार : सृजन और चिंतन / **संतोष विश्नोई** 38
हिंदी गीत की विकास-यात्रा / **मंजू चौहान** 46
साहित्यिक पत्र-पत्रिकाओं में राजनीतिक एवं सामाजिक चेतना / **डॉ॰ पंकज विरमाल** 52
डॉ॰ कृष्णलाल विश्नोई के साहित्य में प्रकृति-चित्रण / **भावना रानी** 56
कबीरदास की भाषा / **कु॰ रीना रानी, डॉ॰ रेनू उपाध्याय** 63
पंत का विचार-जगत / **डॉ॰ कनुप्रिया प्रचंडिया** 67
दुष्यंतकुमार के काव्य में बिंब एवं प्रतीक-योजना / **बिंदु यादव** 72
मूल्यबोध और समकालीन हिंदी साहित्य / **प्रा॰ डॉ॰ अशोक द्रोपद गायकवाड** 76
पुणे की हिंदी प्रचार संस्थाएँ : एक मूल्यांकन / **शेख शिराज हसन** 80
'एक इंच मुस्कान' में स्त्री-पुरुष मानसिकता / **डॉ॰ नीलांबिका पाटील** 86
भक्तकवि सूरदास और उनकी भक्ति-भावना / **संजयकुमार** 91
गढ़वाली लोकगीत साहित्य में सौंदर्यानुभूति / **डॉ॰ अंबरीषचंद्र चमोली** 101
'गोदान' में 'होरी' की मौत के सामाजिक यथार्थ के आयाम / **डॉ॰ आशीष पांडेय** 108
डॉ॰ अशोक चक्रधर के काव्य में प्रगतिशीलता / **खुशबू जादौन** 116
वाल्मीकि रामायण एवं रामकाव्य-परंपरा में साकेत का मूल्यांकन / **नीलमकुमारी** 123
मैत्रेयी पुष्पा के कथासाहित्य में स्त्री की अर्थ-चेतना / **संजीतादेवी** 129
बीसवीं सदी की महिला-कहानीकारों का सामाजिक चिंतन / **डॉ॰ शशिप्रभा** 133
विज्ञान-पत्रकारिता की अवधारणा और अवसर / **डॉ॰ अरुणकुमार भगत** 139
भारत में महिला सशक्तीकरण एक समाजशास्त्रीय अवलोकन / **डॉ॰ मंजु चौधरी** 145
सुरेंद्र वर्मा का कालिदास प्रासंगिक है / **डॉ॰ देवेंद्र स्वामी** 151
भारतीय सिनेमा के विविध आयामों से झाँकती नारी / **डॉ॰ बी॰के॰ गर्ग** 156
भारतीय साहित्य में भक्तिभाव का विवेचन / **बीनाकुमारी यादव** 159
मैत्रेयी पुष्पा के कहानी-साहित्य का सांस्कृतिक अध्ययन / **सुधा महला** 164
जीवगोस्वामी विरचित गोपालचंपू में सामाजिक परिवेश / **सरिता यादव** 168

गोविंद शर्मा के बालसाहित्य में जीवन-मूल्यों की अभिव्यक्ति / **नरेशकुमार** 175
उपनिषदीय ज्ञान : एक तात्त्विक विवेचन / **महेशकुमार** 179
संत दादूदयाल की दार्शनिक चेतना / **डॉ॰ रणधीर सिंह** 187
कथाकार चित्रा मुद्गल / **प्रो॰ सुचित्रा मलिक, प्रियंका** 192
स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कहानी के परिप्रेक्ष्य में आंचलिक कहानी आंदोलन / **डॉ॰ सुधा** 197
संत ब्रह्मानंद सरस्वती का सामाजिक चिंतन / **ममता देवी, डॉ॰ रणधीरसिंह** 201
रांगेय राघव की औपन्यासिक जीवनियों का राजनीतिक पक्ष / **संतोषकुमार शर्मा** 205
रामकुमार घोटड़ की लघुकथाओं में चित्रित नारी-शोषण / **संतोषकुमार शर्मा** 210
अंतर्राष्ट्रीय साहित्य कला मंच, मुरादाबाद द्वारा आयोजित
अंतर्राष्ट्रीय हिंदी संगोष्ठी : 'हिंदी : दशा और दिशा' संपन्न 215
फेसबुक का कविता-संसार / **डॉ॰ रमेश तिवारी** 218
असाबिया : अरब क्रांति की सशक्त कविताएँ / **डॉ॰ स्मृति शुक्ल** 224
इक उम्मीद से दिल बहलता रहा / **अभिजीत** 229

शोध
दिशा

के आजीवन सदस्य बनकर शोध और साहित्य के क्षेत्र में अपना अमूल्य सहयोग दीजिए। आजीवन सदस्यों को पत्रिका के पहले छपे अंक बिना मूल्य भेंट किए जाते हैं।

नरेश मेहता के उपन्यास-साहित्य में सांस्कृतिक चैतन्य

सुनीतारानी
प्राचार्या, आर्य कन्या गुरुकुल
शिक्षण महाविद्यालय, मोर माजरा, करनाल

संस्कृति के विविध उपादानों के प्रति चैतन्यवृत्ति वास्तव में सांस्कृतिक चेतना है। संस्कृति के प्रति जानकारी होने के साथ-साथ सांस्कृतिक मूल्यों के प्रति सहृदयता ही सांस्कृतिक चेतना का आरंभिक स्तर कहा जा सकता है। संस्कृति किसी भी राष्ट्र अथवा समाज-विशेष की गतिविधियों की परिचायक होती है, इसीलिए वही राष्ट्र आज के समय में संपूर्ण है, जिसकी अपनी संस्कृति और सभ्यता जीवित है। विशाल राष्ट्र के गरिमामय इतिहास की एकमात्र साक्षी संस्कृति होती है। कोई भी राष्ट्र अपने गौरवशाली अतीत को तभी प्रस्तुत अथवा व्याख्यायित कर सकता है, जब उसकी कोई निजी संस्कृति हो। डॉ॰ रामसजन पांडेय ने संस्कृति की महत्ता के संदर्भ में लिखा है कि संस्कृति से मनुष्य सज-सँवरकर, आनंदित होकर दूसरे को प्रसन्न-प्रमुदित कर उदात्त मानवीय पथ पर अग्रसर होता है।'[1]

'संस्कृति' मूलतः एक संप्रत्यय है, किसी गोचर वस्तु अथवा पदार्थ का सूचक नहीं। इसलिए संस्कृति के जितने भी अर्थ मिलते हैं, वे सभी 'संस्कृति संप्रत्यय' को विभिन्न दृष्टिकोणों से स्पष्ट करने का प्रयास-मात्र हैं। यही तर्क संस्कृति की परिभाषा पर भी दिखाई देता है। अंतिम रूप से संस्कृति को किसी परिभाषा में बाँध पाना मुश्किल काम है। डॉ॰ वासुदेवशरण अग्रवाल लिखते हैं कि 'मानव ने अपने लिए अनेक मार्गों का विधान बनाया, उसकी वह कर्मसृष्टि भी मानवीय संस्कृति का महत्त्वपूर्ण अंश है। प्राणों की शक्ति का कर्ममय पराक्रम मानव की अपूर्व उपलब्धियों का क्षेत्र रहा है, उसमें जो धर्म और नीति की उदात्त प्रेरणा निहित है, वह संस्कृति का अंश है। इस प्रकार दर्शन, धर्म, साहित्य, जीवन और कला के क्षेत्र में मनुष्य की समस्त कृतियाँ और रचनाएँ उसकी संस्कृति हैं। संस्कृति जीवन के वृक्ष का संवर्धन करने वाला रस है।'[2] मनुष्य जिस रूप में जिस प्रकार से सृजन करता है और अपने सामूहिक जीवन को हितकर एवं सुखी बनाने के लिए जिन राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक संस्थाओं एवं प्रथाओं को विकसित करता है, उन सबका समावेश हम संस्कृति में करते हैं।'[3]

इतिहासकार और साहित्यमनीषी एकमत होकर स्वीकार करते हैं कि प्राचीन आचार्य विलक्षण और प्रतिभाशाली पुरुष थे। उन्होंने संस्कृति के विभिन्न क्षेत्रों, धर्म, दर्शन-साहित्य, व्याकरण, तर्क-शास्त्र, गणित, कला, राजनीति, संगीत आदि में विलक्षण प्रगति की थी। प्राचीन भारतीयों की चारित्रिक और विचारगत चेतनाओं का यथातथ्य ज्ञान सांस्कृतिक अध्ययन से ही हो सकता है। विविध विद्वानों द्वारा विविध परिभाषाओं का सृजन इसी तथ्य का द्योतक है। पाश्चात्य

विद्वानों ने संस्कृति को व्यवहारगत समष्टि[4] सामाजिक परंपराएँ[5] सीखा हुआ व्यवहार, जीवन के मूल्यों[6] की उपलब्धि माना है। बेकन महोदय मानते हैं कि 'संस्कृति को मानवता का वह प्रयत्न कहा जा सकता है, जिसमें वह अपने आंतरिक स्वतंत्र अस्तित्व को प्रभावपूर्ण ढंग से स्थापित करती है।'[7] ई॰बी॰ टाइलर के मत में 'सांस्कृतिक ज्ञान, विश्वास, कलाकृति, नैतिक नियम, आचार-व्यवहार तथा मनुष्य की अन्य उपलब्धियों को व्यक्त करने वाला शब्द है।'[8] इसी प्रकार जॉन **लूइस** के मतानुसार 'आचार-व्यवहार, प्रथाएँ, मान्यताएँ, दृष्टिकोण, भावनाएँ और अन्य सामाजिक व्यवहार अनेक तत्त्वों से प्रभाव ग्रहण करते हैं। ये समाज का निर्माण करते हैं। यह परंपरा समाज के सभी व्यक्तियों की थाती है। इन सभी प्रचलित और सर्वमान्य व्यवहारपद्धतियों को समष्टि रूप से संस्कृति की संज्ञा दी जाती है। वर्गों और मनुष्यों के पारस्परिक संबंध और इनके समस्त सापेक्ष व्यवहार सामान्य रूप से स्वीकृत होकर संस्कृति का रूप खड़ा करते हैं।'[9]

मैथ्यु आर्नल्ड ने अपने ग्रंथ में 'कल्चर' पर जो चिंतन किया है, उसका निष्कर्ष यह है कि 'कल्चर एक ऐसी प्रक्रिया है, जिसके माध्यम से मानव-मन पाश्विक वृत्तियों से अलग होकर मानवीयता से संपृक्त होता है तथा व्यक्ति को वह सामाजिक भावना से संपर्क कराती है। वस्तुत: 'कल्चर' शब्द जीवन गति, परिपूर्णता तथा उसके सौंदर्य तथा प्रकाश का बोधक है।'[10]

भारतीय विद्वानों ने भी बड़े सुंदर और सार्थक शब्दों में संस्कृति को परिभाषित किया है। महादेवी वर्मा मानती हैं कि 'संस्कृति मानव-चेतना का ऐसा विकासक्रम है, जो उसके अंतरंग और बहिरंग को परिष्कृत करके विशेष जीवन-पद्धति का सृजन करती है। संस्कृति मानव-चेतना की प्राकृतिक ऊर्ध्वगति का प्रकाशन है। मानव की अंत:भूमि और प्रसुप्त विशेषताओं की परिष्कृति और अभिव्यक्ति है।'[11] राहुल सांकृत्यायन भी मानते हैं कि 'एक पीढ़ी आती है। वह अपने आचार-विचार, रुचि-अरुचि, कला-संगीत, भोजन-छाजन या किसी और दूसरी आध्यात्मिक धारणा के बारे में कुछ स्नेह की मात्रा अगली पीढ़ी के लिए छोड़ जाती है। एक पीढ़ी के बाद दूसरी, दूसरी के बाद तीसरी और आगे बहुत-सी पीढ़ियाँ आती-जाती रहती हैं और सभी अपना प्रभाव या संस्कार अगली पीढ़ी पर छोड़ती जाती हैं। यही प्रभाव (संस्कार) संस्कृति हैं।'[12] डॉ॰ देवराज के शब्दों में कहा जा सकता है कि 'संस्कृति वस्तु-जगत् के उन पहलुओं की जीवंत एवं शक्तिपूर्ण चेतना है, जो उपयोगी न होते हुए भी अर्थवान् होते हैं। लाभदायक न होते हुए भी महत्त्व रखते हैं।'[13] डॉ॰ हजारीप्रसाद द्विवेदी का मानना है कि 'संस्कृति मनुष्य की विविध साधनाओं की सर्वोत्तम परिणति है।'[14] भगवतशरण उपाध्याय लिखते हैं कि 'संस्कृति का संबंध सामाजिक जीवन से अधिक है, जब समाज एक ही रीति से कुछ करता है, एक ही विश्वास रखता है, एक ही प्रकार के आदर्श सामने रखता है, अपने पुरखों के कामों का समान रूप से आदर, गर्व, गौरव की चीज समझता है, तब संस्कृति का जन्म होता है। संस्कृति आदमी के सामाजिक जीवन का प्राण है।'[15]

रामधारीसिंह दिनकर ने संस्कृति को वैश्विक संदर्भ में परिभाषित करते हुए लिखा है कि 'संस्कृति जिंदगी का एक तरीका है और यह तरीका सदियों से जमा होकर उस समाज में छाया रहता है, जिसमें हम जन्म लेते हैं। इसलिए जिस समाज में हम पैदा हुए हैं अथवा जिस समाज में हम जी रहे हैं, उसकी संस्कृति हमारी है। संस्कृति वह चीज मानी जाती है, जो हमारे सारे जीवन को लिए हुआ है तथा जिसकी रचना और विकास में अनेक सदियों के अनुभवों का

हाथ है। यही नहीं संस्कृति हमारा पीछा जन्म-जन्मांतर तक करती है।'[16]

संस्कृति वस्तुतः एक ऐसा साधन है, जो मनुष्य को उच्चतम नैतिक शिक्षा तक ले जाती है। संस्कृति ही वह दर्पण है, जिसमें समाज अथवा राष्ट्र के सभी आयाम नैतिक, सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक आदि प्रतिबिंबित होते हैं। वस्तुतः यह मानव-विकास की प्रथम सीढ़ी है।

नरेश मेहता के उपन्यास साहित्य में सांस्कृतिक चैतन्य के विविध पक्ष दृष्टिगोचर होते हैं। उनके द्वारा रचित 'दो एकांत' नामक उपन्यास में जीवन के प्रति आस्थावादी दृष्टिकोण का उदाहरण प्रस्तुत है–

'विवेक और वानीरा के बीच में जो कुछ हुआ है, वह अन-हुआ नहीं कहा जा सकता है। कारण, कि चाहे लगता हो कि हमारा मन बालू का है, पर वास्तव में होता वह चट्टान ही है। एक बार अंकित हो जाने पर उसे विकृत-विस्मृत भले ही कर दिया जाए, पर वह सदा-सदा के लिए किसी-न-किसी रूप में हमें ढालने के लिए विद्यमान रहता है। व्यक्ति भूल सकता है, विस्मृत नहीं कर सकता। जबकि वानीरा जानती है–'कि उसे 'निर्जनसिक्ता' में जाकर शेष जीवन-पर्यंत वैसे ही रहना है जैसे कि पुरातत्त्वी लोग किसी ऐतिहासिक प्रतिमा को संग्रहालय से लाकर प्रतिस्थापित कर देते हैं।.... वह उस बंद घड़ी की तरह हो गई है जिसकी चाबी आनंद इलाहाबाद जाते समय अपने साथ ले गया है।' सारे घड़ित्व के होते हुए भी बंद। विवेक को अनिवार्य बोझ लगती है तो वह विवेक से कहना चाहती है कि विवेक इस अनिवार्य को काट फेंको, लेकिन यह या वह कुछ भी तो करने को मन नहीं करता। ठीक है, उसके हठात् चोट को वैसे ही रहा है जैसे कि शीशे पर जोर का प्रहार हुआ हो, और शीशा चूर-चूर हो उठने पर गिरा हो, यह वैसा ही टूटापन अपने अंतर में लिए वह संयुक्त दिख भर रही है, है नहीं। उसने तो कभी विवेक पर यह व्यक्त नहीं किया, चूँकि वह अमूल्य दर्पण है, इसलिए टूटा होने पर विशिष्ट है, अतः वह भार वहन करे।'[17]

वानीरा तथा विवेक अलग-अलग कटे अपने हृदय का भार लिए एक साथ रहते हुए भी नितांत एकाकी हैं। इस रूप में 'दो एकांत' उपन्यास बड़ा सार्थक सिद्ध हुआ है। उनके एक साथ रहने में वैवाहिक-बोध की विडंबना ही सिद्ध होती है। विवेक सब-कुछ जानकर भी मौन बना रहता है। वह अपने को संरक्षक मान बैठा है। यही कारण है कि यह जानते हुए भी कि वानीरा उससे बहुत दूर है, उसने अपने आपको लगाए हुए है, बाँधे हुए है। वह अंत में मानता है कि इस गृहस्थी रूपी रथ का कृष्ण के अनुरूप वह सारथी है, यदि वह पहले उतर जाता है तो वह रथ जल जाएगा जैसे कि महाभारत के युद्ध की समाप्ति के उपरांत कृष्ण ने अर्जुन से कहा था कि रथ से पहले तुम उतर जाओ, मेरे उतरने के उपरांत यह रथ जल जाएगा, परंतु इस प्रकार के संरक्षण की भावना को उसने अपनी ओर से ही अपने पर थोप रखा है, जबकि वानीरा ने कभी नहीं चाहा कि उसे मूल्य दर्पण के समान जो टूट चुका है, विशिष्ट मानकर अपनाए रहे। जबकि इसके पूर्व पारिवारिक मूल्यों में आधिपत्य को महत्त्व दिया जाता था। नरेश मेहता ने इस उपन्यास में अपने विचार जीवन के प्रति आस्थावादी और मार्मिक विचार प्रस्तुत किए हैं। 'नदी यशस्वी है' उपन्यास में जीवन के प्रति आस्थावादी दृष्टिकोण का एक अन्यतम उदाहरण देखिए–

'कुछ लोग वाणी से अधिक दाँतों से बोलते हैं। ऐसा बोलना मुख से बोले गए से कितना

अधिक सार्थक होता है न? मेरी ठोढ़ी छूकर अपना हाथ चूम लिया। शारदा ने सवेरे बताया था कि तुम भी आए हो। मैं पूछना चाह रहा था कि मेरा आना उनके निकट क्या कोई अर्थ भी रखता है? परंतु इतनी देर बाद मेरी चेतना में पहली बार सुनंदा ने पलकें झपकाईं और बोली,...."[18] 'उनके कह देने के बाद वस्तुत: मेरे पास कुछ भी नहीं रह जाता है, पर आज तक का मेरा संघर्ष ही यह है कि कैसे कहूँ? यदि कहूँ कि महिम बाबू, गोपा मात्र एक छत है तो क्या आप तक कुछ अभिव्यक्त होता है? एक ऐसा दंश जो अहोरात्र मेरे व्यक्तित्व में वैसे ही पीड़ा देता है जैसे कि युद्ध में किसी की पसलियों में बाण की एक नोक टूटकर जीवनभर के लिए फँसी रह जाए और वह उस टुकड़े के लिए जीने के लिए बाध्य हो।'[19]

परंपरा और आधुनिकता के द्वंद्व का चित्रण भी नरेश मेहता ने अपने उपन्यासों में यथाप्रसंग किया है। 'परंपरा' शब्द वस्तुत: पाश्चात्य साहित्य में प्रचलित ट्रेडिशन का पर्यायवाची और समानधर्मी है। परंपरा पर विचार करते समय उसकी मूल चेतना को ध्यान में रखना आवश्यक है। परंपरा अतीतोन्मुखी होती है। आज का वर्तमान कल अतीत बन जाता है। गति का यह क्रम शाश्वत है। अतीत, वर्तमान और भविष्य एक-दूसरे में अनुस्यूत होकर काल की अटूट शृंखला का निर्माण करते हैं। साहित्य में अतीत और वर्तमान के रूप में परंपरा की स्थिति देखी जा सकती है। अतीत और वर्तमान का सापेक्ष महत्त्व है। परंपरा अपने व्यापकत्व के कारण जीवन के प्रत्येक स्रोत को अपने में समाहित किए हुए है। परंपरा का व्युत्पत्तिपरक अर्थ है–'सौंपना'। परंपरा के इस अर्थ से दो बातें स्पष्ट हो जाती हैं। एक धरोहर है, जो सौंपी जाती है, दूसरे उस धरोहर का रक्षक है जिस पर धरोहर की समुचित रक्षा और तदुपरांत उसे अन्य उत्तराधिकारियों को सौंपने का भार होता है। परंपरा के इस अर्थ से उसकी मूल चेतना का स्पष्ट बोध हो जाता है। वस्तुत: परंपरा एक ऐसी वस्तु है, जिसे एक हाथ से लिया जाता है और दूसरे हाथ से दिया जाता है और यह लेन-देन अपने आपमें ही होता है–

ढोऊँगा कहाँ तक/ परंपरा-व्यर्थ का बोझ है/ दे दूँ कैसे/ किसी योग्य याचक को ऐसा सोच/ ऊपर को उठ आया दायाँ हाथ/ पर ज्यों ही हुआ देने को दान/ सहसा मुझे याचक पहचाना लगा/ रोशनी में देखा/ अरे! वह तो मेरा ही-बायाँ हाथ था।[20]

'डूबते मस्तूल' की रंजना दांपत्य जीवन की पातिव्रत्य-संबंधी मान्यताओं को, एक के बाद एक तीन-तीन चार-चार पुरुषों को पति के रूप में स्वीकार कर विशृंखलित कर देती है। 'नदी यशस्वी है' का उदयन नौकरानी कावेरी से व्यावहारिक रूप में यौन संबंधों का ज्ञान प्राप्त कर किसी भी प्रकार की हीनता अनुभव नहीं करता। 'प्रथम फाल्गुन' के महिम की मान्यता है कि–'जीवन बड़ा निर्मम होता है। स्पष्ट है जीवन के प्रति आनंद और उल्लास का दृष्टिकोण कहीं नहीं है। जीवन भार बन गया है जिसको अनचाहे सभी ढो रहे हैं।'[21]

नरेश मेहता कृत 'धूमकेतु : एक श्रुति' की वल्लभा को देखिए और उदू उसके समीप की अनुभूति किस तरह व्यक्त करता है–

'उनकी कमर को घेरकर चिकनी पीठ पर ठंडापन अनुभव कर रहा था। मेरी टाँग अपनी जाँघों में दबा मुझे बाँह में भर सटाते हुए वल्लभा ने बादल का मुँह दो अँगुलियों से ठेलकर मेरे मुँह में लगा दिया। केवल मुझे यही लगा कि संपूर्ण वल्लभा उस बादल से होती हुई मुझमें, मेरी संपूर्ण 'माँ' बनती हुई उतर रही थी। वल्लभा, संध्या आकाश की तरह नीली पड़ती गयी और

मैं देर तक सूर्यास्त की तरह होता चला गया, होता चला गया।'[22]

उपर्युक्त संदर्भ में नरेश मेहता के उपन्यासों में चित्रित मार्क्सवादी और अस्तित्ववादी चिंतन सूत्रों के उदाहरण द्रष्टव्य है–'पच्चीस वर्ष एक संपूर्ण जीवन की आहूति। उनकी आँखें सुलग रहीं थीं। अंग-अंग से थकान वैसे ही फट रही थीं जैसे कि इस समय दीवारों से वृष्टि-जल मनमाने ढंग से फूट निकल बह रहा था। अकेली लालटेन साक्षी थी कि उनकी पलकें भीगनी शुरू हुई थीं। बाहर की वृष्टि क्रमशः अंतर में भी होने लगी थी। उनका पुरुषार्थ, दीमक खायी पुस्तक था। आज उसका कोई मूल्य नहीं था।'[23]

नरेश मेहता नारी के स्वतंत्र अस्तित्व और व्यक्तित्व के हामी हैं। 'डूबते मस्तूल' 'दो एकांत', 'प्रथम फाल्गुन' इसके प्रमाण हैं। अन्य उपन्यासों में भी उन्होंने नारी की अवश शोषणपूर्ण स्थितियों के चित्र अंकित किए हैं और उसकी अस्मिता की तलाश में वे उसके साथ चले हैं। नारी-शोषण के विरोध का भाव उनकी सभी औपन्यासिक कृतियों में देखा जा सकता है। स्त्री प्रकृत्या चौकन्नी है। इसके लिए स्त्री को कोई किताब पढ़ने की भी आवश्यकता नहीं पड़ती। किताबों से तो पुरुष सीखता है जबकि वस्तुतः स्त्री सीखती नहीं, सिखाती है। नरेश मेहता सामाजिक विसंगतियों के उन्मूलन के पक्षधर हैं। 'उत्तर कथा', 'धूमकेतु : 'एक श्रुति', 'यह पथ बंधु था', 'नदी यशस्वी है' आदि में उन्होंने पुरातन रूढ़ियों, परंपरागत सोच और तज्जन्य नाना विषमताओं, विसंगतियों और विडंबनाओं के माध्यम से अपनी इसी पक्षधरता को मुखर किया है। नरेश मेहता ने मनोवैज्ञानिक धरातल पर अपने विभिन्न गुण-दोषों से युक्त सहज मानवीयता की प्रतिष्ठा की है। वे मनुष्य को न तो राक्षस मानते हैं और न उसे देवता के रूप में प्रतिष्ठित करना ही उन्हें अभीष्ट है। उनकी मान्यता है कि उसका सहज मनुष्य रूप ही वरेण्य है। संबद्ध युग का विशद चित्रण करना भी नरेश मेहता का उद्देश्य रहा है। यों तो सभी उपन्यासों में न्यूनाधिक युगीन झाँकी मिलती ही है, तथापि 'उत्तरकथा' और 'यह पथ बंधु था' का तो प्रमुख उद्देश्य ही सामाजिक यथार्थ का चित्रण करना है। नरेश मेहता ने 'उत्तर कथा' उपन्यास में भारतीय समाज की विभिन्न परंपराओं का सजीव चित्रण प्रस्तुत किया है–'मायके की नाइन भी बहू के साथ आई थी, जो उचित ही था, परंतु जब उड़ते-उड़ते किसी ने सुना बहू के कोई काका हैं, जो रात को साथ ही लिवा ले जाने के लिए आए हैं तो कुछ अजीब-सा ही लगा था कि ऐसा भी कहीं होता है।'[24] समाज के अधिकांश व्यक्तियों की यह प्रवृत्ति होती है कि वे निर्बल के नहीं अपितु सबल के हितैषी होते हैं। नरेश मेहता ने अपने उपन्यास साहित्य में मानव की गिरगिटी स्वार्थपरता एवं गिरगिट की भाँति रंग बदलने की नीति का सूक्ष्म चित्रण किया है।

'यह पथ बंधु था' के प्रमुख श्रीधर के बारे में सामाजिक प्रतिक्रिया का नरेश मेहता ने शब्दों में किया है–'लोकमुख के आँख नहीं होती मात्र जिह्वा होती है। श्रीधर बाबू के जाने को जिन्होंने उस समय 'भागना' कहा था। वे ही अब 15 साल बाद इस अज्ञातवास को एक कर्मठ व्यक्ति का 'समाधिकाल' कहने लगे। मंदिर के जलघड़िया दामोदर ने अब 'शंखनाद' की प्रति देखी और आश्वस्त हुआ तब उसने उतनी ही तन्मयता से श्रीधर बाबू की स्तुति आरंभ कर दी, जितनी की वह निंदा किया करता था।'[25]

नरेश मेहता ने भारतीय समाज में स्त्री के द्वारा पुरुष की अपेक्षा झूठी शान-शौकत के भावों को व्यक्त करने की प्रवृत्ति का चित्रण किया है–'स्त्री को यदि एक बार केंद्रीय पद मिल

गया तो वह जीते जी उससे कम स्वीकार नहीं कर सकती।'[26] नरेश मेहता ने अपने उपन्यासों में भारतीय नारी के चरित्र व गुणों का सजीव चित्रण किया है–'पंडित त्र्यंबक शुक्ल ने तो कहा भी होगा। (अलग रहने को) परंतु दुर्गा को ही स्वीकार नहीं हुआ भले ही उसने सास की काफी यातनाएँ सहीं।'[27] समाज में ऐसे अनेक प्रभावशाली व्यक्ति होते हैं, जिनकी समाज में प्रशंसा की जाती है। नरेश मेहता ने इस तथ्य पर कटाक्ष करते हुए समाज की एक वास्तविक कमजोरी को उजागर किया है। जनसमुदाय प्रभावशाली व्यक्तित्व का अंधाधुंध अनुकरण करता है, उसकी जय-जयकार करता है, पर उस व्यक्ति के उन घिनौने कार्यों की ओर कोई नहीं देखना चाहता, जो निर्बलों पर अत्याचार करते हैं। समाज के मजबूर वर्ग की कमजोरी का लाभ उठाते हैं। हमारे समाज में प्राय: किसी की मृत्यु होने के एक वर्ष तक किसी प्रकार का शादी-ब्याह या अन्य कोई शुभ कार्य नहीं किया जाता, पर अब तो एक वर्ष तक, जब तक छमछटी (संवत्सरी, वार्षिकी) न हो जाए, तब तक कोई मांगलिक कार्य नहीं हो सकता। हाँ, विधान तो ऐसा ही है, 'परंतु आपत्ति काले मर्यादा नास्ति' भी वचन है। त्र्यंबक, यदि बहुत आवश्यक हो तो पूजन आदि का भी प्रावधान है। ...तुम्हें अपने विवाह की तो याद ही है... सारे विधान ताक में रह गए थे और विवाह हुआ था कि नहीं?'[28]

भारतीय समाज में निश्चय ही अनेक प्रकार के रीति-रिवाज एवं मर्यादाएँ हैं, परंतु विशेष परिस्थितियों में उन मर्यादाओं में उदारीकरण का भी प्रावधान है, जिसे नरेश मेहता ने बड़े सजीव रूप में चित्रित किया है। सामाजिक प्रथा का एक अन्य उदाहरण देखिए–'प्रथा के अनुसार दो-एक दिन बाद नववधू को मायके वाले वापस ले जाते हैं, इसके लिए बहू के घर-परिवार का कोई स्वजन एक-दो दिन बाद आता है और लिवा ले जाता है। दुनिया जिसकी प्रशंसा करती है, उसकी शिकायत किससे की जाए।'[29]

नरेश मेहता का उपन्यास-सृजन का उद्देश्य लखनऊ (प्रथम फाल्गुन, डूबते मस्तूल) महू, इंदौर, उज्जैन (उत्तरकथा, नदी यशस्वी है, यह पथ बंधु था), काशी (यह पथ बंधु था, उत्तर कथा-द्वितीय खंड) नगरों के जीवन का चित्रण करना भी रहा है। यथा–'उज्जैन बहुत तेजी से आधुनिक नगर बनता जा रहा था। नगर में तथा नगर के बाहर नए ढंग से मकान आदि बन रहे थे। आगर-लाइन लगभग तैयार हो चुकी थी। बड़े स्टेशन से थोड़ा हटकर इस छोटी लाइन का स्टेशन बन रहा था। फ्रीगंज का टावर बन चुका था, अभी उसमें घड़ी आना बाकी थी। एक सरीखे मकान, एक सरीखे चौराहे और खूब खुली सड़कें, पेड़ों की लंबी-लंबी कतारें, सब कितना अच्छा लगने लगा था? ...कॉलेज के बन जाने से फ्रीगंज में किरायेदार खूब मिलने लगे थे।'[30] उज्जैन में वस्तुत: गोपाल मंदिर चौक दो हिस्सों में है। मंदिर के ठीक सामने के चौक में दाहिने हाथ वाली सड़क पटनी बाजार कहलाती है तथा वही सड़क मंदिर के सामने से होती हुई बोहरा-बाखल की तरफ चली जाती है। गोपाल मंदिर का मध्यकालीन स्थापत्य पेशवाई युग का है। मंदिर में सड़क की ओर पूजा-पाठ की, धार्मिक पुस्तकों की कई दुकानें हैं।'[31]

लखनऊ के 'एम्बेसेडर होटल' के दृश्य का चित्रण करके उपन्यासकार ने आधुनिक संस्कृति को बखूबी चित्रित किया है–'और दोनों ने सड़क पार करने के पूर्व इधर-उधर ताका। शाहनजफ रोड, जहाँ गंज की सड़क से मिलती है, उसके ठीक सामने एम्बेसेडर होटल अपने राजसी वैभव के साथ गर्मियों की इस शाम भी विद्यमान था। यद्यपि अन्य मौसमों में यहाँ गाड़ियाँ,

घोड़ा गाड़ियाँ तथा लखनऊ के सभी संभ्रांत व्यक्ति इसके दरवाजे से आते-जाते देखे जा सकते हैं, पर इस समय काफी शांति लग रही थी। दरबान ने जैसे ही दरवाजा खोला, भीतर अपेक्षाकृत ठंडा था। एम्बेसेडर होटल एक प्रकार से लखनऊ से संभ्रांत लोगों का हर तरह का अड्डा था।'[32]

मालती संस्कृति के अंतर्गत ग्रामीण परिवेश का चित्रण भी उपन्यासकार ने किया है– 'दाहिने हाथ वाला रास्ता बिल्वामश्तेश्वर चला जाता है, लेकिन हमें बायें हाथ वाले पर जाना था। **बेट** के बीचों-बीच वह बँगला था जहाँ हम जा रहे थे। पश्चिमी सिरे पर बिल्वामश्तेश्वर का मंदिर था जिसकी ऊँची सी भगवा झंडी सघन पेड़ों बीच फहराती दिख रही थी। बेट के सघन कतार में पतली-पतली पगडंडियाँ छोटी हरी घासों के बीच से चली जा रही थीं। बनारसी संस्कृति पर भी एक दृष्टिपात नरेश मेहता ने किया है–'और सीना पोंछते हुए हँसने लगे। पान खोलकर श्रीधर को दिया और दो अपने से जमाए। सुरती और चना खाकर गंजी पहनते हुए विशिष्ट बनारसी पनवा-खा शैली में बोले, गजाधर बाबू नीचे रहे न?

कौन गजाधर बाबू?

अने ओ ही जौन मोटे से हंय, अच्छा खाइइ! नीचे पहुँचकर शास्त्रीजी ने एक मिनट सोचा और तद्वत धीमे से बोले, पहिले इस केशववा से जुगाड़ लड़ाया जाए।'[33]

नरेश मेहता ने अपने उपन्यास 'नदी यशस्वी है', 'यह पथ बंधु था' व उत्तर कथा (दोनों खंड) में तीर्थ पुरोहित, शिवभक्त ब्राह्मणों के आचार-विचार, उनके धार्मिक कर्म तथा यजमानों के साथ उनके व्यवहार का अर्थात् वैष्णवी संस्कृति का इतना सुंदर, यथार्थ एवं मर्मस्पर्शी वर्णन किया है कि पाठक उसे पढ़ते समय न केवल उससे परिचित होता है बल्कि अभिभूत हो उठता है। यथा–श्रीधर के पिता श्रीनाथ ठाकुर के संबंध में कुछ तथ्य–'अभी तो शृंगार में देरी है, आज राजभोग देर से होंगे। मंडली हो गई? खैनी ता खा जाओ कीर्तनिया जी। पीठ पर मछलियों का झाबा टाँगे, जल और पतवार कंधे पर उठाए मिल जाता तो लगता कि रामायणकाल का कोठ केवट सीता की खोज यात्रा पर निकला है।'[34]

मालवा सरदारों के रनिवास का चित्रण देखिए–'श्याम राव हम लोगों को खास रनिवास में ले गया। अनेक मंजिलों वाला यह रनिवास, इजलास वाले हाल के ठीक सामने पड़ता था। जब पतके मंडलोइयों के वास्तविक वैभव के दिन रहे होंगे, तब अनेक रानियाँ रही होंगी। इसलिए बीसियों कमरों, दालानों, छज्जों तथा झँझरीदार गवाक्षों की योजना की गई थी। सबसे ऊपर बरादरी शैली की छत्री थीं, जहाँ से एक ओर नर्मदा, सूदूर का सतपुड़ा दिखलायी देता था। ..... इजलास में कुछ तैलचित्र तथा झाड़-फानूस थे।..... काशीबाई का कमरा खोलते हुए श्याम राव ने बताया कि इसी कमरे में अन्नपूर्ण लक्ष्मीस्वरूपा रानी साहेबा रहती थीं। ...प्रत्येक पूर्णिमा को रानी साहिबा कथा, पूजा करवाती थी।'[35]

लखनवी संस्कृति का चित्रण उपन्यासकार ने इन शब्दों में किया है–'जज साहब! शतरंज कबसे लखनऊ वालों का हुनर है? तो तीतरबाजी, बटेरबाजी और कनकौवे लड़ाना ही हुनर समझा जाता रहा है।'[36] उज्जैन में बारेसी के लिए धर्मशाला के एक कोने में बैठे मुखिया पंडित गोपी वल्लभ त्रिवेदी बोले–'ठीक ही तो कहते हैं त्रिपाठीजी, अरे महादेव! इब विलंब केहि कारण कीजे। राम बुलाव राज पद दीजे। बोल गोविंद माधव की जय। मोरमुकुट बंशी वाले की जय। जय महाकाल! हर-हर महादेव।'[37]

संदर्भ

1. डॉ॰ रामसजन पांडेय, निर्गुण काव्य की सांस्कृतिक भूमिका, पृ॰ 11
2. डॉ॰ वासुदेवशरण अग्रवाल, संस्कृति और साहित्य, पृ॰ 3, 6
3. सत्यकेतु विद्यालंकार, भारतीय संस्कृति का विकास, पृ॰ 34
4. प्रो. लिस्ली, ए. वाइट दि इवोल्यूशन ऑफ कल्चर, पृ॰ 8
5. ए॰ एल॰ क्रोबर एन्थ्रोपोलॉजी टुडे, पृ॰ 599
6. हरको विट्स, मैंन एंड हिज वर्क्स, पृ॰ 625
7. Encyclopedia of Religion & Ethics Volume-IV p. 358
8. E.V. Tyler, Primitive Culture, Volume-I, p. 1
9. John Luis, Cultural Sociology, p. 139-40
10. Mathew Arnold, Culture, p. 44-47
11. महादेवी वर्मा, संस्कृति के स्वर, पृ॰ 74
12. उद्धृत, राहुल सांकृत्यायन, बौद्ध संस्कृति, पृ॰3
13 डॉ॰ देवराज, संस्कृति का दार्शनिक विवेचन, पृ॰ 187
14. डॉ॰ हजारीप्रसाद द्विवेदी, अशोक के फूल, पृ॰ 58
15 भगवतशरण उपाध्याय, भारतीय संस्कृति की कहानी, पृ॰ 5-6
16. रामधारीसिंह दिनकर, संस्कृति के चार अध्याय, पृ॰ 15
17. नरेश मेहता, दो एकांत, पृ॰ 141
18. नरेश मेहता, नदी यशस्वी है, पृ॰ 35
19. नरेश मेहता, दो एकांत, पृ॰ 172
20. धर्मयुग, 27 मार्च, 1966, पृ॰ 23
21. नरेश मेहता, प्रथम फाल्गुन, पृ॰ 35
22. नरेश मेहता, धूमकेतु : एक श्रुति, पृ॰ 125
23. नरेश मेहता, यह पथ बंधु था, पृ॰ 532-533
24. नरेश मेहता, उत्तरकथा, पृ॰ 126
25. नरेश मेहता, यह पथ बंधु था, पृ॰ 12, 15
26. नरेश मेहता, उत्तरकथा, पृ॰ 124
27. नरेश मेहता, उत्तरकथा, पृ॰ 124
28. नरेश मेहता, उत्तरकथा, पृ॰ 106
29. नरेश मेहता, उत्तरकथा, पृ॰ 128
30. नरेश मेहता, उत्तरकथा-प्रथम खंड, पृ॰ 424
31. नरेश मेहता, उत्तरकथा-प्रथम खंड, पृ॰ 158
32. नरेश मेहता, प्रथम फाल्गुन, पृ॰ 48
33. नरेश मेहता, यह पथ बंधु था, पृ॰ 406-407
34. नरेश मेहता, नदी यशस्वी है, पृ॰ 84
35. नरेश मेहता, नदी यशस्वी है, पृ॰ 164-165
36. नरेश मेहता, नदी यशस्वी है, पृ॰ 165
37. नरेश मेहता, उत्तरकथा प्रथम खंड, पृ॰ 39

रामकुमार वर्मा रचित 'गजरे तारों वाले' में निरूपित दार्शनिकता

सुनीतारानी

रामकुमार वर्मा को हिंदी काव्य-परंपरा का महानायक माना जा सकता है। उन्होंने हिंदी कविता को नई दिशा दी। काव्य के क्षेत्र में उनका कोई सानी नही है। साहित्य-सर्जना की प्रतिभा की नैसर्गिकता के धनी हैं–रामकुमार वर्मा। छायावादी कविता सदियों का विरोध करती और इतिवृत्तात्मकता को त्यागती नज़र आती है। संभवत: इसी कारण छायावादी कविता को 'हिंदी कविता का स्वर्णकाल' कहते हैं। छायावादी कवियों में चतुष्ट्य कवियों के बाद रामकुमार वर्मा का ही नाम लिया जाता है। रामकुमार वर्मा का संपूर्ण काव्य विविध दृष्टिकोण लिए हुए है। इनकी कविताओं में नश्वरता, निराशावाद, क्षणवाद, अध्यात्मवाद, रहस्यवाद, भौतिकतवाद एवं भाग्यवाद आदि आयाम आते हैं। उनके आलोच्य काव्य-संग्रह में निरूपित दार्शनिकता के इन दृष्टिकोणों का विशद् चित्रण हुआ है।

नश्वरता

संपूर्ण संसार नश्वर है। इस संसार में रहने वाला प्रत्येक प्राणी और वस्तु नश्वर है। इनमें कोई भी स्थायित्व नहीं है। ये सभी कभी भी नष्ट हो सकते हैं। विश्व का सारा रूप जल से उत्पन्न हुआ है। ब्रह्म ही उनमें मूल चेतन तत्त्व है। अत: यह विश्व ब्रह्म से उत्पन्न होकर उसी में मिल जाता है। उपनिषद्कार, ऋषि-मुनियों ने किसी उद्देश्य विशेष से दृढ़तापूर्वक इस बात की धारणा प्रतिपादित नहीं की है कि दृश्य जगत् एक सापेक्षिक सत्य है। वे यद्यपि ब्रह्म को परम तत्त्व के रूप में मानते हैं तथा ब्रह्म के भीतर की सभी वस्तुओं को असत्य मानते हैं। तब भी वे इस पार्थिव प्रकृति की सत्ता को अस्वीकार नहीं कर सकते थे इसलिए उनके दर्शन में इसकी सत्ता का स्वीकार करना आवश्यक हो गया। इस पार्थिक प्रकृति की भौतिक सत्ता के साथ ब्रह्म की अंतिम एवं वास्तविक सत्य होने की स्थिति के विरोधाभास को खत्म करने के लिए उन्होंने यह स्वीकार किया कि प्रकृति और ब्रह्म एक हैं। प्रकृति ब्रह्म से ही बनी है और यह उसकी सत्ता से संचालित होने के कारण उसी में विलीन हो जाएगी अर्थात् यह संसार तथा इसकी प्रत्येक वस्तु नश्वर है, कभी-न-कभी उन्हें नष्ट होना ही है। रामकुमार वर्मा ने काव्य में नश्वरता का उल्लेख किया है–

मेरे सुख की किरन अमर! जीवन-बूँदों में से चलकर,
बिखरो इंद्रधनुष बनकर, मेरे सुख की किरन अमर!
मेरे नव जीवन-बादल में, रंग सुनहला दोगी भर?[1]

सृष्टि का शाश्वत् नियम है कि उत्पन्न होने के बाद वह नष्ट हो जाती है। कोई भी वस्तु

स्थायी नहीं है। कवि रामकुमार वर्मा ने प्रकृति के द्वारा संसार की इस नष्ट होने वाली अभिवृत्ति का दार्शनिक निरूपण किया है। कवि कहता है कि जिस प्रकार पुराने पत्ते नष्ट होकर जमीन पर गिर जाते हैं, ठीक उसी प्रकार नए पत्ते भी एक दिन पीले होकर नष्ट हो जाएँगे–

हँसते हैं पीलेपन पर! क्या, मर मरकर गान?
गिर जाना भू पर, समीर में हिल-डुलकर इस बार।
दिखला देना पत्तों को, उनका अंतिम संसार।[2]

कवि कहता है कि यह पृथ्वी, यह प्रकृति तो प्रतिक्षण परिवर्तित होती है। मैं अपनी साँसों की डोर से बँधा हुआ हूँ। किंतु काल की नियति भी साथ-साथ चल रही है और मुझे आभास हो रहा है कि मेरा यह जीवन रूपी यौवन ज़्यादा दिनों तक नहीं रहेगा। मैं फिर भी इस नश्वरता से लड़ने का असफल-सा प्रयास (साहस) कर रहा हूँ–

इस जग में जीवित हूँ मैं, कण-कण के परिवर्तन से
तुमने मुझको बाँधा है, इन साँसों के बंधन से!
चर हूँ, पर नियति नचाती, मुझको मेरे ही मन से,
नश्वरता से लड़ता हूँ, यौवन के अवलंबन से।[3]

भ्रमर के माध्यम से कवि इस नश्वरता को प्रस्तुत करना चाहता है। भ्रमर यद्यपि फूलों का रस पीने के निमित्त आता है तथापि वह भी उसी फूल से लगातार रस प्राप्त नहीं कर सकता, क्योंकि प्रकृति की चेतन-अचेतन सभी वस्तुओं में नश्वरता भरी हुई है। इसी तथ्य को लक्षित कर कवि भ्रमर को संबोधित करते हुए कहता है–

भ्रमर! तुम्हारा यह अभिसार,
व्यंजित करता है पृथ्वी की नश्वरता से शाश्वत् प्यार,
कलिकाओं के विविध लोक में हुए अवतरित हर्ष-शोक में,
करना पड़ा विवश हो तुमको अपने जीवन का गुंजार।[4]

निराशावाद

निराशा अर्थात् नैराश्य मनुष्य की नियति है, उसकी स्वाभाविकता है। जीवन की कोई भी साध पूरी न होने पर व्यक्ति निराश हो जाता है अथवा हताश हो जाता है और उसे चारों ओर अंधकार ही अंधकार दिखाई देने लगता है। वेदना और छायावाद का संबंध तो नैसर्गिक है। यह वेदना दो रूपों में प्रकट हुई है। एक तो आध्यात्मिक रूप में, दूसरे लौकिक रूप में। जब किसी प्रेम में धोखा मिला तो निराशा उत्पन्न हो गई। जब सामाजिक रूढ़ियाँ आड़े आईं तो निराशा उत्पन्न हुई। कई बार तो यह निराशा इतनी बढ़ जाती है कि निराशावादी कवि जीवन तक का निषेध करने लगता है। आध्यात्मिक प्रणय के क्षेत्र में ही यह निराशावाद ज़्यादा तीव्र होकर उभरा है। रामकुमार वर्मा ने वेदना और निराशा का मार्मिक अंकन किया है। कवि को जिस बात से सबसे ज़्यादा नश्वरता से निराशा होती है, जब उसे पता चलता है कि नियति का चक्र सुंदर से सुंदर वस्तु, व्यक्ति को एक दिन मिटा देगा तो उसका मन विषाद एवं निराशा से भर उठ जाता है। एकांत की भयावह स्थिति भी उसे दु:खी और निराश कर जाती है। ऐसी स्थिति में तो वह सोचता है–

अरे निर्जन वन के निर्मल निर्झर!
इस एकांत प्रांत-प्रांगण में किसे सुनाते सुमधुर स्वर?

अरे निर्जन वन के निर्मल निर्झर!
विरह-व्यथा में अश्रु बहाकर, जल-मय कर डाला सब तन।
क्या धोने को चले स्वयं, अविदित प्रेमी के पद-रज-कन?[5]

जीवन के सुख-दु:खात्मक दृष्टिकोण भी कवि को निराश कर जाते हैं, क्योंकि इस सांसारिक जीवन में दु:ख तो बहुत अधिक है, जबकि सुख कम। कवि जब भी देखता है कि मनुष्य का जीवन तो प्रतिक्षण या प्रतिपल घट रहा है तो निराशा से भर जाता है–

वह सर्प (मृत्युरेखा सजीव) खिंचती चलती है दिशा-हीन!
विष मौन कर रहा है प्रवास, ले एक वक्र वाहन मलीन।
दो भागों में जिह्वा-प्रवाह, चंचल है सुख-दुख के समान,
तजता समीर फुफकार-आह! यह देख मृत्यु का स-गति यान।[6]

समय की गति अर्थात् समयचक्र कभी नहीं रुकता। यही समय व्यक्ति को थोड़े समय के लिए संतोष देता है। लेकिन दु:खात्मक भावों के कारण व्यक्ति को सारा जीवन यही नहीं पता चलता कि हर्ष क्या है और विषाद क्या है? कवि के मन में निराशा पूरी तरह पैठ कर गई। वह तो इतना ज़्यादा निराश हो चुका है कि उसे अपनी करुणा का कोष कभी भी खाली होता नहीं दिखाई देता–

निष्ठुर समय? वृद्ध माता-सा देता है संतोष
किंतु कभी क्या रिक्त हो सकेगा करुणा का कोष?
दो भावों में डूबा है क्यों व्यथित प्रेम-संसार,
कौन हर्ष की धार, और है कौन अश्रु की धार![7]

कवि को न केवल अपना अंत:मन बल्कि सारी प्रकृति भी निराशा से भरी हुई दिखाई देती है। कवि इसी निराशा के कारण दु:खी है। वह असमंजस की स्थिति में है कि क्या करे अथवा क्या न करे? इस निराशा के कारण वह अपने सच्चे भावों का अपमान करने से भी हिचकिचाता–

इतना दुख मैंने पाया कर एक व्यक्ति को प्यार
क्या होगा जब हृदय बनेगा दो प्रेमों का द्वार!
तो शायद मैं कभी करूँगा कमला का भी ध्यान,
और करूँगा सच्चे भावों-का दारुण अपमान।[8]

क्षणभंगुरता

यह संसार नश्वर है, क्योंकि यह क्षणिक है। क्षण में कुछ उत्पन्न होता है और अगले ही क्षण नष्ट हो जाता है। जीवन का मूल दर्शन यही है। इसी क्षणभंगुरता को छायावादी कवियों ने दार्शनिक परिप्रेक्ष्य में अपनी कविताओं में प्रस्तुत किया है। रामकुमार वर्मा ने क्षणवाद को बहुत महत्त्व दिया है। वे कहते हैं कि सुख तो कुछ पल के लिए ही होते हैं, लेकिन लोग तब भी सुखों के पीछे भागते हैं। न केवल भौतिक सुख बल्कि प्रकृति भी क्षणिक भी है–

यह क्या! सुख के लघु पल में, भावों का विषम उबाल!
कहते हो जग जीवन है, परिवर्तन ही की चाल!
काले नश्वर बादल में, है जीवन का शृंगार![9]

छायावादी कवि ने प्रेम अथवा प्रेयसी के माध्यम से इस संसार की क्षणिकता का बोध कराया है। जीवन रूपी खेल को प्रेमी अपनी प्रेमिका से खेल चुका है, लेकिन यह खेल अपने स्वभाव के अनुसार एक-न-एक दिन खत्म हो जाता है। इसी क्षणिकता को प्रेमी अपनी प्रेमिका को बताते हुए कहता है–

इस जीवन का खेल बहुत मैं खेला।
प्रेयसि! जब तुम रूठी थीं, तब मैंने तुम्हें मनाया,
ऊषागम पर विहग-स्वरों से, मैंने तुम्हें जगाया,
बिता चुका हूँ यौवन की, सुख की, बसंत की बेला![10]

मनुष्य जीवन की सबसे बड़ी विडंबना यही है कि वह क्षणिक सुखों की प्राप्ति के लिए जीवनभर दु:ख उठाता है। पाप को पुण्य समझता है, क्योंकि उसे तो हर कीमत पर तथाकथित सुख चाहिए। वास्तव में, लेकिन इन क्षणिक सुखों के कारण वह नारकीय जीवन भोगता है। ओसकण भी शृंगारिक रूप धारण कर लेते हैं, लेकिन अगले ही क्षण मिट जाते हैं, क्योंकि नश्वरता उनकी नियति है–

अरे, पुण्य की भाषा ही में, क्यों कहते हो पाप?
क्षणिक सुखों की नीवों पर, क्यों उठा रहे संताप?
यहाँ जीत में छिपी हुई है इस जीवन की हार।[11]

कवि का कथन है कि इस आकर्षक संसार का यथार्थ रूप बहुत ही हृदयविदारक है। वास्तविक रूप में देखा जाए तो प्रकृति भी अंतहीन कालिमा स्वयं में छिपाए हुए है। प्रकृति और पुरुष के माध्यम से इस क्षणिकता को कवि ने प्रस्तुत करते हुए कहा है–

जिस प्रकार संध्या में सोती है रजनी सुकुमार
और कालिमा के परदे में छिपता है संसार
वह निद्रालु शब्द जाता है गहरे नभ में दूर,
उसे चुराकर बिखरा देती जहाँ दिशाएँ क्रूर।[12]

अध्यात्मवाद

सभी ऋषि, मुनि, यक्ष, किन्नर देव आदि मानते हैं कि उस परमात्मा की शरण में जाने से ही कल्याण संभव है। दार्शनिक एकमत होकर कहते हैं कि यह जगत् मिथ्या है और आत्मा एक शाश्वत् सत्य है। आत्मा अजन्मा और अमर है। अध्यात्मवाद के अतंर्गत कवियों ने जीवन की क्षणिकता को केंद्र में रखकर उस परमात्मा (आत्मा) के अविनाशी कहा और जगत् को बाह्याचारों से संबद्ध मानकर इसमें न फँसने का आग्रह किया। रामकुमार वर्मा ने अपने काव्य में अध्यात्मवाद का उतनी ही गहराई से चित्रण किया है, जितनी कि आत्मा की गहराई और अनुभूति होती है। आत्मा तो अमर है, लेकिन जो शरीर इसे धारण करता है वह तो एक न एक दिन नष्ट हो जाता है। जिस प्रकार बुढ़िया के सिर पर बचे-खुचे काले बालों की अवधि होती है, ठीक उसी प्रकार की स्थिति इस मानव-शरीर की है। यह यौवन से मदमाता चेहरा बुढ़ापे में विकृत हो जाता है। अत: आत्मा सार्वभौमिक सत्य है–

जीवन के दिन क्या हैं अनेक? वृद्ध के सिर के श्याम केश!
जर्जरपन ही है मुक्त द्वार, जिसके सम्मुख है मृत्यु-देश!

यह वैभव का उज्ज्वल शरीर, दो दिन करता है अट्टहास,
फिर देख स्वयं निज विकृत रूप, लज्जित हो करता है प्रवास![13]

कवि कहता है कि कोई भी वीर राजा कितने ही राज्यों को अपने अधिकार क्षेत्र में ले आए, उन पर विजय प्राप्त कर ले, लेकिन उसका यह राज्य और राज्य-विस्तार की लिप्सा आत्मा की तरह अजर नहीं हो सकते–

गौरव-रक्षण के हेतु वीर, तूने अपनाया वन-प्रदेश।
रक्षित है क्या अब भी महान्, तेरा वह विक्रम वीर वेश?
तेरे वैभव का मृदु विलास, इस अराकान से था अपार,
इसके पर्वत से भी महान् तेरे सुख का था मधुर भार।[14]

रहस्यवाद

इस चराचर जगत् का नियामक कौन है? कौन है वह जो चला रहा है? अनादिकाल से यह प्रश्न ऋषियों, मुनियों और साधकों के मन में घूम रहा है, लेकिन इतना उत्तर वे भी न प्राप्त कर सके। इस गूढ़ रहस्य से आज तक पर्दा नहीं उठ सका। छायावादी कवियों ने जो रहस्यवाद की चरम पराकाष्ठा का चित्रण किया है, मध्यकालीन रहस्यवाद की अपेक्षा भिन्न एवं विस्तृत है। इन छायावादी कवियों ने रहस्यवाद के आधार पर अपनी कविता को नए आयामों से संपृक्त कर दिया है। इस बारे में डॉ॰ चंद्रिकाप्रसाद शर्मा लिखते हैं कि 'छायावादी कवियों में महादेवी वर्मा और रामकुमार वर्मा दो ऐसे कवि हैं, जिन्होंने लौकिक सौंदर्य की अनुभूति से ऊपर उठकर अलौकिक सौंदर्य की अनुभूति के वितान ताने हैं। महादेवी के गीतों में जहाँ विरह-वेदना और व्याकुलता के स्वर मुखरित हुए हैं, वहीं वर्माजी की कविताओं में दर्शन की लालसा, विछोह, दु:ख और मिलन की उत्कंठा के भाव चित्रित हुए हैं। समालोचकों ने वर्माजी की कविताओं में रहस्यमयी सत्ता के मिलन-वियोग के भावविह्वल चित्रों की प्रशंसा की है।'[15] रहस्य का प्रारंभ कौतुहल अथवा जिज्ञासा से होता है। इस सृष्टि का संचालन कौन करता है? किसके नियंत्रण में यह सारी सत्ता है, इन्हीं प्रश्नों का उत्तर ढूँढने की प्रवृत्ति व्यक्ति को जिज्ञासु बना देती है–

फूलों में किसकी मुस्कान? बिखर गई है, कलिकाओं में-
भरने को आनंद महान्? फूलों में किसकी मुस्कान?
कौन गा रहा है कोकिल के कंठों से मधुमय कल गान?
कौन भ्रमर बन कर करता है? कलियों से नूतन पहिचान?[16]

मनुष्य सदा से अपने परिवेश को जानने-समझने के लिए प्रयत्नशील रहा है। एक स्तर पर विस्मय और कौतूहल है तो दूसरे स्तर पर जिज्ञासा। जिज्ञासा विज्ञान का आधार है तो विस्मय और कौतूहल काव्य का। विज्ञान बुद्धिप्रसवा है और काव्य का क्षेत्र हृदय है। काव्य हृदय की यात्रा है, पर बुद्धि को साथ लेकर। बुद्धि और हृदय का यह समन्वय काव्य को व्यक्तिगत संबंध के संकुचित मंडल से ऊपर उठाकर लोकसामान्य की भावभूमि पर ले जाता है। जैसे संसार बहुस्तरीय है, वैसे ही हृदय भी बहुस्तरीय होता है। उसका परिष्कार तब ही संभव है, जब उन स्तरों का प्रकृत सामंजस्य संसार के भिन्न-भिन्न कार्यों के साथ हो जाय। अत: काव्य का प्रयोजन मनुष्य के सब भावों और सब मनोविकारों के लिए प्रकृति के अपार क्षेत्र में आलंबन या विषय चुनकर रखना है। इस प्रकार उसका संबंध संसार और जीवन की अनेकरूपता के साथ स्वत: सिद्ध है।'[17]

जीवन के रहस्य को कवि यूँ व्यक्त करता है–

हास्य कहाँ है? उसमें भी है, रोदन का परिणाम,
प्रेम कहाँ है? घृणा उसी में करती है विश्राम,
दया कहाँ है? दूषित उसको–करता रहता रोष,
पुण्य कहाँ है? उसमें भी तो–छिपा हुआ है दोष।[18]

यह सारा संसार रहस्यमयी स्थिति में बँधा है। कवि कहता है कि इस रहस्यमय जगत् में बँधना नहीं चाहता। नश्वर फूलों से मैं शृंगार नहीं कर सकता। वास्तव में इस संसार की प्रत्येक नश्वर वस्तु से कवि मोह नहीं करना चाहता। क्योंकि यदि वह ऐसा करता है तो संसार के रहस्य उसके लिए कभी नहीं उजागर होंगे–

दूर! दूर!! मत भरो कान में, वह मतवाला राग,
यही चाहते हो, मैं कर लूँ इस जग से अनुराग?
गिन डालूँ कितनी आहों में अपने मन के भाव?
पथराई आँखों से कैसे देखूँ विष का स्राव।[19]

अज्ञात के प्रति विस्मय और कौतूहल–आदर्श और यथार्थ के मध्य एक झीना पर्दा डाल देता है, जो कभी यथार्थ को और कभी आदर्श को रहस्यमय बना देता है। यह सौंदर्य और आनंदबोध को बढ़ाने वाला होता है, रहस्यवाद को देखने की यह एक लौकिक दृष्टि है, जिससे काव्य–प्रयोजन सघन हो जाता है।'[20]

भौतिकता

इस सांसारिक आकर्षणों में बँधे रहना और इन्हीं आकर्षणों को यथार्थ मान लेना ही भौतिकता है। लोग यहाँ रहकर केवल वासना में लिप्त रहना चाहते हैं। वही वासना जो तन और मन दोनों को मैला कर देती है–

प्रेम न, उत्कट मलिन वासना ही में हैं वे मस्त,
विकल वासना में डूबे हैं, उनके कार्य समस्त![21]

जीवन में यदि कहीं विफलता मिलती है तो उसका मूल कारण इस संसार की भौतिकता ही है। अतिशय बौद्धिकता और भौतिकता हर कार्य में बाधा उत्पन्न करती है। दिन–रात इस मोह माया में फँसे रहने वाला व्यक्ति चाहकर भी इससे छुटकारा नहीं पा सकता–

जीवन के पल क्यों विफल हुए?
रजनी की आँख–मिचौनी में, तारे ज्योतित हो सजल हुए,
यह अंधकार कैसे जीवन का नाश कर सकेगा, बोलो?
तुमको पाकर मेरी कविता के, स्वर कितने ही विमल हुए।
जीवन के पल क्यों विफल हुए?'[22]

भौतिकता में फँसा हुआ मनुष्य केवल राम–नाम का जाप करने मात्र से छुटकारा पा सकता है। कृष्ण की दासी मीरा ने भी इस भौतिक संसार को त्याग दिया था। केवल अपने आराध्य के प्रति अटूट आस्था रखकर आस्था के अपार समुद्र में गोते लगाकर मनुष्य सांसारिकता को छोड़ सकता है–

कितनी तुम्हें दीं यंत्रणाएँ देवि! बोलो तो
विष भी भरा गया तुम्हारे आयु-पात्र में
किंतु 'कृष्ण' नाम के रसायन के स्पर्श से,
भय था जहाँ न लेश मात्र मोह-जाल का![23]

भाग्यवाद

जब कर्म की अपेक्षा लोग धर्म को प्रश्रय देने लगें, इस कार्य को किसी अज्ञात सत्ता के अधीनस्थ होकर लगें, कार्य के परिणाम पर केवल यही कहें कि ऐसा तो होना ही था, तो भाग्यवाद की उत्पत्ति होती है। मनुष्य कार्य को धर्म से अनुप्राणित होकर करता है। प्रतिफल न मिलने पर अपने ही भाग्य को दोष देता है। छायावादी कवियों में विशेषकर रामकुमार वर्मा ने भाग्यवाद का उल्लेख अपनी कविताओं में विशदता से किया है। भाग्यरेखा के बारे में कवि कहता है–

भाग्य की रेखा हमारी, है नदी के कूल-सी।
एक-सी जो हो न पाई, देख आया क्षितिज-दूरी
तरल जल का स्पर्श पाकर भी मिली मृदुता अधूरी,
गति रही अनुकूल तो लहरें उठी प्रतिकूल-सी।
भाग्य की रेखा हमारी, है नदी के कूल-सी।[24]

भाग्यरेखा तो नदी के किनारे की तरह होती है। पूर्णिमा का चाँद भी भाग्यवादी व्यक्ति को कई टुकड़ों में बँटा नज़र आता है। उसे तारों की सुनहली किरणें भी काँटों के समान चुभती है–

पूर्णिमा का चंद्र भी, प्रतिबिंब में शत-खंड देखा,
सिमटती, बढ़ती, लहरती, स्थिर न देखी ज्योति-रेखा।[25]

निराश और भाग्यहीन व्यक्ति अपनी प्रेमिका को भी स्मृतियों में प्राप्त करना चाहता है। इसी निराशा में डूबा हुआ यह भाग्यहीन व्यक्ति धुएँ की एक छोटी-सी आकृति को भी फूल मान बैठता है–

हो उषा तो खिंच उठे, जल के रंगों की चित्रकारी,
एक रेखा में लिखता मैं, आयु भर की स्मृति तुम्हारी।[26]

संदर्भ

1. रामकुमार वर्मा, गजरे तारों वाले, विभूति, पृ॰ 7
2. रामकुमार वर्मा, गजरे तारों वाले, अंतिम संसार, पृ॰ 11
3. रामकुमार वर्मा, अपराशि, पृ॰ 57
4. रामकुमार वर्मा, चंद्रकिरण, पृ॰ 267
5. रामकुमार वर्मा, एकांत गान, पृ॰ 9
6. रामकुमार वर्मा, शुजा, पृ. 91
7. रामकुमार वर्मा, निशीथ, पृ॰ 163
8. रामकुमार वर्मा, निशीथ, पृ॰ 164
9. रामकुमार वर्मा, रूपराशि, पृ॰ 55

10. रामकुमार वर्मा, रूपराशि, पृ॰ 63
11. रामकुमार वर्मा, कंकाल, पृ॰ 83
12. रामकुमार वर्मा, निशीथ, पृ॰ 175
13. रामकुमार वर्मा, पृ॰ 92
14. रामकुमार वर्मा, रूपराशि, पृ॰ 99
15. डॉ॰ चंद्रिकाप्रसाद शर्मा, डॉ॰ रामकुमार वर्मा की साहित्य-साधना, पृ. 60
16. रामकुमार वर्मा, रूपराशि, कुल, पृ॰ 53
17. अनुपम आनंद, मौन करुणा का सहारा : डॉ॰ रामकुमार वर्मा का रहस्यवाद, पृ॰ 405
18. रामकुमार वर्मा, रूपराशि, अशांत, पृ॰ 81
19. रामकुमार वर्मा, रूपराशि, कंकाल, पृ॰ 83
20. अनुपम आनंद, मौन करुणा का सहारा : डॉ॰ रामकुमार वर्मा का रहस्यवाद, पृ॰ 405
21. रामकुमार वर्मा, निशीथ, पृ॰ 180
22. रामकुमार वर्मा, चंद्रकिरण, जीवन के पल, पृ॰ 248
23. रामकुमार वर्मा, आकाशगंगा, पदवंदन, पृ॰ 350
24. रामकुमार वर्मा, आकाशगंगा, भाग्यरेखा, पृ॰ 322
25. रामकुमार वर्मा, आकाशगंगा, भाग्यरेखा, पृ॰ 322
26. रामकुमार वर्मा, आकाशगंगा, भाग्यरेखा, पृ॰ 322

प्राचार्या
आर्य कन्या गुरुकुल शिक्षण महाविद्याालय
मोरमाजरा, करनाल

राजस्थानी लोकसाहित्य में लोकमानस की अभिव्यक्ति के विभिन्न रूप

सरिता विश्नोई
जे॰ आर॰ एफ॰ शोधछात्रा
हिंदी विभाग, वनस्थली विद्यापीठ

राजस्थान में लोकसाहित्य की परंपरा तब से रही है जबसे यहाँ मनुष्य सभ्यता का उद्‌भव हुआ है। लोकसाहित्य किसी भी क्षेत्र विशेष की 'लोक' समाज के मानस की स्वाभाविक अभिव्यक्ति होता है। सरलता, स्वाभाविकता सरसता और मौखिक परंपरा में चलते रहने के कारण यह अपना विशेष महत्त्व रखता है। लोकसाहित्य की रचना किसी व्यक्ति-विशेष द्वारा नहीं की जाती, इस साहित्य के पीछे तो पूरी परंपरा समाहित रहती है, जिसका सीधा संबंध जनता और उसकी चित्तवृत्तियों से रहता है। लोकसाहित्य 'लोक' की सामूहिक भावना का प्रतिनिधित्व करता है। डॉ॰ सत्येंद्र के शब्दों में 'लोक मनुष्य समाज का वह वर्ग है, जो अभिजात्य संस्कार, शास्त्रीयता और पांडित्य की चेतना और पांडित्य के अंहकार से शून्य है जो एक परंपरा के प्रवाह में जीवित रहता है।'[2] इस प्रकार 'लोक' का अर्थ उस जनमानस से है जो विस्तृत रूप में इस पृथ्वी पर फैला हुआ है और जिसमें सभी प्रकार के मनुष्य सम्मिलित है। हमारा ग्रामीण समाज 'लोक' का महाप्राण है और ग्रामीण संस्कृति 'लोक' का प्रतिनिधित्व करती हुई दिखाई देती है। 'लोक' अपनी प्राचीन सभ्यता एवं परंपरा को अपने में समेटे हुए बिना किसी बनावटीपन या दिखावे के सीधा-सरल जीवन जीता है। वह अंहकार शून्य होता है। प्रकृति के नजदीक अपनी तरह से रहता है। लोकसाहित्य लोकजीवन की सामाजिक-सांस्कृतिक अनुभूतियों की सहज व सरल अभिव्यक्ति होती है। लोकसाहित्य में उपदेशात्मक प्रवृत्ति का अभाव होता है। उसमें होता है केवल आदर्श जो सच्चाई की पराकाष्ठा का प्रतिबिंब प्रस्तुत किया करता है। साथ ही लोकसाहित्य आज भी समय के परिवर्तन के साथ-साथ अपनी मौखिक परंपरा में लोक के सामने नवीन भाव और चेतना का निर्माण कर है। इसमें जनता की स्वाभाविक भावनाओं का चित्रण प्रधान होता है। डॉ॰ कृष्णदेव उपाध्याय के अभिमत से–'सभ्यता के प्रभाव से दूर रहने वाली अपनी सहजतावस्था में, वर्तमान में जो निरक्षर जनता है, उनकी आशा-निराशा, हर्ष-विषाद, जीवन-मरण, सुख-दुःख की अभिव्यंजना जिस साहित्य में होती है, उसे लोकसाहित्य कहते है।'[3] डॉ॰ रवींद्र भ्रमर के अनुसार–'लोकसाहित्य लोकमानस की सहज और स्वाभाविक अभिव्यक्ति है। यह बहुधा अलिखित ही रहता है और अपनी मौखिक परंपरा द्वारा एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक आगे बढ़ता रहता है। इस साहित्य के रचयिता का नाम प्रायः अज्ञात रहता है। लोक का प्राणी जो कुछ कहता

सुनता है, वह समूह की वाणी बनाकर और समूह में घुल-मिलकर ही कहता है। संभवत: लोकसाहित्य, लोकसंस्कृति का प्रतिबिंब भी होता है। अभिजात, परिष्कृत या लिखित साहित्य के प्रतिकूल लोकसाहित्य परिमार्जित भाषा, शास्त्रीय रचना-पद्धति और व्याकरणिक नियमों से मुक्त रहता है। लोकभाषा के माध्यम से, लोकचित्त की अकृत्रिम अभिव्यक्ति, लोकसाहित्य की सबसे बड़ी विशेषता है।'[4] लोकसाहित्य में लोक की भावनाओं का सरल, स्वच्छंद और स्पष्ट प्रवाह होता है। पीढ़ी-दर-पीढ़ी मौखिक रूप से चलते रहने के कारण यह लोक की नित नई परिवर्तित विशेषताओं को भी अपने में समेटता चलता है। राजस्थान का लोकसाहित्य भी इस दृष्टि से इतनी व्यापकता और विविधता लिए हुए है कि उसे समझने के लिए वर्गीकृत करना आवष्यक है। सुविधा के लिए इसे अधोलिखित रूपों में बाँटा जा सकता है-लोकगीत, लोककथा, लोकगाथा, लोकवार्ता लोक नाटक, प्रकीण साहित्य।

लोकगीत

लोकगीत लोकमानस के हृदयानुभूति की सरल, सहज, लयबद्ध अभिव्यक्ति है। जब मानव-हृदय भावनाओं की अनंत गहराइयों में डूबता है, अपना उल्लास, अपनी दुखद अनुभूतियों, स्मृतियों के झकझोंरों से साक्षात्कार करता है तब उठी हुई उन रागात्मक अनुभूतियों की हिलोर शब्दों के तट पर आकर थिरककर लोकगीत का रूप ग्रहण करती है। डॉ॰ कुंदनलाल उप्रेती का कथन है, 'समस्त जनमानस में चेतन अचेतन रूप से जो भावनाएँ गीतबद्ध होकर अभिव्यक्त होती हैं, उन्हें लोकगीत कहते हैं। आदिमानव के हृदय में जो विकृत भावनाएँ नि:सृत हुई थीं, वे ही आगे चलकर लोकगीतों में परिवर्तित हो गईं।'[5] डॉ॰ कृष्ण उपाध्याय का अभिमत है-'वह गीत जो लोकमानस की अभिव्यक्ति हो अथवा जिसमें लोकमानस भाव भी हो, लोकगीत के अंतर्गत आएगा।'[6] लोकगीतों में राजस्थानी लोकमानस की समस्त सुख-दुख, उल्लास, उमंग, आश्चर्य-विस्मय, भक्ति-निवृत्ति आदि भाव हृदय की रागात्मकता और यथार्थ रूप में अभिव्यक्ति पाते है। राजस्थानी लोकगीत देवी-देवताओं के गीत, संस्कारों के गीत, पर्वोत्सव के गीत, बालक-बालिकाओं के गीत, पारिवारिक संबंधों के गीत, पेशेवर गायकों के गीत, ऐतिहासिक चरित्र-प्रधान गीत आदि विविध रूप में मिलते है। इन लोकगीतों में राजस्थानी जनजीवन, धर्म और दर्शन, भक्ति और नीति, कला और संस्कृति का प्रभावशाली चित्रण मिलता है।

लोकगाथा

लोकगाथा में लोक निर्मित एक दीर्घ कथा होती है जो लोकवाद्यों के साथ गायी जाती है अर्थात् गेयता एवं कथात्मकता लोकगाथा के प्रमुख तत्त्व है। डॉ॰ श्रीराम शर्मा के अनुसार 'लोकगाथा कथात्मक, छंदबद्ध, गेय और लोककंठ पर अवतरित काव्य है जिसका रचयिता अज्ञात होता है तथा वह संपूर्ण समाज की संपत्ति है।'[7] डॉ. विद्या चौहान के विचार से 'लोकभाषा के माध्यम से सांगीतिक आवरण में आबद्ध दीर्घ कथावस्तु की अभिव्यक्ति लोकगाथा कहलाती है।'[8] राजस्थानी लोकगाथाएँ यहाँ के सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, ऐतिहासिक जीवन को विशाल रूप में प्रस्तुत करती है। ये लोकगाथाएँ कथा, गीत, और अभिनय का अद्‌भुत त्रिवेणी संगम है। राजस्थान का प्रदेश लोकगाथाओं की दृष्टि से अत्यंत समृद्ध और संपन्न है। राजस्थान में विविध प्रकार की लोकगाथाएँ प्रचलित है जिन्हें विषय-वस्तु की दृष्टि से राजस्थानी लोकगाथाओं को निम्न भागों में बाँटा जा सकता है-

(क) वीरकथात्मक लोकगाथाएँ : इस वर्ग में हम उन लोकगाथाओं को रख सकते हैं जिसमें किसी वीर नायक के उत्साहपूर्ण एवं शौर्य संपन्न कार्यों का उल्लेख रहता है। कभी वीर नायक अपनी संस्कृति की रक्षा हेतु अपने प्राणों की बाजी लगा देता है तो कभी अपने शत्रुओं से बदला लेता हुआ पाठक और श्रोताओं के समक्ष आता है। कभी किसी अबला के सतीत्व की रक्षार्थ अपनी तलवार उठाता है। वीर-शिरोमणि नायकों ने पीड़ितों की सहायता की है, जिनकी तलवार सदैव अत्याचारियों के विरुद्ध उठी है और जिन्होंने प्रण-पालन एवं परोपकार करते हुए अपने प्राण न्योछावर कर दिए। ऐसे वीरों में बगड़ावत, पाबूजी, तेजाजी, गोगाजी, गलालेंग, डूंगजी-जवारजी आदि प्रमुख हैं। जिनके उदात्त, शौर्यमूलक चरित्रों के आधार पर लोकगाथाओं की रचना हुई।

(ख) प्रेम-प्रधान लोकगाथाएँ : इस वर्ग में वे लोकगाथाएँ आती हैं जिनके चरित्रनायक प्रेमवीर हैं। प्रेम के कठिन मार्ग पर चलने का साहस रखने वाले ये प्रेमवीर किसी की भी परवाह नहीं करते। मौत भी उन्हें डरा नहीं सकती। प्रेम में नायक-नायिका अपने जीवन का बलिदान कर देते हैं, किंतु प्रेम का त्यागकर जीना उन्हें स्वीकार नहीं प्रेमगाथाओं में संयोग-वियोग, प्रेम, मान-प्रसंग, संदेशप्रेषण, दूत-दूती प्रसंग का उल्लेख मिलता है। विरह की मार्मिक अभिव्यक्ति इन गाथाओं की प्रमुख विशेषताएँ है। जलना-बूबना, सोरठ-बींझा, नागजी-नागवंती आदि लोकगाथाएँ इसी श्रेणी में आती है। 'ढोला-मारू रा दूहा' इस परंपरा में एक सुखांत लोकगाथा है।

(ग) रोमांचकारी लोकगाथाएँ : राजस्थान में ऐसी लोकगाथाएँ भी मिलती हैं, जिनमें अनेक रोमांचक प्रसंग भरे पड़े हैं। 'निहाल्दे-सुल्तान' लोकगाथा इसी श्रेणी की है। यद्यपि इस गाथा का नायक सुल्तान में वीरता का उत्कर्ष दिखाई देता है किंतु अतिमानवीय तत्त्वों एवं रोमांचक प्रसंगों के कारण वे जनमानस को चकित कर देती हैं। जादू, परियाँ, रूप-परिवर्तन, कार्य-परिवर्तन, आकाशगमन आदि अलौकिक कार्यों का वर्णन हमें चकित कर देता है।

(घ) पौराणिक लोकगाथाएँ : पौराणिक आख्यानकों के आधार पर भी लोकगाथाओं की रचना हुई है। इन लोकगाथाओं में पुराण एवं महाभारत की कथावस्तु को लोकमानस की प्रवृत्ति के अनुसार ढालकर प्रस्तुत किया जाता है। इन लोकगाथाओं में लोकादर्श प्रतिष्ठित है। ब्यावलों, अंबारस-प्रसंग, भीमो-भारत, सैत-गैंडो, द्रुपदाअवतार, स्यामकरण, घोड़ों, **काळा-गौरा** रो भारत आदि पौराणिक गाथाएँ है।

(ङ) निर्वेदकथात्मक लोकगाथाएँ : इस श्रेणी में रूपांदे, भ्रतृहरि, गोपीचंद आदि लोकगाथाएँ आती है। इन गाथाओं के नायक प्रारंभ में वैभवपूर्ण जीवन-यापन करते हुए दिखाई देते हैं किंतु बाद में किसी प्रेरक-प्रसंग व सतगुरु की कृपा से सांसारिक जीवन से उदासीन हो जाते हैं और अंत में वैराग्य धारण कर लेते हैं। ये वीतरागी पुरुष गुरु-भक्त होते हैं और नाम-स्मरण से बड़ी से बड़ी बाधा को पार कर जाते हैं। आचरण की शुद्धता, मन की पवित्रता व लोकहितकारी भावना रखने वाले ये सच्चे भक्त जन-जन के हृदय पर आसीन रहते हैं।

इन विविध प्रकार की लोक गाथाओं ने राजस्थानी की लोक संस्कृति को समृद्ध बनाया है। इन्हें साधारण जनता का महाकाव्य भी कह सकते हैं। 'लोकगाथा में उस समाज विशेष के सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक तौर-तरीकों, संबंधों, मान्यताओं तथा जीवनादर्शों का सर्वांगीण चित्र प्रतिबिंबित रहता है। गाथा में वर्णित पात्रों की भावनाएँ एक हद तक उस समाज की प्रचलित

मान्यताओं का प्रतीक होती हैं। पात्रों का द्वंद्व और संघर्ष उस जमाने के प्रचलित अंतर्द्वंद्वों को उभारकर प्रस्तुत करते हैं। प्रेम, वात्सल्य, वीरता, बलिदान, मनुष्य जाति की सर्वमान्य भावनाएँ हैं। लेकिन जिस विशेष रूप से लोकगाथा के पात्रों के माध्यम से इन्हें प्रदर्शित किया जाता है उनमें ये केवल मात्र वैचारिक मान्यताएँ न रहकर वास्तविक जीवन की अनुभूतियाँ बन जाती हैं। यही कारण है कि लोकगाथा का पात्र अपने जैसा ही इंसान लगता है जिसमें अच्छाइयाँ, बुराइयाँ, कमियाँ, कमज़ोरियाँ सब एक साथ समाई मिलती हैं। इस दृष्टि से इन लोकगाथाओं को यदि उस जमाने की प्रचलित सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक स्थितियों की सही जानकारी प्राप्त करने का आधार बनाया जाए तो इस कार्य के लिए वे अत्यंत उपयोगी साबित हो सकते हैं।'[9] जीवन का प्रत्येक पहलु, अवसर तथा यहाँ के सामाजिक, सांस्कृतिक जीवन का जीवंत और सच्चे रूप में इन लोकगाथाओं में अभिव्यक्ति मिली है। लोक के आदर्श, धार्मिक विश्वास, अंधविश्वास, लोकदेवता, सामाजिक परंपराएँ जैसे विवाह, सती-प्रथा आदि, शकुन, त्योहार, पर्व आदि का विशद् वर्णन इन लोकगाथाओं में हुआ है। राजस्थानी लोकगाथाओं की यह महत्त्वपूर्ण विशेषता हैं कि राजस्थान की प्रत्येक लोकगाथा में मंगलाचरण का विधान होता है। लोकगाथा का नायक सर्वगुण संपन्न होता है। नायक जितना पराक्रमी, साहसी होता है, उतना ही दयालु, उदार एवं विनम्र भी होता है। वह अपनी हिम्मत से अत्याचारियों का सामना करता है तो गरीबों की सहायता करता है। उसकी वीरता से शत्रु भी काँपते हैं। इतिहास और कल्पना का अद्‌भुत सम्मिश्रण होता है। अधिकांश लोकगाथाओं के भावधरातल पर वीर,श्रृंगार एवं करुण का त्रिवेणी संगम होता है। राजस्थानी लोकगाथाओं में भक्ति व तपस्या के प्रभाव को भी व्यक्त किया गया है। इनके बलबूते पर असंभव कार्य भी संभव हो जाते है। यहाँ धार्मिक-भावना, सदाचरण एवं लोकहित को विशेष महत्त्व दिया गया है। भक्त सच्चे हृदय से नाना-स्मरण करें तथा सदगुरु की कृपा से आत्मज्ञान प्राप्त कर लेने के उपरांत जन्म-मरण के बंधन से मुक्त हो जाता है।

लोककथा :

वह कथा जो लोकसमाज में गतिमान रहती, पुष्पित होती रहती है, लोककथा कहलाती है। लोककथाओं का मूल बहुत प्राचीनता में मानते हुए डॉ. सत्येंद्र लिखते है कि–'धर्मगाथाओं और लोककथाओं के अध्ययन से यह विदित होता है कि इनका मूल बहुत प्राचीन है और संभवत: वह समय की धुंधली रूपरेखा का युग था, जबकि विविध राष्ट्रों और देशों में विभाजित आर्यजन विभाजन से पूर्व शांतिपूर्वक किसी एक स्थान पर रहते थे।'[10] लोककथाओं का मानव जीवन पर प्रभाव पड़ता है। ये कथाएँ केवल मनोरंजन तक ही सीमित नहीं रहती है। अपितु जन मानस में आत्मविश्वास की भावना जाग्रत करती है, उन्हें शक्ति प्रदान करती है और जीवन में संघर्ष तथा आपदाओं में स्थिर रहने की शक्ति को भी जन्म देती है। डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी का अभिमत है–'लोककथा शब्द मोटे तौर से लोकप्रचलित उन कथानकों के लिए व्यवहृत होता रहा है, जो मौखिक या लिखित परंपरा से क्रमश: एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को प्राप्त होते रहे हैं।'[11] राजस्थानी की लोककथाएँ यहाँ समाज की राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, धार्मिक जन-जीवन की स्थितियों से जुड़ी हुई है। यह लोककथाएँ केवल मनोरंजन तक सीमित नहीं हैं। इनमें लोक की अनुभूमि व जीवन के अनुभूत सत्य व तथ्य को चित्रित किया गया है। इन लोककथाओं में समाजिक परिवेश का सुंदर चित्रण प्राप्त होते है। समाज में लोक के पारिवारिक संबंध व

सामाजिक संबंधों का विस्तृत वर्णन मिलता है। राजस्थानी लोककथाओं की महत्त्वपूर्ण विशेषता हैं कि इनमें सुखांत व लोकमंगल की भावना मिलती है व समाज की बुराईयों को दूर करने की भावना का समावेश मिलता है। ये लोककथाएँ शौर्यप्रधान, प्रेमप्रधान, त्रियाचरित्र की कथा, व्रत-त्योहारों की कथा, अलौकिक कृत्यों की चमत्कारिक कथाएँ, नीति और लोक-व्यवहार की कथा, पशु-पक्षियों की कथा, राक्षस, भूत-प्रेत, चुड़ैल से संबंधित कथाएँ, नागदेवता की कथाएँ, चोर, ठग, पौराणिक एवं लोक देवी-देवताओं से संबंधित कथाएँ आदि विविध रूपों में मिलती है। ये लोककथाएँ मनबहलाव व मनोरंजन तक ही सीमित न रहकर जनसमूह में नवीन जीवन-मूल्य और नैतिकता के उच्च आदर्श की स्थापना करती है।

लोकनाटक :

लोकमानस की अमूल्य धरोहर लोकनाट्य है। प्रकृति की सुकुमार गोद में पल्लव पुष्पित होते मानव ने अपनी अनुभूति की अभिव्यक्ति को सरल बनाते हुए संवाद रूप में प्रस्तुत किया। कालांतर में उस अभिव्यक्ति रूप को लोकनाट्य कहा जाने लगा। डॉ. श्रीराम शर्मा के अभिमत से 'लोकधर्मी रूढ़ियों की अनुसरणात्मक अभिव्यक्तियों का वह नाट्य रूप जो अपने-अपने क्षेत्र के लोकमानस की आह्लादित, उल्लसित एवं अनुप्राणित करता है, लोक-नाट्य कहलाता है।'[12] राजस्थान का लोकनाटक यहाँ के लोकमूल्य, लोकसंस्कृति को अभिव्यक्त करने का सशक्त माध्यम है। राजस्थान के भौगोलिक परिवेश, इतिहासबोध, धर्मानुराग, जातीय संस्कार, तथा परंपरानुराग ने ही नाटकों की समृद्धि में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की है। यहाँ के लोकनाटकों का लीला, तमाशा, ख्याल, खेल, स्वांग, रम्मत, नौटंकी, झामटणे, टूंटिये आदि अनेक नामों से संबोधित किया जाता है। राजस्थानी लोकनाटकों में शक्ति की पवित्रता, दर्शन की गंभीरता, प्रेम की निश्छलता, कर्म की प्रगाढ़ता, संकल्प-पूर्ति की दृढ़ता, वचनपालन की निष्ठा, पारंपरिक संस्थाओं के प्रति आस्था और सामाजिक बुराइयों और अत्याचारों के प्रति जागरूकता मिलती है। राजस्थान के लोकनाटक की यह विशेषता है कि ये नृत्यप्रधान, अभिनय प्रधान व कौतुक प्रधान होते है। इन नाटकों में पौराणिक तथा धार्मिक चरित्र, ऐतिहासिक चरित्र, साहसिक व रोमांचक, सामाजिक व प्रेम व त्याग से परिपूर्ण चरित्रों की रचना की जाती है। संगीत व नृत्य की इनमें प्रधानता होती है, जो उन्हें और अधिक प्रभावशाली बनाता है। नगाड़े, ढोल, ढोलक, झाँझ, हारमोनियम, शहनाई, खड़ताल, ठप, चंग आदि वाद्य यंत्रों के द्वारा प्रस्तुति प्रभावशाली बनाया जाता है।

प्रकीर्ण साहित्य :

लोकसाहित्य की उन फुटकर विधाओं को प्रकीर्ण साहित्य के अंतर्गत लाया गया है, जो आकार में लघु हैं पर है अधिक सारगर्भित। लघु और सारगर्भित विधाओं (रचनाओं) को प्रकीर्ण साहित्य कहते हैं। डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय ने इसी वर्ग को प्रकीर्ण साहित्य के नाम से पुकारा है। राजस्थानी प्रकीर्ण साहित्य को निम्न भागों में विभाजित किया जाता है-(अ) लोकोक्ति, (ब) लोक तुक्का, (स) मुहावरे, (द) पहेलियाँ अथवा बुझौवल, (य) लघु गीत। राजस्थान के इस प्रकीर्ण साहित्य में राजस्थान के समाज, इतिहास, धर्म व जीवन-दर्शन, शिक्षा, ज्ञान, जन-जीवन का अनुभव, लोकविश्वास, मनोविज्ञान, समाज में नारी की स्थिति आदि की अभिव्यक्ति हुई है। ये राजस्थानी के लोकमानस के ज्ञान का अमर कोश है।

लोकोक्ति : लोकोक्ति इसके नाम से स्पष्ट होता है-लोक की उक्ति होती है। गंभीर

भाव, सारगर्भित, सूक्ष्म से सूक्ष्म साधनों द्वारा व्यक्त करने का माध्यम उक्ति है। किसी एक व्यक्ति विशेष द्वारा कही गई बात समय के साथ सत्य का प्रतिपादन करती आगे बढ़ी और जनसामान्य द्वारा अपने-अपने बौद्धिक स्तर का प्रयोग कर सत्य की कसौटी पर इसकी परीक्षा की गई। एक समय ऐसा आया कि इस पर पड़ी व्यक्ति विशेष की छाप मिट गई और यह लोक मानस की उक्ति बन गई। डॉ. कन्हैयालाल सहल के अनुसार–'अपने कथन की पुष्टि में, किसी को शिक्षा या चेतावनी देने के उद्देश्य से किसी बात की आड़ में कहने के अभिप्राय से अथवा किसी को उपालंभ देने व किसी पर व्यंग्य करने आदि के लिए अपने स्वतंत्र अर्थ रखने वाली जिस लोक प्रचलित तथा सामान्यत: सारगर्भित, संक्षिप्त एवं चटपटी उक्ति का प्रयोग करते है, उसे लोकोक्ति अथवा कहावत नाम दिया जा सकता है।'[13]

(ब) लोक तुक्का : लोक तुकांत (तुकवाला) वाक्य है। लोक तुक्का लोक की ऐसी अभिव्यक्ति है, जो आकार में लघु होती है परंतु अर्थ में अत्यधिक गंभीर होती है, परंतु तुक के साथ मिली हुई होती है। जनमानस की भाषा में लोक तुक्का सर्वत्र पाया जाता है। लोक तुक्का व लोकोक्ति में आकार का अंतर होता है, क्योंकि लोक की उक्ति कभी-कभी बड़ी भी उपलब्ध होती है, पर लोक तुक्का अपने आकार में सदैव एक-सा लघु ही रहता है। लोकोक्ति में गेयता के होते हुए भी तुक का कोई महत्त्व नहीं रहता। लोक तुक्का में संगीत व लय की महत्ता भी नहीं होती, पर इसका प्रधान गुण तुकांत सदैव विद्यमान रहता है।

(स) मुहावरे : मुहावरे किसी बोली या भाषा में प्रयुक्त होने वाला अपूर्ण वाक्य खंड है, जो अपनी उपस्थिति से समस्त वाक्य को सबल, सतेज, रोचक और चुस्त बना देता है। संसार में मनुष्य ने अपने लोकव्यवहार में जिन-जिन वस्तुओं और विचारों को कौतुहल से देखा, समझा और बार-बार उनका अनुभव किया, उन्हीं को उसने शब्दों में बाँध दिया है, वे ही मुहावरे कहलाते है। डॉ. कृष्णलाल हंस के अनुसार, 'मुहावरे वास्तव में वाक्यखंड हैं, जब इनका प्रयोग वाक्य में किया जाता है तब उस वाक्य की शक्ति और प्रभाव पूर्वापेक्षा बहुत बढ़ जाता है।'[14]

(द) पहेलियाँ अथवा बुझौवल : मानव-प्रवृत्ति रहस्यात्मकता से भी जुड़ी होती है, जिसके कारण कभी-कभी वह ऐसी वाक्य संरचना करता है, जो जल्द समझ में न आए। वक्ता सभी के सामने अपनी बात स्पष्ट कहने में संकोच करता है, तब वह पहेली का ही प्रयोग करता है। जन साधारण पहेली को बुझौवल भी कहता है, जिसका अर्थ हुआ बूझना या कही हुई बात का अर्थ स्पष्ट करना। यद्यपि शब्दार्थ की दृष्टि से पहेली या बुझौवल में अंतर नहीं, पर परिभाषित दृष्टि से दोनों में अंतर है। बुझौवल में कहने वाला अभिप्राय विशेष से अपना लक्ष्य साधता है, जबकि पहेली साधारण आनंद, बुझौवल में आंतरिक सूझ-बूझ की भी आवश्यकता पड़ती है।

(य) लघु गीत : लघुगीत के अंतर्गत वह गीत आते हैं जो दैनिक कार्यप्रणाली से जुड़े हुए होते हैं तथा समाज, परिवार की खुशहाली और धरोहर के रूप में निरंतर आगे बढ़ते रहते हैं। जैसे खेलों से संबंधित गीत, शिशुओं के सुलाने के लिए गाई जाने वाली लोरियाँ, जो प्रकृति की मधुरता का आभास भी कराती है। जैसे–टेसू के विवाह संबंधी गीत, झोंझी के गीत आदि हैं। ये गीत आकार में लघुता रखते हुए भी लोकसाहित्य की अमरता में योगदान रखते हैं और उसकी श्रीवृद्धि में अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा कराते हैं।

निष्कर्षत:, राजस्थान का लोकसाहित्य अपनी समृद्धि में अनेक रूपों में उपलब्ध है।

यह यहाँ के लोकमानस की सरल व सहज अभिव्यक्ति बनकर जहाँ जीवनानुभवों के यथार्थ व कल्पना को हमारे सामने लाते हैं वहीं साहित्य सौंदर्य की दृष्टि से भी उत्कृष्ट है। यह साहित्य अपनी विशालता से राजस्थानी जनजीवन की लंबी परंपरा को हमारे सामने लाता है। जो लोकजीवन की अनेक झाँकियाँ व परंपराएँ एवं लोकचित्त की अनेक अनुभूतियाँ को अनेक रूपों में उपलब्ध कराती हैं।

संदर्भ

1. सं॰ डॉ॰ धीरेंद्र वर्मा, हिंदी साहित्य कोश, ज्ञानमंडल, वाराणसी, 1963, पृ॰ 685-686
2. डॉ॰ कृष्णदेव उपाध्याय, लोकसाहित्य की भूमिका, साहित्य भवन, इलाहाबाद, 1957 पृ॰ 25
3. डॉ॰ रवींद्र भ्रमर, हिंदी भक्ति-साहित्य में लोकतत्व, भारतीय साहित्य मंदिर, 1965, पृ॰ 5
4. डॉ॰ कुंदनलाल उप्रैती, लोकसाहित्य के प्रतिमान : भारत प्रकाशन मन्दिर, अलीगढ़, 1975, पृ॰ 16
5. डॉ॰ कृष्णदेव उपाध्याय, लोकसाहित्य की भूमिका, पृ॰ 326
6. डॉ॰ श्रीराम शर्मा, लोकसाहित्य : सिद्धांत और प्रयोग, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा, संवत् 1981, पृ॰ 38
7. डॉ॰ विद्या चौहान, लोकगीतों की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि, प्रगति प्रकाशन, आगरा, 1972, पृ॰ 19
8. सं॰ लक्ष्मीकुमारी चूड़ावत, बगड़ावत देवनारायण लोकगाथा, पंचशील प्रकाशन, जयपुर, 2007, पृ॰ 2
9. डॉ॰ सत्येंद्र, ब्रज लोकसाहित्य का अध्ययन, साहित्य रत्नाकर भंडार, आगरा, 1949, पृ॰ 14
10. आजकल : लोककथा अंक, 1951, पृ॰ 92
11. डॉ॰ श्रीराम शर्मा, लोकसाहित्य : सिद्धांत और प्रयोग, पृ॰ 99
12. डॉ॰ कन्हैयालाल सहल, राजस्थानी कहावतें : एक अध्ययन, साहित्य मंदिर, दिल्ली, 1958, पृ॰ 20
13. डॉ॰ कृष्णलाल हंस, निमाड़ी और उसका साहित्य, हिंदुस्तानी एकेडमी, इलाहबाद, 1960, पृ॰ 382

होस्टल श्रीशांता आगार
कमरा नं॰ 225, **टौंक (राज॰)** 304022
मो॰ 09887547908

स्वातंत्र्योत्तर हिंदी व्यंग्य-निबंधकार : सृजन और चिंतन

संतोष विश्नोई
एस॰आर॰एफ॰ शोधछात्रा
हिंदी विभाग, वनस्थली विद्यापीठ

निबंध विधा में व्यंग्य का प्रयोग आधुनिक काल की देन है। वास्तव में निबंधों के माध्यम से व्यंग्य की सशक्त अभिव्यक्ति भी होती है। अत: इसे साहित्य-जगत् में व्यापक स्वीकृति मिली। व्यंग्य-निबंधों के अनेक प्रकार भी रहे हैं। व्यक्तिगत व्यंग्य-निबंध, आत्मव्यंग्य, राजनीतिक व्यंग्य-निबंध, प्रशासिनक व्यंग्य-निबंध, सामाजिक व्यंग्य-निबंध, धार्मिक व्यंग्यात्मक निबंध, साहित्यिक व्यंग्यात्मक निबंध, शैक्षिक व्यंग्य-निबंध आदि भेदों से यह ज्ञात होता है कि व्यंग्य और निबंध का संबंध अत्यंत घनिष्ठ है। वैसे तो व्यंग्य की संप्रेषण-शक्ति इतनी अधिक होती है कि वह साहित्य की सभी विधाओं–कहानी, उपन्यास, नाटक आदि में समा सकता है, फिर भी निबंधों में व्यंग्य अधिक सफलता से अभिव्यक्ति पा जाता है। हिंदी व्यंग्य-निबंधों का सूत्रपात भारतेंदुयुग से हुआ था। इस समय के रचनाकारों विविध पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से व्यंग्य-निबंध के द्वारा तत्कालीन युग पर लगातार चोट कर रहे थे। भारतेंदु हरिश्चंद्र प्रथम साहित्यकार थे, जिन्होंने व्यंग्य को पहले-पहल उस सामाजिक चेतना से जोड़ा जो बाद में आधुनिक व्यंग्य-साहित्य का आधार बनी। उनके व्यंग्यात्मक निबंधों में–'स्वर्ग में विचार सभा', 'स्त्रीसेवा पद्धति', 'मदिरास्तवराज', 'अँग्रेज़ स्तोत्र', 'ईश्वर बड़ा विलक्षण है', 'पाँचवें पैगंबर', 'लेवीप्राण लेवी' आदि हैं। भारतेंदु और उनके समकालीन निबंधकारों ने व्यंग्य की आत्मा को पहचाना था। देश की पराधीनता और सामाजिक-धार्मिक कुप्रथाएँ व्यंग्य का कथ्य बनीं। स्वयं भारतेंदु ने इस युग के अग्रणी बनकर अँग्रेज़ी राज की नीति, स्वार्थ, शासकों की शोषक प्रवृत्ति पर अपने निबंधों में व्यंग्य किया है। भारतेंदु के निबंधों में आवेश है तो आलोचना भी है और वह भी व्यंग्य के पुट के साथ। भारतेंदुयुग के अन्य लेखकों में बालकृष्ण भट्ट, पं॰ प्रतापनारायण मिश्र, बदरीनाथ चौधरी 'प्रेमघन', बालमुकुंद गुप्त इस युग के प्रधान लेखक हैं, जो धार्मिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, प्रशासनिक आदि अनेक प्रकार के व्यंग्यात्मक निबंधों के लेखन में प्रवृत्त हुए। इनके गंभीर, चिंतनपरक निबंधों के मध्य में व्यंग्य का आस्वादन किया जा सकता है। बालमुकुंद गुप्त की ख्याति तो 'शिवशंभू के चिठ्ठे' नामक व्यंग्य स्तंभ-लेखक के रूप में हो चुकी थी। फिर भी भारतेंदुयुगीन निबंध विशुद्ध व्यंग्य की श्रेणी में नहीं आते हैं। वस्तुत ये ललित व्यंग्य-निबंधों की कोटि के निबंध हैं, जिनमें कहीं-कहीं व्यंग्य का पुट है। समाज और राष्ट्रोन्मुख चिंतन के कारण समकालीन विकृतियों के प्रति जो आक्रोश मुखरित होता है, वही भारतेंदुयुगीन व्यंग्य का वास्तविक स्वरूप है।

द्विवेदीयुग में भारतेंदुयुग की परंपरा को विकसित किया गया है। इस युग के श्रेष्ठ निबंधकार महावीरप्रसाद द्विवेदी हैं। उन्होंने विविध विषयों पर व्यंग्यात्मक निबंधों का सृजन किया है। इस युग में अन्य सक्रिय निबंधकारों में माधवप्रसाद मिश्र, सरदार पूर्णसिंह, पं॰ चंद्रधरशर्मा गुलेरी, बाबू गुलाबराय आदि हैं, जिन्होंने श्रेष्ठ व्यंग्य-निबंधों की रचना की। इस युग में द्विवेदीजी के निबंधों के अलावा सरदार पूर्णसिंह जी के 'मजदूरी और प्रेम', 'आचरण की सभ्यता', 'सच्ची वीरता' आदि निबंधों से सार्थक व्यंग्य उभरकर सामने आया है। वहीं चंद्रधर शर्मा गुलेरी के निबंध परिमाण में कम होने के बावजूद प्राणवान और सशक्त हैं। भारतेंदुयुग की तुलना में इस युग में विचार-प्रधान निबंध अधिक सामाजिक, विविधतापूर्ण व सार्थक रहे हैं, जिनके बीच-बीच में व्यंग्यात्मकता प्राप्त हो जाती है। शुक्लयुग में निबंधों की बनावट और बुनावट दोनों में परिवर्तन आया। आचार्य रामचंद्र शुक्ल के निबंधों ने हिंदी-निबंधों के साथ-साथ हिंदी साहित्य को भी एक नई दिशा प्रदान की। उनके निबंध-संग्रह 'चिंतामणि' के निबंधों में हम व्यंग्य का पुट देख सकते हैं। इस संग्रह के 'लोभ और प्रीति', 'श्रद्धा-भक्ति' आदि में मानव-व्यवहार के नकलीपन पर व्यंग्य किए गए हैं। शुक्लजी 'श्रद्धा-भक्ति' में लिखते हैं–'इस व्यापारयुग में ज्ञान बिकता है, न्याय बिकता है–तब श्रद्धा ऐसे भाव क्यों न बिकें। पर असली भाव तो इस लेन-देन के व्यवहार के लिए उपस्थित नहीं किए जा सकते। खैर नकली ही सही।'[1] इस युग के निबंधकारों ने धार्मिक आडंबर, ढोंगी देशप्रेमी, लोभी प्रवृत्ति, कविता-कर्म, कंजूस लोग आदि विभिन्न विषयों पर व्यंग्य किया है। स्वतंत्रतापूर्व काल में साहित्यिक, धार्मिक, सामाजिक, प्रशासनिक आदि विविध प्रकार के व्यंग्यात्मक निबंध इस क्षेत्र में अग्रणी रहे। प्रस्तुत युग में माखनलाल चतुर्वेदी, पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी, सियारामशरण गुप्त, वियोगी हरि, बेढब बनारसी आदि ने तत्कालीन युग की समस्त प्रवृत्तियों पर चोट की है। इनमें बेढब बनारसी का लेखन स्वतंत्रतापूर्व और स्वतंत्रता पश्चात् दोनों के संधिकाल का है। स्वतंत्रतापूर्व काल में किसान की आर्थिक परिस्थिति के संदर्भ में 'उधार का सौदा' व्यंग्य-निबंध में साहूकारों पर तीव्र प्रहार किया गया है। उनके व्यंग्य-निबंधों में कवि, नेता, साहूकार, स्वार्थी मनुष्य, मीडिया, समाचार-पत्र, अध्यापक, सेनापति, अफसर आदि के संदर्भ में करारी चोट मिलती है। स्वतंत्रतापूर्व काल के निबंध-साहित्य का जब हम अनुशीलन करते हैं तो पाते हैं कि व्यंग्य-निबंध ही उस समय का ऐसा शस्त्र था, जो समाजसुधार, लोगों को चेतनशील बना देने का काम कर रहा था। स्वातंत्र्योत्तर युग तक पहुँचते-पहुँचते हिंदी व्यंग्य-निबंध अपनी प्रारंभिक अवस्था को पार कर अपनी विकास की अवस्था को पहुँचा है। गद्य युग के आरंभ से निबंधों के साथ-साथ व्यंग्य-निबंधों का भी विकास होता गया।

स्वातंत्र्योत्तर काल में व्यंग्य-निबंध साहित्य को एक अलग रूप मिला। आज़ादी के बाद व्यंग्य साहित्य को एक अलग विधा के रूप चिह्नित किया जाने लगा। इस युग में घटित विभिन्न घटनाएँ, प्रसंग व्यंग्य के माध्यम बने। इस युग में व्यंग्य-निबंधकारों की एक पूरी पीढ़ी व्यंग्य का सृजन करने में लगी थी, जिनमें प्रमुख नाम हरिशंकर परसाई, रवींद्रनाथ त्यागी, बरसानेलाल चतुर्वेदी, शरद जोशी, केशवचंद्र वर्मा, रोशनलाल सुरीरवाला, लतीफ घोंघी, नरेंद्र कोहली, श्रीलाल शुक्ल, संसारचंद्र, अमृतराय आदि हैं, जिन्होंने व्यंग्य-निबंधों को शीर्षस्थ विधा का रूप देने में अमूल्य योग दिया। हरिशंकर परसाई कालजयी व्यंग्यकार हैं। उनका लेखन-अनुभवों की व्यापकता और विचारों की गहराई दोनों से संपन्न है। उन्होंने व्यंग्य-लेखन की शुरुआत अख़बारों के

स्तंभ-लेखन से की थी। उनके व्यंग्य-लेखन का विस्तार उपन्यास, कहानी, निबंध, लघुकथा आदि साहित्य के विभिन्न रूपों में है। हरिशंकर परसाई के 'भूत के पाँव पीछे', 'सुनो भाई साधो', 'पगडंडियों का ज़माना', 'सदाचार का ताबीज़', 'निठल्ले की डायरी', 'और अंत में', 'शिकायत मुझे भी है', 'ठिठुरता हुआ गणतंत्र', तिरछी रेखाएँ, 'अपनी-अपनी बीमारी', 'वैष्णव की फिसलन', 'मेरी श्रेष्ठ व्यंग्य रचनाएँ', 'विकलांग श्रद्धा का दौर' आदि प्रमुख व्यंग्य-संग्रह हैं। हरिशंकर परसाई ने हिंदी व्यंग्य-साहित्य को दिशा ही नहीं दी, वरन् उसे साहित्य की सर्वोत्तम विधा के रूप में अधिष्ठित भी किया। हरिशंकर परसाई व्यंग्य को एक सोद्देश्य कर्म मानते हैं, इस संबंध में उनका कथन है, 'व्यंग्य जीवन से साक्षात्कार करता है, जीवन की आलोचना करता है, विसंगतियों-मिथ्याचारों और पाखंडों का पर्दाफाश करता है।'[2] परसाई के व्यंग्य-निबंधों में देश की राजनीति, सामाजिक विकृतियाँ, धार्मिक आडंबर आदि सभी क्षेत्रों की विसंगतियाँ सम्मिलित हैं। इनके व्यंग्य-निबंधों में वैदग्ध्यता के दर्शन होते हैं। उदाहरण द्रष्टव्य है–'भोज पर बैठे, तो बातें देश की होती रहीं। वे लोग अत्यंत भावुक हो उठे थे। कहते–रीयली दी कंट्री इज गोंइग टु डाग्ज। दूसरा कहता–आई से, बी आर दी मोस्ट फालन पीपुल। तीसरा कहता–रीयली, दी होल कंट्री इज स्टारविंग। मुझे पहली बार मालूम हुआ कि तली मछली और सलाद के साथ देश की दुर्दशा इतनी स्वादिष्ट लगती है।'[3] सपाटबयानी द्वारा तीखा व्यंग्य इनकी निजी विशेषता रही है। हरिशंकर परसाई ने सहज भाव से समाज में विद्यमान विसंगति को लेकर अनेक विषयों पर प्रहार किया है। 'मेरे एक पुराने पड़ोसी बिक्रीकर विभाग में थे और भरपूर घूस खाते थे। उनकी बीबी उन्हें इतना प्यार करती थी कि वे मर जाते तो वह उनकी चिता पर सती हो जाती। उसे यह कतई बर्दास्त न होता कि पति तो स्वर्ग में घूस खाए और वह यहाँ उसके लाभ से वंचित रह जाए। कितने सुखी लोग थे। शाम को सारा परिवार भगवान की आरती गाता था। जय जगदीश हरे। भगवान के सहयोग के बिना शुभ कार्य नहीं होते। आरती में आगे आता–सुख संपत्ति घर आवे। शाम को यह बात कही जाती और सुबह बनियों के लाल वस्त्रों में बँधी सुख-संपत्ति चली आती।'[4]

हरिशंकर परसाई राजनीतिक व्यंग्यकार के रूप में प्रसिद्ध रहे हैं। दूषित राजनीतिक परिवेश, नेताओं का भ्रष्ट चरित्र, प्रजातंत्र की ख़ामियाँ, इन सभी पर इनकी गहरी नज़र रही है। देश की दुर्दशा पर व्यंग्यात्मक टिप्पणी करते हुए वे लिखते हैं, 'उस दिन वहाँ एक गोष्ठी थी। गोष्ठी का विषय था, देश की वर्तमान दशा-दिशा 'याने दुर्दशा'। अच्छे भाषण हुए। कार्यक्रम सफल रहा। देश की दुर्दशा अगर ज़रा कम होती तो कार्यक्रम इतना सफल न होता। मैंने सोचा, मेरे देश तू कितना विचित्र और महान है। कुछ लोगों के कार्यक्रम की सफलता के लिए तू अपनी कितनी दुर्दशा करवा रहा है।'[5] हरिशंकर परसाई के राजनीतिक व्यंग्य का प्रमुख निशाना वह नेतावर्ग है, जो अनाचार, अवसरवाद, आडंबर और मूल्यहीनता की प्रतिकृति है। इस नेतावर्ग का अपने कार्यक्षेत्र राजनीति के गलियारों को पार कर शिक्षा, समाज, धर्म, प्रशासन सभी में दाखिला होता गया और सभी क्षेत्र इससे प्रभावित और दूषित होते गए। इन सभी पक्षों के यथार्थ को अपने लक्ष्य की पैनी धार से उकेरा है। दैनिक जीवन की सरल तथा सामान्य दिखने वाली घटनाओं को हरिशंकर परसाई बड़ी सूक्ष्मता से अंकन करते हैं। हरिशंकर परसाई की व्यंग्य सूक्तियाँ बहुत मार्मिक और सीधे हृदय पर आघात करने वाली हैं। जैसे–'जो पानी छानकर पीते हैं, वे आदमी का खून बिना छाना पी जाते हैं।'(ठिठुरता हुआ गणतंत्र, पृ॰ 3) 'गाली वही दे सकता है जो रोटी खाता है। पैसा खाने वाला

सभी से डरता है।'(ठिठुरता हुआ गणतंत्र, पृ॰ 3) 'इस देश में जो किसी की नौकरी नहीं करता, वह चोर समझा जाता है।'(ठिठुरता हुआ गणतंत्र, पृ॰ 3)। रवींद्रनाथ त्यागी परसाई के संबंध में लिखते हैं कि, 'आजादी के पहिले का हिंदुस्तान जानने के लिए जैसे सिर्फ़ प्रेमचंद ही पढ़ना काफ़ी है। उसी तरह आज़ादी के बाद के भारत का पूरी दस्तावेज़ परसाई की रचनाओं में सुरक्षित है।'[6]

स्वातंत्र्योत्तर काल में हिंदी में व्यंग्य को विकसित करने में प्रथम कोटि के व्यंग्यकारों में शरद जोशी का महत्त्वपूर्ण योगदान है। उन्होंने अपने व्यंग्य-लेखन का प्रारंभ अख़बारों के स्तंभ लिखने तथा बाद में धर्मयुग, साप्ताहिक हिंदुस्तान, सारिका जैसी प्रतिष्ठित पत्रिकाओं से किया था। शरद जोशी व्यंग्य में आत्म-चिंतन, स्व-मूल्यांकन करते रहना आवश्यक मानते हैं। इनके अब तक 'परिक्रमा', 'जीप पर सवार इल्लियाँ', 'किसी बहाने', 'रहा किनारे बैठ', 'तिलस्म', 'दूसरी सतह', 'मेरी श्रेष्ठ व्यंग्य रचनाएँ' आदि व्यंग्य निबंध-संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। शरद जोशी ने जीवन के सभी क्षेत्रों से संबंधित विषयों पर व्यंग्य-निबंध लिखे हैं। राजनीति से सांस्कृतिक अवमूल्यन तक, सामाजिक पतन से आर्थिक विघटन सभी कुछ उसमें अपने यथार्थ एवं सहज रूप में मौजूद है। वे कितना तीखा व्यंग्य करते हैं जब ये कहते हैं, 'भारतीय संस्कृति को गहराई से समझना चाहते हो तो अचार खाओ और उसका आदर करो। जो अचार में ख़ूबी है, वही ख़ूबी हम भारतवासियों में है। हम बरसों मर्तबान में बंद रह सकते हैं, दुनिया से कटे हुए और जब बाहर आते हैं तब सभी विशेषताएँ आत्मसात् किए ताज़े लगते हैं। हम अपने अतीत के तेल में पड़े अचार हैं, मगर तेज़, तीखे और असरकारक।'[7] सार्थक व्यंग्य को कहने के लिए ये सूक्तियों, प्रतीकों, उपमानों का बहुधा प्रयोग करते हैं। उदाहरण द्रष्टव्य है–'देश की प्रतिभाएँ दो हिस्सों में बँट गई हैं। कुछ कार में घुस गईं, बाकी सरकार में घुस गईं। (पिछले दिनों, पृ॰ 52), देश बाढ़ में डूबता है और नेता चिंता में डूबते हैं। (वही, पृ॰ 72)। डॉ॰ बालेंदुशेखर तिवारी ने कहा है, 'शरद जोशी ने हिंदी की व्यंग्य-विधि को शिल्प की सर्वाधिक कलात्मकता प्रदान की है। उनके व्यंग्य-शिल्प ने रचना-विधान ही नहीं, अभिव्यंजना की दिशा में भी नए गवाक्षों को खोला है।'[8]

हिंदी व्यंग्य-साहित्य में एक हास्य-व्यंग्यकार के रूप में रवींद्रनाथ त्यागी का महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है। रवींद्रनाथ त्यागी व्यंग्य में हास्य के प्रयोग के विषय में लिखते हैं, 'समाज की कुरीतियों का भंडाफोड़ करने का कार्य प्रमुखतः व्यंग्य द्वारा ही हो सकता है। यदि उसमें हास्य भी समाविष्ट हो जाए तो रंग और भी तेज़ हो जाएगा।'[9] इनके व्यंग्य-निबंध-संग्रहों में–'भित्ति-चित्र', 'मल्लिनाथ की परंपरा', 'कृष्णवाहन की कथा', 'देवदार के पेड़', 'शोक-सभा', 'फूलों वाले कैक्टस', 'ऋतु-वर्णन', 'इस देश के लोग', 'पराजित पीढ़ी के नाम', 'आत्मलेख', 'इतिहास का शव' आदि प्रमुख हैं। इनके रचना-संसार का क्षेत्र काफ़ी व्यापक रहा है। साहित्य, शिक्षा, राजनीति-प्रशासन, समाज-धर्म, आर्थिक आदि ऐसा कोई कोना नहीं रहा, जो इनकी अभिव्यक्ति और व्यंग्य का निशाना न बना हो। एक प्रशासनिक अधिकारी होने के नाते जितना अनुभव रवींद्रनाथ त्यागी को प्रशासनिक और आर्थिक क्षेत्र का था उसका यथार्थ वर्णन इनके व्यंग्य-निबंधों में प्राप्त हो जाता है। अधिकारियों की अकर्मण्यता, भ्रष्टाचार, कार्यकुशलता, अक्षमता आदि सभी पक्षों को उन्होंने अपने व्यंग्य का लक्ष्य बनाया। साहित्य इनका प्रिय क्षेत्र रहा है। साहित्यकार, संपादक-प्रकाशक, आलोचक, और साहित्य के क्षेत्र की सभी विसंगतियाँ इनके व्यंग्य का कारण

बनी हैं। रवींद्रनाथ त्यागी के व्यंग्य-निबंधों की एक निजी विशेषता रही है कि उन्होंने विविध रसों को लेकर भी व्यंग्य प्रस्तुत करते हैं। यथा–'वीररस की उत्पत्ति के यदि लेखक किसी को पीटता है तो भी पुलिस हस्तक्षेप नहीं करेगी। रौद्ररस की स्थापना के लिए लेखक लोग किसी भी नशे को, किसी भी वक़्त और किसी भी हद तक ग्रहण कर सकेंगे। इससे वीभत्सरस की कमी भी दूर हो जाएगी। बाकी रसों में करुणरस का दर्जा सबसे ऊँचा है। उसकी उत्पत्ति के हेतु यह उचित होगा कि सरकार समय-समय पर किसी भी लेखक को अकारण जेल भेजती रहा करेगी।'[10] सपाटबयानी के द्वारा व्यंग्य-निबंधों की निर्मिति रवींद्रनाथ त्यागी का वैशिष्ट्य है। जैसे–'सबके सामने चौराहे पर हत्या की जाती है मगर चश्मदीद गवाहों का जो देश में कानून और व्यवस्था कायम है, नहीं तो ज़नाब दिन में निकलना बंद हो जाता। ये पेशेवर गवाह वारदात की जगह पर हमेशा मौजूद रहते हैं, उनके बयान को कोई नहीं काट सकता और वे जो कुछ कहते हैं एकदम सत्य होता है। सत्य की जीत होती है, पुलिस कातिल को पकड़ती है, सरकार वकील दिव्य दृष्टि वाले गवाहों को बटोरता है, मजिस्ट्रेट चार्टशीट बनाता है और सेशन जज फाँसी की सजा देता है।'[11]

रवींद्रनाथ त्यागी के व्यंग्य-निबंधों की एक और विशेषता है कि वे पाठकों से अभिन्न मित्र की तरह गपशप की शैली में व्यंग्यात्मक लहजे में बात करते हैं, जैसे, 'हमें देखिए, फाइल पढ़ें या न पढ़ें तनख्वाह फिर भी मिलेगी। इंक्रीमेंट भी मिलेगा और प्रोमोशन भी होगा। इन चीजों को हम कैसे रोक सकते हैं। मनुष्य का अधिकार तो सिर्फ कर्मों पर है–उन्हें वह चाहे करे, चाहे न करे। फलों पर उसका अधिकार नहीं है। जो होना बुरा है वह तो होकर ही रहेगा। हम क्या, देश के हज़ारों सरकारी अफसरों के साथ यहीं स्थिति है।'[12]

रवींद्रनाथ त्यागी हास्य के साथ व्यंग्य का मिश्रण कर विनोदात्मकता पैदा करते हैं। यथा, 'कुछ गाने वाले गला इस कदर फाड़ते थे कि उनका साज उनके मुख के भीतर आसानी से रखा जा सकता था तो कोई साहब ऐसे होते कि उनके अलाप सुनकर कुत्ते-पिल्लों के लड़ने का सच्चा मजा मिलता था। गाते हुए हाथ-पैर इस तरह मार रहे थे कि लगता था कि किसी से कुश्ती लड़ रहे हैं।'[13] रवींदनाथ त्यागी व्यंग्य-निबंधों में पौराणिक, ऐतिहासिक संदर्भों के साथ देश के लोकगीतों, विदेशी साहित्य, सस्कृति व राजनीति की पृष्ठभूमि भी ग्रहण करते हैं। अपने आपका परिचय देकर व्यंग्य को और भी गहरा बना देने में रवींद्रनाथ त्यागी कुशल हैं। रवींद्रनाथ त्यागी अपने व्यंग्य को सशक्त बनाने में मौलिक व्यंग्य सूक्तियों, मुहावरों, कहावतों आदि का अधिकाधिक प्रयोग करते हैं, जो उनके व्यंग्य को और भी संप्रेषणीय बना देता है। शेरो-शायरी का भी बखूबी प्रयोग इनमें मिलता है। रवींद्रनाथ त्यागी के संदर्भ में प्रकाशचंद्र गुप्त लिखते हैं, 'वे नौकरशाही के गोरखधंधे पर चुटीले व्यंग्य का रस चखते हैं, साहित्य के नए फैशनों पर कटाक्ष का सुख लूटते हैं, वे जीवन पर एक हल्की-फुल्की किंतु गंभीर दृष्टि डालते हैं और उसे बेहतर बनाने की प्रेरणा भी अनायास ही ग्रहण करते हैं।'[14]

नरेंद्र कोहली साहित्य की विविध विधाओं में अपनी लेखनी चलाकर एक दक्ष व कुशल रचनाकार होने का प्रमाण प्रस्तुत करते हैं। नरेंद्र कोहली एक सशक्त व्यंग्यकार तथा व्यंग्य-समीक्षक भी हैं। व्यंग्य के क्षेत्र में इन्होंने 'एक और लाल तिकोन', 'पाँच एब्सर्ड उपन्यास', 'जगाने का अपराध', 'आश्रितों का विद्रोही', 'मेरी श्रेष्ठ व्यंग्य रचनाएँ', 'आधुनिक लड़की की पीड़ा' आदि व्यंग्य रचनाएँ दी हैं, जिनमें व्यवस्था पर कठोर व्यंग्य किया गया है। अपने व्यंग्य में कठोरता

का समर्थन करते हुए वे लिखते हैं, 'मैंने हल्की परिस्थितियों में इन रचनाओं की सर्जना नहीं की है। वर्तमान विसंगतियों को जिस रूप में मैंने देखा, अधिकतर अनुभव किया, उनके प्रति मेरे मन में आक्रोश जागा। उस आक्रोश को अभिव्यक्ति देकर अपने को संतुलित रखने के लिए मैंने व्यंग्य-रचनाएँ की है।'[15]

श्रीलाल शुक्ल व्यंग्य को स्वतंत्र पहचान दिलाने में समर्थ रचनाकार रहे। इन्होंने रागदरबारी लिखकर व्यंग्य को एक नई दिशा दी। इनके व्यंग्य-निबंधों को 'यहाँ से वहाँ', 'मेरी श्रेष्ठ व्यंग्य रचनाएँ', 'अगद के पाँव' आदि में संगृहीत किया गया है। श्रीलाल शुक्ल के लेखन की एक विशेषता है कि वे एक समय एक ही साथ कई कई क्षेत्रों पर अप्रत्यक्ष व्यंग्य कर जाते है। श्रीलाल शुक्ल के व्यंग्य-वैशिष्ट्य को रेखांकित करते हुए उपेंद्रनाथ अश्क लिखते हैं–'श्रीलाल शुक्ल ऐसे सशक्त लेखक हैं, जिन्होंने व्यवस्था के अंदर रहते हुए नितांत निर्मम और निरपेक्ष-भाव से उसे बीच बाज़ार नंगा कर दिया है।'[16]

एक श्रेष्ठ व्यंग्यकार के रूप में प्रसिद्ध लतीफ घोंघी के 'बीमार होने का दुख', 'मेरी श्रेष्ठ व्यंग्य रचनाएँ', 'बब्बूमियाँ कब्रिस्तान में', 'किस्सा दाढ़ी का', 'उड़ते उल्लू के पंख', 'मृतक से क्षमा-याचना', 'संकटलाल जिंदाबाद', 'तीसरे बंदर की कथा' प्रमुख व्यंग्य-संग्रह हैं। लतीफ घोंघी ने मौजूदा सामाजिक, साहित्यिक, राजनीतिक जीवन में उत्पन्न विद्रूपताओं का सहज और निश्छल अंकन किया है। सरकारी तंत्र में फैले भ्रष्टाचार से लेकर साहित्यिक क्षेत्र में व्याप्त गुटबाज़ी तक व्यंग्यकार की निगाह गई है। वे व्यंग्य में कठोरता व आक्रमकता के समर्थक नहीं हैं। रवींद्रनाथ त्यागी इनके व्यंग्य के विषय में लिखते हैं, 'उनका व्यंग्य बेहद तीखा और मर्म तक चोट करने वाला है। उनकी रचना का क्षेत्र बहुत विस्तृत है–साहित्य और राजनीतिक से लेकर दिन-प्रतिदिन के जीवन तक सभी मुद्दों को उन्होंने पकड़ा है। उनकी भाषा सरल है और कहीं-कहीं तो कमाल का लचीलापन है।'[17]

आज़ादी के बाद अन्य व्यंग्य-निबंधकारों में बरसानेलाल चतुर्वेदी का नाम भी ससम्मान लिया जाता है। बरसानेलाल चतुर्वेदी के व्यंग्य-संग्रहों में–'महामति चाणक्य राजदूत बने', 'बुरे फँसे', 'भोला पंडित की बैठक', 'मेरी श्रेष्ठ व्यंग्य रचनाएँ', 'मिस्टर चोखेलाल' आदि हैं। इनके व्यंग्य-संग्रहों में शिक्षा, साहित्य-साहित्यकार, समाज की असमानता, भाई-भतीजवाद, भ्रष्टाचार आदि प्रमुख विषय हैं। इन्होंने स्वयं व्यंग्यकार होते हुए भी व्यंग्यकारों पर व्यंग्य किया, जो उनके स्पष्ट-कथन का प्रतीक है। जैसे–व्यंग्यकार इधर तो व्यवस्था पर व्यंग्य करते हैं और उधर बड़े-बड़े औद्योगिक प्रतिष्ठानों तथा सरकारी प्रतिष्ठानों में घुसने की चेष्टा करते हैं और घुस बैठे हैं। इनकी कथनी तथा करनी में साम्य नहीं है। मुनाफ़ाखोरी पर व्यंग्य करेंगे और साहित्यिक समारोहों में उनसे ही चंदा लेकर उन्हें पदासीन करेंगे। प्रकाशकों पर व्यंग्य करेंगे, गुपचुप उनका नवनीत-लेपन करेंगे। सिफारिश की प्रथा के विरुद्ध व्यंग्य लिखेंगे, साथ ही सिफारिश कराने के लिए मंत्रियों के तलवे चाटेंगे। नेताओं पर व्यंग्य करेंगे, साथ में 'पद्मश्री' आदि लेने के चक्कर में उनके अभिनंदन-ग्रंथों का संपादन भी करेंगे।'[18] बरसानेलाल चतुर्वेदी भी व्यंग्य के साथ हास्य को स्वीकृति प्रदान करते हैं। इसलिए इनके व्यंग्य-निबंधों में हास्य का गहरा पुट मिलता है।

केशवचंद्र वर्मा एक व्यंग्य-निबंधकार तथा समर्थ चिंतक हैं। केशवचंद्र वर्मा की पैनी दृष्टि समाज के हर एक क्षेत्र तक पहुँची है। वे अपने हर एक वाक्य में विसंगतियों पर कठोर

व्यंग्य करते हैं। एक व्यंग्यकार होते हुए उन्होंने एक व्यंग्यकार की आज के समय में जो शोचनीय स्थिति समाज में है, उसी को लक्ष्य कर वे कहते हैं, 'इस युग में लेखक होना ही पूर्व जन्म के कुकर्मों का फल है और फिर उसमें हास्य-व्यंग्य का लेखक होना तो पूर्वजन्म के कुकर्मों के साथ निकृष्ट योनि का भी स्पष्ट संकेत देता है।'[19] इनके व्यंग्य-संग्रहों में 'लोमड़ी का मांस', 'अफलातूनों का शहर', 'हड़ताली बाबू', 'आधुनिक हिंदी हास्य-व्यंग्य' (संपा.) प्रमुख हैं। समाज-साहित्य और राजनीति की विसंगतियाँ इनके व्यंग्यों का मुख्य विषय बनी हैं। किस्सागोई और परिस्थितियों की सूक्ष्म पड़ताल इनके व्यंग्य-निबंधों का विशेष गुण है।

डॉ॰ सुदर्शन मजीठिया ने हास्यमिश्रित व्यंग्य-निबंधों की रचना की, जो उनके व्यंग्य-संग्रह 'इंडीकेट बनाम सिंडीकेट', 'मुख्यमंत्री का डंडा', 'कुछ इधर की कुछ उधर की', 'टेलीफोन की घंटी से', 'मेरी श्रेष्ठ व्यंग्य रचनाएँ', 'डिस्को कल्चर' आदि में संगृहीत है, जिसमें शिक्षा और संस्कृति, समाज और राजनीति के क्षेत्र में फैली अराजकता का उद्घाटन किया गया है। वहीं चार दशकों से लगातार व्यंग्य-लेखन में सक्रिय शंकर पुणतांबेकर ने 'रेडीमेड कपड़े', 'श्रेष्ठ लघु कथाएँ, 'कैक्टस के काँटे', 'प्रेम-विवाह', 'विजिट यमराज की' आदि प्रमुख व्यंग्य निबंध-संग्रहों में घर और परिवार, समाज और राजनीति, शिक्षा और प्रेम, व्यवस्था और न्याय, धर्म और प्रचार, कला और संस्कृति जैसे विविध विषयों पर बेधड़क व्यंग्य किए हैं। कल्पना और यथार्थ का एक अनुपात में अद्भुत मिश्रण इनमें मिलता है। आज की विकृतियों के शायद ही कोई अंग हों, जो शंकर पुणतांबेकर की पैनी दृष्टि से छूटे हों।

डॉ॰ प्रेम जनमेजय और डॉ॰ बालेंदुशेखर तिवारी एक सफल व्यंग्यकार के साथ-साथ व्यंग्य समीक्षक भी रहे हैं। ज्ञान चतुर्वेदी, के॰पी॰ सक्सेना, हरीश नवल, संसारचंद्र, सुरेश कांत, राधाकृष्ण, कृष्ण चराटे, अजातशत्रु, सूर्यबाला, उषाबाला, पूरन सरमा, हरि जोशी, मुद्राराक्षस, रामावतार चेतन, यशवंत कोठारी, डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल, अशोक शुक्ल, आदि और अनेक नाम हैं, जो व्यंग्य के प्रति पूर्ण समर्पित हैं। इन व्यंग्यकारों के व्यंग्य-लेखन का नव्यता और प्रस्तुति की प्रहारक भंगिमा देने में महत्त्वपूर्ण अवदान है।

निष्कर्षत: हिंदी का अधिकांश व्यंग्य-साहित्य निबंधों के रूप में ही मिलता है। हिंदी-निबंधों में व्यंग्य-विषय का जितना विस्तार दिखाई देता है, उतना अन्य विधाओं में नहीं। साहित्य, समाज, शिक्षा, राजनीति, अर्थ, धर्म आदि के विविध पक्षों और उनकी समस्त विसंगतियों को व्यंग्य का विषय बनाया गया है। विसंगतियों और पाखंडों के उद्घाटन के लिए व्यंग्य-निबंधकारों ने मिथकों, सूक्तियों, काव्योक्तियों का इतना कलात्मक उपयोग किया है कि उनके कथ्य बहुत प्रभावशाली हैं और व्यंग्य बहुत आक्रामक बन गया है। आज व्यंग्य-निबंधों की यह परंपरा अपने पूर्ण उत्कर्ष पर है। इसमें संदेह नहीं कि बुजुर्ग व्यंग्यकारों के साथ नित आने वाले नए व्यंग्यकार के व्यंग्य-कर्म हिंदी व्यंग्य-निबंध को एक सुनिश्चित छवि प्रदान करते हैं वरन् समकालीनता को खँगालते हुए पाठकीय मानस को जाग्रत और परिष्कृत भी करते हैं।

संदर्भ

1. आचार्य रामचंद्र शुक्ल, चिंतामणि, भाग-1, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2007 पृ॰ 30
2. हरिशंकर परसाई, सदाचार का ताबीज़, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, 1971, पृ॰ 10
3. हरिशंकर परसाई, मेरी श्रेष्ठ व्यंग्य रचनाएँ, ज्ञान भारती प्रकाशन, दिल्ली, 1977, पृ॰ 7

4. हरिशंकर परसाई, अपनी-अपनी बीमारी, राजपाल एंड संस, दिल्ली, 1972, पृ॰ 48-49
5. हरिशंकर परसाई, मेरी श्रेष्ठ व्यंग्य रचनाएँ, पृ॰ 6
6. रवींद्रनाथ त्यागी, गणतंत्र दिवस की शोभायात्रा, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, 1991, पृ॰ 55
7. शरद जोशी, दूसरी सतह, अनादि प्रकाशन, इलाहाबाद, 1978 पृ॰ 58
8. डॉ॰ बालेंदुशेखर तिवारी, हिंदी का स्वातंत्र्योत्तर हास्य और व्यंग्य, अन्नपूर्णा प्रकाशन, कानपुर, 1978 पृ॰ 207
9. रवींद्रनाथ त्यागी प्रतिनिधि रचनाएँ, सं॰ कमलकिशोर गोयनका, पराग प्रकाशन, दिल्ली, 1987, पृ॰ 327
10. रवींद्रनाथ त्यागी, देवदार के पेड़, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, 1973, पृ॰ 32
11. वही, पृ॰ 112
12. रवींद्रनाथ त्यागी, उर्दू हिंदी हास्य-व्यंग्य, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1991, पृ॰ 231
13. रवींद्रनाथ त्यागी, देवदार के पेड़, पृ॰ 75
14. रवींद्रनाथ त्यागी, भित्ति-चित्र, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1966 आवरण पृष्ठ से उद्धृत,
15. नरेंद्र कोहली, मेरी श्रेष्ठ व्यंग्य रचनाए, ज्ञान भारती दिल्ली, 1977 भूमिका, पृ॰ 7
16. उपेंद्रनाथ अश्क, अन्वेषण की सहयात्रा, पृ॰ 3
17. लतीफ घोंघी, बब्बूमियाँ कब्रिस्तान में, इंद्रप्रस्थ प्रकाशन, दिल्ली, 1979, प्रथम आवरण पृष्ठ से उद्धृत,
18. बरसानेलाल चतुर्वेदी, भोला पंडित की बैठक, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, 1975 पृ॰ 14
19. केशवचंद्र वर्मा, आधुनिक हिंदी हास्य-व्यंग्य, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, 1961 प्रस्तावना से उद्धृत, पृ॰ 5

पुत्री श्री बुधराम विश्नोई
सेंट्रल कोआपरेटिव बैंक लि॰ बीकानेर
ब्रांच श्रीडूंगरगढ़
निकट हाईस्कूल रोड
श्रीडूंगरगढ़ (बीकानेर) राज॰ 331803
मो॰ 09887547908

हिंदी गीत की विकास-यात्रा

मंजू चौहान
हिंदी प्रवक्ता
के॰जी॰के॰ महाविद्यालय, मुरादाबाद (उ॰प्र॰)

आदिकाल से अब तक मनुष्य ने अपनी भावनाओं को प्रभावशाली बनाने के लिए गीतिशैली को अपनाया है। संस्कृत साहित्य में आचार्य अभिनवगुप्त ने गीति को मुक्तक रूप से परिभाषित किया है। विद्वानों के अनुसार–'मुक्तक काव्य वह है, जो हमारी वैयक्तिक भावना और अनुभूति को भावावेश में संगीतयुक्त करके कोमलकांत पदावली के माध्यम से व्यक्त करता है।' महादेवी वर्मा के अनुसार–'सच्चा और सफल गीत वह है, जो अपनी ध्वन्यात्मकता में गेय हो सके। अनुभूति को तीव्र बनाए रखने तथा उसको दूसरे तक पहुँचाने के लिए भाव की अभिव्यक्ति पर थोड़ा संयम भी आवश्यक हो जाता है। जल बँधी हुई नाली में गति के साथ बह सकता है। यह नियंत्रण और संयम बाहर से नहीं, वरन् स्वयं ही प्राप्त हो जाता है।'

मुक्तककाव्य में अनुभूति की प्रधानता रहती है। जब अनुभूति घनीभूत मात्रा में अभिव्यक्त होकर काव्यरूप धारण करती है, तब गीतिकाव्य की रचना होती है। भारतीय साहित्य में गीतिकाव्य का अलग रूप नहीं है, हिंदी में उसे पदनाम से पुकारा जाता है।

प्राचीनकाल में वैदिक साहित्य के उपरांत बौद्धों की थेरीगाथाओं, भवभूति के साहित्य और जयदेव के गीतिगोविंद में गीतिकाव्य का रूप दृष्टिगोचर होता है। प्राचीन हिंदी में सिद्ध साहित्य में गीतिकाव्य की रचना मिलती है। सरहपा का दोहाकोश प्रसिद्ध है। इसकी भाषा गेय और सरल है। डोम्मिपा की 'डोंबि-गीतिका' तथा कण्हवा की रचनाओं में रहस्यात्मक भावनाओं से परिपूर्ण गीतों की उपस्थिति है। बीसलदेव रासो और आल्हखंड कृतियाँ गीतिकाव्य के प्राचीनतम उत्कृष्ट उदाहरण हैं। जैनसाहित्य में आचार, रास, फागु, चरित आदि विभिन्न गीति-शैलियाँ मिलती है। डॉ॰ नगेंद्र के अनुसार 'रस' शब्द संस्कृत साहित्य में क्रीड़ा और नृत्य से संबंधित था। भरतमुनि ने इसे क्रीड़नीयक कहा है। वात्स्यायन के 'कामसूत्र' के रचनाकाल तक 'रास' में गायन का भी समावेश हो गया था।'

भारतीय साहित्य में गीतिकाव्य का सर्वप्रथम उदाहरण हमें कालिदास के 'मालविकाग्निमित्रम्' में मिलता है। हिंदी में गीतकाव्य का विकास भक्तिकाल में संभव हो सका। विद्यापति और चंडीदास ने राधाकृष्ण की प्रेमलीलाओं का वर्णन अपनी गीति रचनाओं में किया है। डॉ॰ नगेंद्र का कथन है कि 'विद्यापति के पद लोककंठ में सुरक्षित रहे, फलस्वरूप इनके भाषारूप में गायक की सुविधानुसार यत्किंचित परिवर्तन होते रहे।'

साहित्य में नई कविता के युग में हिंदीगीत ने नवीन रूप धरा। नए बिंबों और प्रतीकों के प्रयोग हुए। इसे नवगीत की संज्ञा मिली। डॉ॰ शंभूनाथ सिंह ने नवगीत को नई कविता के

समकक्ष माना है। उन्होंने नवगीत को पारंपरिक गीत से भिन्न बताया है। वस्तुतः नई कविता और नवगीत में तात्त्विक अंतर नहीं है। दोनों का स्थूल अंतर इतना ही है कि नई कविता मुक्त छंद या फिर छंदमुक्त रूप में लिखी जाती है और नवगीत छंदोबद्ध होता है।

विद्यापति को हिंदी में कृष्ण गीतिकाव्य का जन्मदाता माना जाता है। चैतन्य महाप्रभु इनके पद-गान का गायन करते करते भावविभोर होकर मूर्च्छित हो जाते थे।

गीतिकाव्य में कवि और गायक दोनों के व्यक्तित्वों का सहज और स्वतंत्र उद्‌भावन होता है। गीतिकाव्य में पदों का पूर्वापर संबंध नहीं होता। प्रत्येक गीत भाव और प्रसंग की दृष्टि से स्वतंत्र होता है। विद्यापति के गीतों की शैली और मधुर पदविन्यास जयदेव से अनुकरणीय होने के कारण विद्यापति को अभिनव जयदेव के नाम से विभूषित किया गया है। परवर्ती गीतकारों ने विद्यापति से ही सरसता ग्रहण की है। सूर और मीरा की पदावली में गीति का यह पक्ष प्रारंभिक काल में ही देखा जा सकता है।

हिंदी-गीतिकाव्य के उत्थान में निर्गुण भक्तिधारा के संतों का भी योगदान रहा है। नामदेव और कबीर इनमें प्रमुख है। भावसघनता, भाषा की भावानुसार सुकुमारता और लय-झंकार ने इनके गीतिपदों को जनप्रिय बनाया है। संतकाव्य-परंपरा के जनक यद्यपि स्वामी रामानंद हैं, परंतु कबीर ने इसको प्रथम चरण में ही उत्कर्ष प्रदान किया है। हिंदी में गीतिकाव्य की समृद्धि यहीं से आकलन की जाती है। कबीर का भावपक्ष अत्यंत सबल है। उन्होंने राम को अपना प्रियतम और स्वयं को राम की बहुरिया मानकर पद-गान किया। रैदास के पद-गान दो प्रकार के हैं–एक प्रकार तत्त्वकथन-संबंधी पदों का है तो दूसरे में भक्ति और समर्पण है। इनके गीति-पद संगीत का सरलतम प्रयोग है। इनके अतिरिक्त धर्मदास, नानक, मलूकदास, दादूदयाल, सुंदरदास आदि ने भी संतकाव्य परंपरा में हिंदी गीतिकाव्य में महत्त्वपूर्ण योग दिया है। इनके गान में रहस्यवाद, नश्वरता और प्रेमतत्त्व की प्रधानता है।

हिंदी गीतिकाव्य के विकास में प्रारंभ से ही सुगण भक्ति के कृष्णाश्रयी शाखा के कवियों का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। 'गीत-गोविंद' से पूर्व ही 'गाथा सप्तशती' और 'सरस्वती कंठाभरण' में राधा का उल्लेख हो चुका था, विद्यापति और चंडीदास ने इसी को बढ़ाते हुए हिंदी में राधाकृष्ण की प्रेमलीलाओं का आश्रय लेकर गीति-गान किया। सूर कृष्णभक्ति परंपरा के प्रमुख कवि हैं। विनय के पदों में तो सूर की निजी वेदना, शरणागत आस्था, उनकी आत्मा की सच्ची पुकार और चमत्कार ही दृष्टिगोचर होती हैं। 'सूरसागर' और 'साहित्य लहरी' श्रेष्ठ कृतियाँ हैं। ऐसी गीति-समृद्धि अन्यत्र नहीं देखी जाती।

गीति-शिल्प की दृष्टि से सूर के भ्रमरगीत तो अतुलनीय ही हैं। सूर से आज तक ब्रजभाषा की साहित्यिक समृद्धि बनी हुई है। सूर के अतिरिक्त अष्टछाप के अन्य कवियों ने भी हिंदी गीतिकाव्य की परंपरा को समृद्ध बनाया है। नंददास, कृष्णदास, परमानंददास, चतुर्भुजदास, छीतस्वामी, कुंभनदास और गोविंदस्वामी आदि भक्तकवियों ने गीतिकाव्य को ही अपनाया। प्रेम की करुण पुकार, आत्मनिवेदन, आत्मक्रंदन, हृदयस्पर्शी भावाभिव्यक्ति तथा संगीतात्मकता आदि गुणों का समावेश मीरा के पदों में प्राप्त होता है। मीरा के गीतों में ज्येष्ठ की ज्वाला से झुलसती धरती की प्यास का आभास सहज रूप में होता है। मीरा के विरहगीतों में वेदना इतनी तीव्र है कि संगीत भी सम-प्रवाह में शांत और स्निग्ध प्रतीत होता है।

'सूर के संयोग शृंगार वर्णन में विद्यापति की भाँति भौतिकता नहीं है और भ्रमरगीत में तो विरह-सागर उमड़-सा उठा है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल के शब्दों में 'सूरसागर' का सबसे मर्मस्पर्शी और वाग्वैदग्ध्यपूर्ण अंश भ्रमरगीत है, जिसमें गोपियों की वचनवक्रता अत्यंत मनोहारिणी है। सूरसागर की संगीतात्मकता भी सराहनीय है।'

'तुलसी रामकाव्य की परंपरा में गीतिकाव्य के कुशल रचयिता माने जाते हैं तथा राम गीतावली में उन्होंने मुक्तक पदों द्वारा रामचरित्र की कथा वर्णित की है।'

कृष्णकाव्य-परंपरा में तुलसी की 'कृष्ण गीतावली' का भी विशिष्ट स्थान है। हिंदी में प्रचलित सभी काव्यपद्धतियों के महान आचार्य गोस्वामी तुलसीदास ही माने जाते हैं। उनकी 'विनय-पत्रिका' के गीति-पदों में आत्म-निवेदन, आत्माभिव्यक्ति, दार्शनिकता आदि का अपूर्व विकास दिखाई पड़ता है। तुलसी के गीतों में हृदयपक्ष और बुद्धिपक्ष दोनों की प्रबलता है।

हिंदी गीतिकाव्य का विकास रीतिकालीन प्रवृत्तियों के आरंभ होने से अवरुद्ध हो गया था। रीतिकाल के अंतिम दशकों में ललित किशोरी, ललित माधुरी, बनी-ठनी जी, अलबेली जी आदि ने अपने गीतों में राधाकृष्ण की प्रेमलीला का गान अवश्य किया है, पर इनके गीतों में हमें संगीत की कोई नवीन उद्‌भावना नहीं मिलती। फिर भी इस काल में रसखान, घनानंद, बोधा, ठाकुर, आलम आदि के गीति-छंदों में हमें स्वानुभूति के दर्शन होते हैं। इन रचनाओं को हम शुद्ध प्रगीत काव्य के अंतर्गत नहीं मानकर प्रगीत मुक्तकों की श्रेणी में रखते हैं। घनानंद के काल में हमें मीरा के समान प्रेमानुभूति का विकसित स्वरूप दृष्टिगोचर होता है।

आधुनिक हिंदी-साहित्य में गीतिकाव्य का विकास विशेष रूप से हुआ देखने में आता है। भारतेंदुकाल से प्रारंभ हुए इस साहित्य युग में गीतिकाव्य की दो धाराएँ विकसित हुईं। एक धारा में राधाकृष्ण की लीलाओं का चित्रण और आत्माभिव्यक्ति की प्रधानता है और दूसरी धारा राष्ट्रीय भावना की प्रधानता की है। नाटकीय गीतों का उद्‌भव तो केवल भारतेंदु द्वारा ही संभव हुआ और प्रसादजी ने इसे चरमोत्कर्ष पर पहुँचाया। सत्यनारायण कविरत्न की रचनाओं में भारतेंदु की भाँति कृष्ण की अनन्य भक्ति के गीतिपद, सूर की आत्माभिव्यंजना, मीरा की कसक, घनानंद की प्रेमानुभूति को लिए हुए हैं। इसी काल में वियोगीहरि के गीत भी मार्मिक एवं सुंदर हैं।

भारतेंदु परवर्ती द्विवेदीयुग में वस्तुतत्त्व और वर्णन-शैली की प्रधानता है। इस युग के प्रमुख गीतकार श्रीधर पाठक और गुप्तबंधु आदि हैं। देशप्रेम की भावना और प्राकृतिक सौंदर्य का मनोहारी चित्रण श्रीधर पाठक की विशेषता है। इन्हें स्वच्छंदता का प्रवर्तक भी माना जाता है। मैथिलीशरण गुप्त के गीतों में उनकी बहुमुखी काव्य-साधना के दर्शन होते हैं। डॉ॰ नगेंद्र के शब्दों में 'इन्होंने प्रायः सभी प्रकार के प्रगीत और मुक्तक भी लिखे हैं, किंतु नाटकों, प्रगीतों और मुक्तकों में यह वैसी भावसृष्टि नहीं कर पाए जैसी कि प्रबंधकाव्यों में।' वस्तुतः साकेत और यशोधरा जैसे प्रबंधकाव्यों में भी अनेक सुंदर गीतों का समावेश हुआ है। 'कुणालगीत' में कुणाल की विभिन्न मनोभावनाओं का चित्रण उत्तम कोटि का है। गुप्तजी के गीतों में वेदना की गहरी अनुभूति और कोमल भावव्यंजना तथा छायावाद युग की विभिन्न प्रवृत्तियों के दर्शन भी होते हैं।

प्रसादयुग को हिंदी-गीतिकाव्य का स्वर्णकाल मानना उचित ही है। इस युग में प्रसाद, पंत, निराला और महादेवी के गीतों में वे सभी विशेषताएँ दृष्टिगोचर होती हैं, जो अँग्रेज़ी के 'लिरिक' में आवश्यक मानी गईं। छायावादी कवि बाह्य प्रकृति के चित्रण में आभ्यंतरिकता को ही अंकित करते

हैं। छायावादी कविता काव्यरूप की दृष्टि से अत्यंत समृद्ध है। एक ओर उसमें गीतों और मुक्तछंद प्रयोगों की रचनाओं की अधिकता है, और दूसरी ओर 'आँसू' 'तुलसी' जैसे खंडकाव्य भी मिलते हैं। इनके अतिरिक्त 'प्रलय की छाया में' (प्रसाद), राम की शक्ति-पूजा' (निराला), 'परिवर्तन' (पंत), जैसी गेय रचनाएँ भी मिलती हैं। छायावाद और रहस्यवाद के प्रभाव में हिंदी गीतिकाव्य के रूपों में विविधता का आविर्भाव हुआ तथा नवीन प्रणाली के गीतों का सृजन किया गया।

'प्रसाद' के गीतिकाव्य में आभ्यंतरिक अनुभूतियों की प्रधानता है, प्रेम का मनोमुग्धकारी चित्रण तथा नाटकीय गीतों में राग-रागनियों की आदर्श योजना है, परंपरागत पदशैली और ब्रजभाषा की संकीर्णता से गीतिकाव्य को नया रूप प्रदान किया गया है। 'कामायनी' में तो प्रबंध और मुक्तक दोनों का ही समन्वय हुआ है।

निराला ने साहित्य की पुरातन प्रवृत्तियों के प्रति विद्रोह प्रदर्शित करते हुए काव्य को रूढ़िगत बंधनों से मुक्त करने का प्रयास किया है—ऐसा भी माना जाता है, पर काव्य को संगीत के समीप लाने का श्रेय निराला को ही दिया जाता रहा है। उनके गीतों में शृंगार के निरावरण चित्र कहीं-कहीं होने पर भी अश्लीलता कदापि नहीं देखी जाती।

पंतजी ने प्रकृति-निरीक्षण से कविता की प्रेरणा ली है। उनके गीतों में बहिर्मुखी काव्य-प्रतिभा के दर्शन होते हैं और महादेवी के गीतों में तो छायावादी युग की शैली का अनुसरण, भावाभिव्यक्ति, रहस्यवाद आदि स्पष्ट मुखरित है ही। उनके गीत इतने अंतर्मुखी हैं कि उनमें भावनाओं की सुकुमारता, संगीत की तारतम्यता, मधुर पीड़ा का भार और कसक परिलक्षित होते हैं।

महादेवी वर्मा की कविताओं में गीत की झलक स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है। डा॰ नगेंद्र के अनुसार, 'इनकी भावभूमि गीतिकाव्य के लिए ही उपयुक्त है, क्योंकि स्वानुभूति की प्रत्यक्ष विवृत्ति करती है। इनके अनुसार सफल गीत वही है, जिसमें संयमित भावातिरेक की व्यंजना होती है।'

रामकुमार वर्मा के गीतों में रहस्यवादी झलक है। भगवतीचरण वर्मा के गीतों में चिंतन की अपेक्षा भावावेश और आत्माभिव्यक्ति ही विशेष रूप से है। बच्चन के 'निशा-निमंत्रण', 'एकांत संगीत' में सुंदर एवं स्वस्थ गीतों के दर्शन होते हैं। नरेंद्र शर्मा के 'प्रवासी के गीत' और 'पलाशवन' में लौकिक प्रेमानुभूति और यथार्थवादी भावनाओं की अधिकता है। माखनलाल चतुर्वेदी, बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', सोहनलाल द्विवेदी और दिनकर ने राष्ट्रीय गीतों का उत्तम सृजन किया। उदयशंकर भट्ट आदि ने भी गीति-परंपरा में सहयोग प्रदान किया है।

छायावाद की प्रतिक्रिया के फलस्वरूप प्रगतिवाद का प्रादुर्भाव हुआ और प्रगतिवादी गीतों में किसान मज़दूर के प्रति सहानुभूति और पूँजीपतियों तथा शोषक वर्गों के प्रति विद्रोह प्रकट किया जाने लगा, परंतु गीत की धारा में कोई विशेष परिवर्तन अवरोध रूप में उपस्थित नहीं पाया जाता।

उत्तर छायावाद के बाद की कविता में गीत की एक धारा में प्रगति का चलन बढ़ा। डॉ॰ नगेंद्र के अनुसार, 'रोमानी धारा में आने वाली, किंतु छायावाद से अलग, ऐसी अनेक कृतियाँ हैं, जो एक नई प्रवृत्ति को सूचित करती हैं, जिसे वैयक्तिक प्रगति कविता कहा जा सकता है। इन कृतियों में बच्चन की निशा-निमंत्रण, मिलन-यामिनी, दिनकर की 'रसवंती', नरेंद्र शर्मा की 'कदलीवन', 'पलाशवन', 'मिट्टी और फूल' आदि प्रमुख हैं।

इन कृतियों में बच्चन की 'निशा-निमंत्रण, एकांत संगीत, मिलन-यामिनी' गीतिकाव्य की उपलब्धियाँ हैं—

प्रार्थना मत कर मत कर मत कर
युद्धक्षेत्र में दिखला भुजबल
रहकर अविजित प्रतिपल
मनुज पराजय के स्मारक है
मंदिर मस्जिद गिरजाघर। —एकांत संगीत

नरेंद्र शर्मा की कदलीवन, पलाशवन, मिट्टी और फूल आदि प्रमुख हैं। पलाशवन का एक उदाहरण द्रष्टव्य है–

फिर-फिर रात और दिन आते?
फिर-फिर होता साँझ-सवेरा
मैंने भी चाहा फिर आए
बिछुड़ा जीवन साथी मेरा।
कच्चे धागे-सा सुख सपना
टूट गया सो टूट गया। —पलाशवन

प्रगतिवाद की धारा में कुछ गीति रचनाएँ 'अंचल', उदयशंकर भट्ट और दिनकर द्वारा लिखी गईं। इनके गीतों में जनकल्याण की भावना देखी जाती हैं।

प्रगतिवादी एकांगिकता के फलस्वरूप हिंदी-कविता में प्रयोगवाद नामक नवीन धारा का प्रादुर्भाव हुआ। तार-सप्तक, दूसरा सप्तक और तीसरा सप्तक में संगृहीत रचनाओं के कवियों ने हिंदी गीतिकाव्य में प्रयोगवाद को विकसित करने का प्रयास किया। इन प्रयोगवादी गीतों की भाषा में अनेक शैलियाँ कही गई हैं। कहीं तत्सम संस्कृत शब्दावली है तो कहीं अँग्रेज़ी ग्रामीण तथा अरबी-फारसी शब्दों का प्रयोग है। व्यक्तिवादी गीत काव्य-धारा के कवियों तथा छायावादी कवियों में दृष्टि और विषय की अत्यंत समानता है। लौकिक प्रेम इनकी केंद्रीय वृत्ति है। कवि इन्हें अपने अनुभव का गान मानता है। निराशा, उदासी, अकेलापन आदि उनकी रचनाओं में देखे जा सकते हैं। बच्चन, अंचल, गोपालसिंह नेपाली, आरसीप्रसाद सिंह, शंभूनाथ सिंह आदि गीतिकाव्य के प्रधान कवि हैं।

प्रयोगवाद के क्रम में नई कविता लिखी गई। इसमें परंपरागत कविता से आगे नए भावबोधों की अभिव्यक्ति नए मूल्यों और नए शिल्पविधानों का अन्वेषण किया गया। नई कविता आकार में छोटी है, परंतु प्रभाव में अत्यंत तीव्र। अज्ञेय, धर्मवीर भारती, दिनकर आदि ने इस परंपरा का निर्वाह किया है। नया कवि गीतों से कुछ हटकर लिखने लगा और हिंदी-साहित्य में प्रायः गीतों को एक आकार मात्र मान लेने का विरोध यह कहकर करने लगा कि इस आकार में जितनी सामग्री ठूँसी जा सकती है, ठूँसी गई है। परंतु ऐसे बहुत से नयी कविता के प्रमुख कवि हैं, जो अच्छे गीतकार भी हैं। प्रचलित रंगमंचीय फूहड़ गीतों से अलग करने के लिए इन गीतों को 'नए गीत' नाम दिया गया। शंभूनाथ सिंह की 'समय की शिला पर' तथा राजेंद्रप्रसाद सिंह की 'आओ खुली बयार' में कृतियाँ ऐसी ही रचनाओं को प्रदर्शित करती हैं।

गीतों में इस मोड़ से 'नवगीत' का प्रचलन हुआ। इनमें घरेलू जीवन का परिवेश है। प्रकृति के बहुत अछूते बिंब हैं। इन गीतकारों में ओम प्रभाकर, नईम, शलभ, श्रीराम सिंह, चंद्रमौलि उपाध्याय, देवेंद्रकुमार, मणि मधुकर, माहेश्वर तिवारी, रमेश रंजक आदि की गणना होती है। नए गीतकारों में बालस्वरूप 'राही' का अपना अलग स्थान है।

गीतिकाव्य संग्रहों में 'झुलसा है छाया वन धूप में', (वीरेंद्र मिश्र), 'दर्द जहाँ नीला है (शंभूनाथ सिंह), 'बंद न करना द्वार' (रमानाथ अवस्थी), 'रमेश रंजक के लोकगीत', पुष्पेंद्र वर्णवाल के तीन गीत संग्रह–प्रणय-दीर्घा, प्रणय-योग और प्रणय-बंध; नवगीत, अर्धशति (शंभूनाथ सिंह), 'यात्रा में साथ-साथ' (देवेंद्र शर्मा इंद्र) आदि नए प्रचलन के गीत-संकलन हैं। नवगीत का प्रारंभ 1950 ई॰ से माना जा रहा है और गीत के क्षेत्र में निराला ने जो नए प्रयोग किए, वे ही नवगीत न कहे जाकर रामविलास शर्मा, माथुर, अश्रेय, भारती आदि के काव्य में प्रस्फुटित हुए माने जाते हैं।

गीत का नवगीत रूप लंबे समय तक विद्यमान रहा है। पुराने प्रतीकों को त्यागकर नया गीति रूप सामने आया है। इन नवगीतों के क्रम में पुनः गीति-प्रयोग सामने आए हैं। डॉ॰ मोहन अवस्थी ने परंपरागत गीत और ग़ज़ल के कुछ तत्त्वों को परस्पर समन्वित करके 'अनुगीत' की सफलतापूर्वक प्रस्तुति की। डॉ॰ अवस्थी द्वारा प्रस्तुत गीत का यह नवीन रूप प्रभावशाली होने पर भी कुछ समय तक ही चला। नए-नए नाम देने की होड़ में पहले भी अगीत, अकविता जैसे शीर्षक प्रकाश में आए, पर शिल्प की दृष्टि से 'अनुगीत' की पहल साहित्यिक धरातल पर छंदमय होने से प्रवाह में आई। गीत के एक रूप में प्रगीत का प्रचलन पहले ही हो चुका था। इस विधा के अपने नवीन रूप ग्रहण की परंपरा में 'विगीत' संज्ञक एक नवीन गीति-शैली का प्रादुर्भाव हुआ है। इस शैली के जनक डॉ॰ पुष्पेंद्र वर्णवाल हैं। गीतकार वर्णवाल के तीन गीत-संग्रह–प्रणय-दीर्घा, प्रणय-योग, और प्रणय-बंध विगीत के आधार पर है। इन गीतों पर अनेक समीक्षकों ने उनके विगीत संज्ञक होने की पुष्टि की है। विगीतों की रचना-प्रक्रिया और उनमें निहित मान-मूल्यों को केंद्र में रखकर डॉ॰ कृष्णगोपाल मिश्र रचित 'पुष्पेंद्र वर्णवाल के 'विगीतः एक तात्त्विक विवेचन' शीर्षक से एक शोध प्रबंधात्मक ग्रंथ प्रकाश में आया है।

'कवि पुष्पेंद्र वर्णवाल के गीतों को 'विगीत' की संज्ञा सर्वप्रथम श्री जयप्रकाश तिवारी 'जेयेश' ने दी है।' इन्होंने अपने विगीतों में नवीन छंदयोजनों का प्रयोग किया है। उनके विगीत नवीनयुग की नव कल्पना, भावयोजना और नवीन सौंदर्य-चेतना से परिपूर्ण हैं।

काव्य के क्षेत्र में गीत का सर्वाधिक व्यापक धरातल है। इसीलिए प्रत्येक युग में प्रत्येक भाषा के कवियों ने गीतों की सृष्टि की है। गीत ने गान से आगे प्रगीत, नवगीत, अनुगीत और विगीत तक जो यात्रा की है, उसे अभी थमा हुआ नहीं कहा जा सकता। यह यात्रा निरंतर बनी रहेगी। हिंदी में उस यात्रा के द्वार अभी दूर तक के परिवेश को समेटने के लिए खुले हुए हैं। अतः गीतों की विकास-यात्रा पर संतोष व्यक्त करते हुए उसमें और भी अधिक नए प्रयोगों की संभावना बनी हुई है। यही गीत का उज्ज्वल भविष्य इंगित करने वाली स्थिति काव्य में गीत को आकर्षण का केंद्र बनाए हुए है। गीत अभी बूढ़ा नहीं हुआ है। उसकी तरुणाई में आकर्षण विद्यमान है।

संदर्भ

1. हिंदी साहित्य का इतिहास, आचार्य दुर्गाशंकर मिश्र
2. हिंदी साहित्य का इतिहास, डॉ॰ नगेंद्र
3. पुष्पेंद्र वर्णवाल के विगीत, एक तात्त्विक विवेचन, डॉ॰ कृष्णगोपाल मिश्र
4. एकांत संगीत कविता, डॉ॰ हरिवंशराय बच्चन
5. पलाशवन, डा॰ नरेंद्र शर्मा

साहित्यिक पत्र-पत्रिकाओं में राजनीतिक एवं सामाजिक चेतना

डॉ॰ पंकज विरमाल
अध्यक्ष हिंदी विभाग
इंदौर क्रिश्चियन कॉलेज, इंदौर (म॰प्र॰)

यूँ तो सामान्य पत्र-पत्रिकाओं में भी राजनीतिक चेतना होती है, किंतु साहित्यिक पत्र-पत्रिकाओं में इसे संवेदना एवं कल्पना के स्तर पर उभारा जाता है। जनता में राजनीति की जड़ों को स्थापित कर उसकी महत्ता का प्रतिपादन भी किया जाता है। दिग्भ्रमित जनमानस को सही मार्ग पर लाया जाता है। वह उस युग में राजनीति की उथल-पुथल को जनता के समक्ष प्रस्तुत करता है। शासन और जन के बीच जो कुछ घट रहा है और जो कुछ घटना चाहिए, इसका अंकन करता है। पत्रकार ही सरकार के लक्ष्यों एवं उद्देश्यों से जनता को अवगत कराता है। जिस समाज में जितनी अधिक राजनीतिक चेतना होगी, वह समाज उतना ही उत्कृष्ट होगा।

दैनिक, साप्ताहिक, पाक्षिक और मासिक इस नियतकालिकता में पत्रकारिता जीवित होकर युग की धड़कनों को प्रस्तुत करती है। इस प्रकार समाचारतत्त्व विचारों के स्तर पर सूक्ष्म भी होता जाता है। मासिक पत्रों में यह सूक्ष्मता अधिक उभरकर आती है तो साप्ताहिक पत्र-पत्रिकाओं में समाचार तत्त्वों का आसवन हो जाता है। साहित्यिक लेखन में युगीन चेतना अनुभूति के स्तर के साथ अनुस्यूत रहती है।

सामान्य पत्रों में जो चेतना का भाव साधारण स्तर से व्यक्त होता है, साहित्यिक पत्र-पत्रिकाओं में वही भाव परिष्कार के साथ होता है। युगीन चेतना की आकांक्षा ने ही 'उदंत मार्तंड' को जन्म दिया और यह महत्त्वाकांक्षा हिंदी की सभी पत्र-पत्रिकाओं में आज भी विद्यमान है। पत्रकारिता का राजनीतिक चेतना से गहरा संबंध है।

पत्रकारिता राजनीति के आवश्यक धर्मों का उद्घाटन कर समसामयिक उत्तरदायित्वों का बोध कराती है। सत्ता और समाज में नागरिकों के हितों का आरक्षण करना भी पत्रकारिता का लक्ष्य होता है। भारतीय स्वातंत्र्य संग्राम में पत्रकारिता की राजनीतिक चेतना भी प्रमुख रही है। हम जानते हैं कि भारतेंदुयुग में पत्रकारों की लेखनी में राजनीतिक चेतना का आभास अधिक रहा है, उन्होंने संकट में होने के उपरांत भी अपनी राष्ट्रीय भावना और देशप्रेम को नहीं छोड़ा। साथ ही अपनी साहित्यिक पत्रकारिता के बल पर जो जनमानस में राजनीतिक चेतना दी, वह पत्रकारिता के इतिहास में विशिष्ट स्थान रखती है। उन्होंने बड़े ही साहित्यिक ढंग से देश-दशा का चित्रण किया। साथ ही ब्रिटिश सरकार के अनौचित्य का उद्घाटन भी दृढ़तापूर्वक किया। द्विवेदीयुगीन कुछ

पत्रिकाओं ने तो केवल साहित्यिक क्षेत्र का ही वरण किया। डॉ॰ रामचंद्र तिवारी ने बड़े स्पष्ट रूप से लिखा है–'इस युग की साहित्यिक रचनाओं का स्वर भी राजनीति एवं देशप्रेम से ओतप्रोत रहा। साहित्येतर पत्रिकाओं ने लोकतंत्र, राष्ट्रीय अस्मिता की खोज तथा विभिन्न सांस्कृतिक एवं अंतर्राष्ट्रीय समस्याओं की ओर ध्यान केंद्रित किया। साहित्यिक पत्रिकाओं में भी अप्रत्यक्ष रूप से राजनीति एवं कूटनीति रही, जो भी हो, स्थिति यह थी कि इस युग में मानव की नियति को राजनीति की परिभाषा में ही समझा जा सकता था।'[1]

जिन पत्रों में इस काल में राष्ट्रीय चेतना का प्राबल्य अधिक दृष्टिगोचर होता है, साथ ही महात्मा गांधी का असहयोग आंदोलन और सत्याग्रह रूप प्रतिलक्षित होता है, वे पत्र हैं–कानपुर का 'प्रताप', गोरखपुर का 'स्वदेश', पंजाब का 'वंदे मातरम्', खंडवा का 'कर्मवीर', प्रयाग का 'अभ्युदय' तथा दिल्ली का 'वीरअर्जुन'।

तिलकयुग के उपरांत हिंदी-पत्रकारिता का गांधीयुग प्रारंभ होता है, गांधी अपने युग के महामानव थे। उन्होंने राजनीति को आध्यात्मिक स्पर्श दिया। लुई फिशर ने उनके विषय में लिखा था–'उनकी पैगंबर जैसी दृष्टि थी और उन्होंने महसूस किया कि युद्धों से राष्ट्रों के बीच की खाई अधिक चौड़ी होगी और उनके बीच समझदारी घटेगी और इस प्रकार अधिक-अधिक युद्धों तथा अधिक घृणा के लिए रास्ता तैयार होगा और अंततः मानवता बर्बरता तक पहुँच जाएगी। यह विश्वशांति के लिए गांधीजी की देन है।'[2]

गांधीजी स्वयं एक पत्रकार थे और पत्रकारिता को वे वैचारिक क्रांति का माध्यम मानते थे। उनके स्वयं के अपने पत्र थे। डॉ॰ रामरतन भटनागर तो राजनीतिक पत्रकारिता का प्रारंभ गांधीयुग से ही मानते हैं। जो पत्र इस समय प्रकाशित हुए, उनमें शिवप्रसाद गुप्त द्वारा प्रकाशित 'आज' के पहले ही अंक में संपादक बाबूराव विष्णु पराड़कर जी ने लिखा था–'हमारा उद्देश्य अपने देश के लिए सब प्रकार से स्वातंत्र्य उपार्जन है, हम हर बात में स्वतंत्र होना चाहते हैं। हमारा लक्ष्य यह है कि हम अपने देश का गौरव बढ़ाएँ, अपने देशवासियों में स्वाभिमान का संचार करें, उनको ऐसा बनाएँ कि भारतीय होने का उन्हें अभिमान हो, संकोच न हो।'[3]

तब राष्ट्रीय साहित्य और भी प्रबल से प्रबलतम भावनाओं से ओत-प्रोत होता गया। इस युग में मैथिलीशरण गुप्त, अयोध्यासिंह उपाध्याय, श्रीधर पाठक, गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही' आदि ऐसे कवि हुए जिन्होंने भारतीय राष्ट्रीय काव्य को स्वर्णाक्षरित किया। गुप्तजी ने भारतभूमि, भवानी की प्रशंसा में इस प्रकार लिखा–

जय-जय भारत भूमि भवानी
अमरों ने भी तेरी महिमा बारंबार बखानी,
तेरा चंद्रवदन वट विकसित शांति-सुधा बरसाता है,
मलयानिल-निश्वास निराला नवजीवन सरसाता है।
हृदय हरा कर देता है यह अंचल तेरा धानी,
जय-जय भारत भूमि भवानी।'[4]

जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी ने अपनी भाषा व अपने राष्ट्र के लिए लिखा था–

अपनी भाषा है भली, भलो आपुनो देश।
जो कुछ है अपुनो भलो, यही राष्ट्र संदेश।[5]

श्री बृजनारायण चकबस्त ने तो हिंदुस्तान के काँटों को भी सराहा है–

मिट्टी है गुल जो और किसी बोसतां के है,
काँटे अज़ीज गुलशने हिंदोस्ताँ के हैं।[6]

भारतीय जनता ने संपूर्ण शक्ति के साथ उस समय विदेशी सरकार के अत्याचारों का विरोध अख़बारों के माध्यम से किया। यह उन कानूनों से स्पष्ट होता है कि जब ये पत्रिकाएँ युगीन चेतना का प्रतिनिधित्व अपनी शक्ति के साथ कर रही थीं। ब्रिटिश सरकार ने अपनी दमननीति के परिणामस्वरूप अनेक पत्रों से जमानतें माँगीं तथा संपादकों को दंडित भी किया और तो और प्रेस जब्त करवाने तथा पत्रों के प्रकाशन को रुकवाने में कोई कसर बाकी नहीं रखी।

जिस समय पत्रकारिता-जगत् में श्री गणेशशंकर विद्यार्थी की स्थिति आ रही थी, उस समय देश पराधीन था। अत: स्वतंत्रतापूर्व की समस्त पत्र-पत्रिकाओं में यदि सामाजिक चेतना का स्वरूप हो तो कोई नई बात नहीं। साहित्यिक पत्र-पत्रिकाओं में तो मनुष्य की तथा समाज की सांवेगिक शक्ति को इस प्रकार से उभारा गया है कि यह ब्रिटिश शासन को किसी भी प्रकार स्वीकारने को तैयार नहीं थी। तत्कालीन साहित्यिक पत्रकारिता ने समाज में समूचे युग यथार्थ को अभिव्यक्त करने का प्रयास किया। इन्हीं पत्रिकाओं ने समाज में जनमत तैयार करवाया। पत्रिकाओं ने ही समाज में राजनीतिक संगठनों के निर्माण की प्रेरणा दी। यदि ऐसा नहीं होता तो लोग एकत्रित होकर राष्ट्रीय उन्माद में 'मेरा रंग दे बसंती चोला' नहीं गाते। उस समय की राष्ट्रीय सामाजिक चेतना इतनी प्रबल थी और स्वतंत्रता-संग्राम में कूद जाने की इतनी ललक थी कि क्रांतिकारी युवक अक्सर यह गाते फिरते थे–

सरफ़रोशी की तमन्ना अब हमारे दिल में है।
देखना है ज़ोर कितना बाजु-ए-क़ातिल में है।

और पत्रिकाओं में प्रकाशित लेखों से प्रभावित होकर लोगों ने ऐसे बलिदानी गीत भी गाए–

याद मेरी तुम्हें रहे न रहे, जिकर मेरा कोई करे न करे,
मरसिया मैं ही अपना लिख जाऊँ, कौन जाने कोई लिखे न लिखे।[7]

इस साहित्यिक पत्रकारिता ने समाज में एक तो स्थिर जनमत दिया, शाश्वत मूल्य दिए, एक जातीय जागृति दी। राजा राममोहन राय ने एक सुधारोन्मुख सामाजिक चेतना दी। गांधीजी एवं उनके युग की पत्रकारिता ने स्वतंत्रता की ललक पैदा की। ये पत्र-पत्रिकाओं का ही गुणधर्म था कि देश में इतनी बड़ी सामाजिक चेतना हुई कि हमें अपने समाज में सुभाषचंद्र बोस, सरदार भगतसिंह, चंद्रशेखार आज़ाद, राजगुरु, रामप्रसाद बिस्मिल, अशफ़ाकउल्ला खाँ, राजेंद्रसिंह और रोशनसिंह जैसे बलिदानी और शहीदी तबीयत तथा आन-बान-शान के लोग मिले। उस समय की परवशता का एक चित्रण है–

न तड़पने की इज़ाज़त है, न फ़रियाद की है।
घुट-घुट के मर जाऊँ यही मर्ज़ी, मेरे सैयाद की है।

भारतेंदु हरिश्चंद्र ने तो अपनी 'हरिश्चंद्र चंद्रिका' में एक होली गीत छापा था। सामाजिक चेतना के संदर्भ में इससे अच्छा उदाहरण और क्या हो सकता है–

भारत में मची है होरी

कहाँ गए छत्री किन उनके पुरुषारथ हि हरोरी,
चूड़ी पहिरी स्वांग बनिआए, धिक्-धिक् सबन कहोरी,
धिक् वह मात-पिता जिन तुमसे कायर पुत्र जन्योरी
धिक् वह धरी जनम भयो जामे यह कलंक प्रगटोरी।

इस राष्ट्रीयता का स्वरूप बाद में तो इतना उबाल पर आया कि जब कोई भारत माँ का सपूत मादरे-वतन पर शहीद हो जाता था, तब पत्रिकाओं में छपा करता था–

मादरे हिंदोस्तान ना चीज़ तोहफ़ा पर कबूल
ख़ून से लिथड़ा हुआ अपना ही सर लाया हूँ मैं।

इस प्रकार हिंदी की साहित्यिक पत्रकारिता ने समाज को अपने कर्त्तव्यों और अधिकारों के प्रति सजग ही नहीं किया, देश को आज़ाद कराने और उस पर मर-मिटने की प्रेरणा भी दी।

संदर्भ

1. पत्रिका संपादन कला, डॉ॰ रामचंद्र तिवारी, पृ॰ 44
2. लुई फिशर, साप्ताहिक हिंदुस्तान, 5 अक्टूबर 1953
3. 'आज', 5 सितंबर 1920
4. मंगल-घट, प्रथम संस्करण, पृ॰ 33
5. कविता कौमुदी, पृ॰ 271
6. वतन के गीत, पृ॰ 142
7. वे इंकलाबी दिन, वीरेंद्र, संपादक 'प्रताप' जालंधर पृ॰ 5 पृ॰ भूमिका

38 **सी॰एच॰, स्कीम नं॰** 74 **सी**
विजयनगर, इंदौर (म॰प्र॰)
pankajvirmal1963@gmail.com
मो॰ 08889203339

डॉ॰ कृष्णलाल विश्नोई के साहित्य में प्रकृति-चित्रण

भावनारानी, शोधार्थी
दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा, मद्रास

प्रकृति मानव की चिर सहचरी है। साहित्य में भी प्रकृति कवि या लेखक की भावनाओं, संवेदनाओं के अनुसार आचरण करती है। कवि या लेखक अपने विचारों, भावनाओं, आकांक्षाओं इत्यादि को प्रकृति के माध्यम से व्यक्त करते हैं। सुख की अवस्था में प्रकृति मनुष्य के साथ हँसती-गाती नज़र आती है। सारी प्रकृति मनुष्य को खुश कर देती है। चाँद, सितारे, बादल, हवा, यहाँ तक कि छोटे-छोटे कण भी मनुष्य को सुख प्रदान करते हैं, वहीं मनुष्य के दुखी और उदास होने पर प्रकृति दुख को और बढ़ाती दिखाई देती है। प्राकृतिक छटाएँ जहाँ मनोरम होती हैं, वहीं वे भयानक रूप भी ले लेती है। डॉ॰ कृष्णलाल विश्नोई ने प्रकृति का चित्रण अपने साहित्य में बखूबी किया है। उन्होंने प्राकृतिक चित्रण में प्रकृति के विविध रूपों का चित्रण किया है।

प्रकृति की सुंदरता में रहकर ही ऋषि-मुनियों ने अपना तप और साधना की। जीवों ने अपना खान-पान, निवास इत्यादि प्रकृति की सुंदर गोद में बैठकर किया। प्रकृति ही मानवीय संस्कृति को संरक्षित और सर्वोधित करती है। प्रकृति के संरक्षण में ही मानव-सभ्यता का विकास होता है। उदाहरण द्रष्टव्य है–

जंगला री गोद मांय/ बैठ नै
भणीज्या/ गुणीज्या
आपणा ऋषि-मुनी जंगल मांय
पनपती रैयी
मानखै री सभ्यता/ अर संस्कृति।'[1]

रात्रि के समय चारों ओर झींगुरों की झनकारों का वर्णन करते समय पाठक को ऐसा महसूस होता है कि मानो झींगुर पहरेदारों की तरह जागकर दुश्मनों को ललकार रहे हैं–

झींगुर की झणकारें,
खबरदार, खबरदार।
हम रहे हैं सबको ललकार,
रात के हैं हम पहरेदार।'[2]

सूर्योदय की छटा निराली होती है, जिसमें मनुष्य प्राकृतिक सुंदरता के अद्‌भुत नज़ारे देखता है। सूर्योदय की लालिमा में रात्रि का काला अंधकार दूर होने लगता है और नए दिन की शुरुआत में मनुष्य नए उमंगों और उम्मीदों से भर उठता है। उदाहरण देखिए–

सुबह सुहानी आई है/ यह नया सँदेशा लाई है।

पूरब में फैली लाली/ निकला किरण माली।
सजाकर उमंगों की थाली/ विदा हुई निशा काली।'[3]

प्रात: के सुंदर वर्णन की तरह ही संध्या का भी कवि ने अद्‌भुत वर्णन किया है। कवि ने गोधूलि बेला का अद्वितीय चित्रण किया है–

दिन डूब चाल्यों/ आथण हुवण लागी
गायां भैस्यां रै खुरां सूं/ माटी रौ गरणाटों चढ़यो
पखेरू आपरै आल्ला कानी चाल्या
हाली घर कानी हाल्या
मा रै आंचल मांय/ उम्मीदां री जोत जागी।[4]

प्रकृति की सुंदरता को अमिट बनाने में नदी-नाले, बादल, वृक्ष इत्यादि भी अत्यधिक सहायक हैं। कल-कल करती नदियाँ, घुमड़ती हुई काली घटाएँ, हरियाले वृक्ष, ऊँचे-ऊँचे पर्वत मनुष्य की आत्मिक शांति में सहायक हैं। बहती हुई नदियों का उदाहरण द्रष्टव्य है–

दूर धरा माथै/ धरती ने हरियल गाभा
ओढ़ावती पैरावती/ हीयै तणों लाड़-लड़ावती
इठलाती बल खावती/ चाली आवै नहर।[5]

नदियों को कवि ने जीवन कहा है। नदियाँ हमारे जीवन को प्रेरणा प्रदान करती हैं। इनके बहने और रुकने से मानव-जीवन हमेशा जुड़ा रहा है। उदाहरण देखिए–

इसके बहने से/ वक़्त कट जाए
इसके ठहरने से ज़िंदगी भटक जाए
कोई ले पहचान
गाती यह मल्हार जीवन की मुलाक़ातों का
बहता अमृत नदियों का।
लुटाता प्यार सदियों का।[6]

प्रकृति-चित्रण में विभिन्न ऋतुओं का वर्णन भी शामिल होता है। कृष्णलाल जी ने अपनी कविताओं में गर्मी, सर्दी, सावन, बसंत इत्यादि ऋतुओं का वर्णन बख़ूबी किया है। गर्मी के मौसम में चलने वाली लू का वर्णन करते हुए कवि कहते हैं कि लू चलने पर चारों तरफ़ सुनसान वातावरण है। लू इतनी तेज़ चल रही है कि कोई घर से बाहर नहीं निकल सकता और धरती बहुत गर्म हो रही है। इस गर्मी को बरसात ही समाप्त कर सकती है। उदाहरण देखिए–

देखो रे भाई लू बाजै, करो जतन कोई भारी।
छम छम करते मेहलो बरसे, खुशाल हुवै धरती सारी।
बारै निकलण रो काम नीं है, तपै सै री टाट
धोरां पर खीरा उछलै, घरा बलै है खाट।
जेठ आषाढ़ मां तपै तावड़ा, जोगी होज्या जाट
आयोड़ा बटाऊ रूक नी पावै, घरां जावै है नाट।
भाईड़ा लू करै खैंकाट।[7]

गरमी की भीषण लू को बरसात की ठंडी बूँदों से ही राहत मिल सकती है, परंतु बादल

है कि बरसने का नाम नहीं लेते। प्रकृति की इस अठखेली का वर्णन कवि ने निम्न पंक्तियों में किया है–

अठै लूवां घणी बाजै, बादलियों भूल कर नीं गाजै।
अठै बाटां किरसो देखें, वो तो धोरलिया नै पैखे।
अठै बाणियों हाटां बैठो, डांडी मारै कींया सेठो।
अहै तप्यो तावडौ जेठां, सावणियों सूको जावै बैठो।[8]

सावन का मस्त महीना आते ही वर्षा की उम्मीद हर दिल को भिगोने लगती है। आते-जाते बादलों को देखकर प्रकृति को हरषाकर उसे पुकारने लगती है–

मेहला काहे देर लगावै, म्हानै क्यूं तरसावै रै
मेहला रे आजा रे, मेहला आजै रै।
थानै कोयलड़ी बुलावै, वा तो कुह-कुह गावै।
थानै पपिहियों बुलावै, वा तो पीव याद करावै।
थानै मोरड़ी बुलावै, वा तो घूम-घूम घुमावै।
थानै मोरियो बुलावै, वा तो झुर झुर मर जावै।[9]

चारों तरफ़ बरसात के कारण मिट्टी की सौंधी-सौंधी ख़ुशबू से प्रकृति महकने लगती है। वर्षा के कारण वृक्षों की मिट्टी से सनी पत्तियाँ धुलकर नया रूप ले लेती हैं। बागों में बहार आ जाती है। पशु-पक्षी यहाँ तक कि मनुष्य पर भी प्रकृति की यह रोमानियत अपना असर दिखाती है। प्रकृति के इसी अनुपम वरदान का वर्णन करते हुए कवि एक स्थान पर कहता है–

बागों में बड़ी बहार है।
इधर मौसम भी तैयार है।
छाये बादल गगन में हैं
पक्षी अपने मगन में है।[10]

प्रकृति-चित्रण में मानवीकरण का कवियों द्वारा बहुत प्रयोग किया जाता है। इसमें प्रकृति को एक मानव की संज्ञा दी जाती है। रात की सुंदरता को दुल्हन का रूप देते हुए कवि कहता है–

देखो अंबर में तारे/ लगते हैं कितने प्यारे।
जैसे बैठी कोई दुल्हन/ अपनी ओढ़नी पसारे।
सितारे झिलमिलाए/ बनकर चाँदी के तारे।
ओढ़नी लगती प्यारी/ देखे सभी नयन पसारे।[11]

रात को चमकते चाँद को दूल्हे का रूप देना कवि के प्राकृतिक चित्रण में और ख़ूबसूरती भर देता है। चाँद रूपी दूल्हा अपनी रात्रि रूपी दुल्हन से मिलने जा रहा है। इसी स्थिति का बड़ी ख़ूबसूरती के साथ कवि ने अपनी कविताओं में चित्रण किया है–

चाँद लगता है दूल्हा,
सितारे बने बाराती।
मिलकर चले सभी ऐसे,
लाने को दुल्हन घराती।[12]

कवि रात की सुंदरता के साथ-साथ भयानक रूप का भी वर्णन करता है। रात के समय कुत्तों का भौंकना, गीदड़ों का चिल्लाना भी भयानकता को बढ़ाता है। उदाहरण देखिए–

गीदड़ां रो रोवणों/ भूतड़ा रो नाचणो।
चोरड़ा रो लूटणों/ आ डरावनी रात।
चौकीदार रो पैरो/ चोरां रो फेरो
सिपाइयां रो घेरो/ अर
मिनखां रो नकली चैरो
आ डरावनी रात।[13]

रात कभी श्मशान के समय मौन तो कभी पहाड़ों के समान अटल लगती है–

कभी होती है काली/ कभी होती है उजाली
यह अजीब है बात/ इतनी भयानक रात
श्मशान की तरह मौन/ पहाड़ों की तरह अटल
यह अद्‌भुत है बात/ कितनी भयानक रात।[14]

प्रकृति की सुंदरता वृक्षों के बिना अधूरी है। वृक्षों के होने से ही वर्षा समय पर होती है। पर्यावरण प्रदूषित नहीं होता तथा वृक्ष ही हमारी आवश्यकताओं को पूरा करते हैं; अत: वृक्षों की देवताओं के समान पूजा करनी चाहिए–

हूं नमूं उण बिरछ नैं/ जिण री काया मांय सू
फूटै कूंपल/ अर संदेसो देवै
बसंत रै आवण रों।[15]

वृक्षों को कवि ने पर्यावरण का प्रणेता कहा है। उदाहरण देखिए–

पंछियों रो शरणदाता रूंख
पसुओं रो जीवनदाता रूंख
मिनखां रो पालनकर्ता रूंख
पर्यावरण रो प्रणेता रूंख।

वृक्ष प्रकृति की सर्वश्रेष्ठ धरोहर हैं। हम जितने भी पेड़ लगाते हैं, वे न सिर्फ हमें बल्कि हमारी कई पीढ़ियों के हमारे अपनों को फल, फूल, लकड़ी, छाया आदि के माध्यम से हमारी सेवा करते हैं। कवि ने इसी विचार को इसी प्रकार अपनी कविता में प्रस्तुत किया है–

वो बिरछ/ फूल और फलां सूं
सैठों लदीजग्यौ।
वो आपां नै हरखावै
जाणै बो/ अेक कल्प बिरछ है।
म्हानै लागै/ उणां फूलां और फलां
रै उनमान/ आज बोई बिरछ
आपरो करजो चुकावै।[17]

वृक्ष हमारे जीवन का आधार हैं। परंतु मनुष्य अपनी इच्छाओं की पूर्ति के लिए लगाातर वृक्षों को काटता जा रहा है। कवि कहता है कि पेड़ परोपकारी होते हैं। ये पेड़ ही धरती की लाज

होते हैं और प्राकृतिक संतुलन बनाए रखने में सहायक होते हैं। उदाहरण द्रष्टव्य है–

पेड़ां बिना लू घणी वाजै, पेड़ करै है सब पर छाया।
पेड़ा बिना बादल नीं गाजै, पेड़ा री आ सगली माया।
पेड़ां बिना घर गुवाड़ नीं साजै, पेड़ा विकसै काया।
पेड़ां बिना धरती आ लाजै, पेड़ धरती रा जाया।[18]

वृक्षों के कटने से प्राकृतिक संतुलन बिगड़ रहा है। इसी असंतुलन के परिणामस्वरूप भूकंप भी अधिक मात्रा में आ रहे हैं। भूकंप की भयावता का वर्णन करते हुए कृष्णलाल जी एक स्थान पर कहते हैं–

आय जावै धरती मांय काण
अर/ करवट बदले धरती।
धूजै मिनख/ अर उणा रा महल
दड़दड़ करता बिखर जावै दगड़
अर/ मच जावै चारूं मेर भगदड़।[19]

वृक्षों के लगातार क्षरण से बाढ़, अकाल जैसी आपदाएँ मानवीय सभ्यता को समाप्त कर रही हैं और अगली पीढ़ी के लिए ख़तरा बन रही हैं। प्रकृति अपने सौम्य रूप के बाद अपना रौद्र रूप दिखा रही है, जिसका परिणाम मानव को भुगतना पड़ रहा है–

बिरछ रो काटणों/ बिरछ रो घटणों
मौत है मिनख री/ मौत है जानवरां री
विध्वंस है प्रकृति रो।[20]

प्रकृति के विध्वंसक रूप में बरसात भी जीवनघातिनी बन जाती है। नदियों में उफान आ जाता है और बाढ़ आने से लोगों के घर तबाह हो जाते हैं, बाढ़ की आँधी में बह जाते हैं–

नदियों में उफान आया,
नालों ने सीमाएँ लाँघी।
कही बहा न ले जाए,
पानी की वह जबर आँधी।[21]

एक अन्य स्थान पर बाढ़ से होने वाले नुकसान और उसके बाद बचे लोगों की परिस्थिति का वर्णन करते हुए कवि कहता है–

बाढ़ में बह गए सारे
कोई न रोक सका उनको
इस जीवन की दुर्गम राहों में

उन अभागों की
'आह' अभी बाकी है।[22]

लगातार बढ़ते प्राकृतिक असंतुलन के प्रति कृष्णलाल जी ने लोगों को जागरूक करने का प्रयत्न किया है। उन्होंने इस बात पर बल दिया कि प्रकृति के संरक्षण से ही वर्तमान और आने वाली पीढ़ी प्रकृति के कोप से बच सकती है। इसलिए वे अधिक से अधिक वृक्ष लगाने

पर बल देते हैं–

बिरछ बिनां/ नी ओपै धरती,
बिरछ बिनां/ नीं पनपै जीव।
इण सारू आवा/ आपां
बिरछ लगावां/ धरती सजावां
मनखो पनपावां।[23]

प्राकृतिक संरक्षण में वृक्षों की महत्ता पर बल देते हुए कवि वृक्ष के अंत के साथ ही मानव का अंत मानते हैं–

पेड़ के अंत ही से,
जिंदगी का अंत है।
वरना इस हरियाली से,
हर खुशी अनंत है।[24]

निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि कृष्णलाल जी की कविताओं में प्रकृति के विविध रूपों के दर्शन होते हैं। जहाँ प्रकृति की सुंदरता का वर्णन कवि ने बखूबी किया है, वहीं उसकी भयावहता का वर्णन भी अद्‌भुत है। प्रकृति की सुंदरता तथा प्राकृतिक संरक्षण के लिए कवि ने वृक्षों को अत्यधिक महत्ता दी है। कृष्णलाल जी की कविताएँ पाठक का केवल मनोरंजन ही नहीं करती, बल्कि उन्हें प्राकृतिक संरक्षण के प्रति जागरूक भी करती हैं। कवि ने प्रकृति की सुंदरता का अपनी कविताओं में वर्णन ही नहीं किया, बल्कि उसे हमेशा बनाए रखने के लिए वृक्ष लगाने पर भी बल दिया है। इस प्रकार कृष्णलाल जी की कविताएँ प्राकृतिक समस्याओं पर सर्वमान्य हल भी प्रस्तुत करती हैं।

संदर्भ

1. तीतर पंखी बादली, पृ॰ 11
2. आज की आवाज, पृ॰ 90
3. वही, पृ॰ 29
4. जठै कीं नीं हो बठै (अप्रकाशित) पृ॰ 25
5. तीतर पंखी बादली, पृ॰ 29
6. आज की आवाज, पृ॰ 48
7. जठै कीं नीं हो बठै (अप्रकाशित) पृ॰ 9
8. वही, पृ॰ 10
9. वही, पृ॰ 10
10. आज की आवाज, पृ॰ 85
11. वही, पृ॰ 42
12. वही, पृ॰ 42
13. तीतर पंखी बादली, पृ॰ 45
14. आज की आवाज, पृ॰ 66
15. जठै कीं नीं हो बठै (अप्रकाशित), पृ॰ 1

16. तीतर पंखी बादली, पृ॰ 23
17. जठै कीं नीं हो बठै (अप्रकाशित), पृ॰ 23
18. वही, पृ॰ 3
19. तीतर पंखी बादली, पृ॰ 25
20. वही, पृ॰ 9
21. आज की आवाज, पृ॰ 85
22. वही, पृ॰ 51
23. तीतर पंखी बादली, पृ॰ 9–10
24. आज की आवाज, पृ॰ 62

द्वारा श्री नरेश गोदारा एडवोकेट
17, **गांधी गली**–3, **विश्नोई कालोनी**
एच॰एं॰यू॰ के पास
गेट नं॰ 4, **हिसार (हरियाणा)**
मो॰ 09416357717

कबीरदास की भाषा

कु॰ रीनारानी (शोधछात्रा)
डॉ॰ रेनू उपाध्याय
हिंदी विभाग, कन्या महाविद्यालय आर्य समाज
भूड़, बरेली

हिंदी साहित्य वाङ्मय में कबीरदास जी का स्थान विशिष्ट है। वह अपने समय के युगचेता, युगस्रष्टा, प्रतिभासंपन्न, विचारक एवं चिंतक के साथ-साथ महान कवि भी थे। वह भाषा के ज्ञाता थे। हजारीप्रसाद द्विवेदी जी कहते हैं कि 'भाषा पर कबीर का ज़बरदस्त अधिकार था। वे वाणी के डिक्टेटर थे। जिस बात को उन्होंने जिस रूप में प्रकट करना चाहा है उसे उसी रूप में भाषा से कहलवा लिया गया है। सीधे-सीधे नहीं, तो दरेरा देकर। भाषा कुछ कबीर के सामने लाचार-सी नजर आती है। उसमें मानो ऐसी हिम्मत ही नहीं है कि इस लापरवाह फक्कड़ की किसी फरमाइश को नहीं कर सके'[1] कबीरदास ने किसी भी प्रकार की कोई शिक्षा प्राप्त नहीं की थी। इस संबंध में उन्होंने स्वयं भी कहा है–'मसि कागद छूयो नहीं, कलम गह्यो नहीं हाथ।'

कबीरदास जी ने जो कुछ भी कहा उसे उनके शिष्यों ने लिपिबद्ध किया। कबीर की वाणी का संग्रह 'बीजक' नाम से प्रसिद्ध है। जिसके तीन भाग हैं–साखी, सबद, रमैनी। कबीर के गुरु रामानंद थे। कहा जाता है कि कबीर को जब रामानंद ने शिष्य बनाना अस्वीकार कर दिया तो वे वहीं घाट की सीढ़ियों पर लेट गए और रामानंद के द्वारा अनायास दब जाने पर बोले गए शब्दों–'राम-नाम' को उन्होंने गुरु मंत्र मान लिया। इसलिए रामानंद ही कबीर के गुरु हुए।'[2] कबीर के प्रत्येक शब्द में क्रांति की लहर दौड़ रही है। उन्होंने जीवन के किसी भी स्तर पर प्रदर्शन एवं अंधविश्वास को स्वीकार नहीं किया है इसलिए उनके शब्द तेज धारदार हैं। कबीर की भाषा अत्यंत साधारण होकर भी विशेष वहाँ बन जाती है, जहाँ ढोंग, अंधविश्वास, स्वांग-रचना आदि पूर्ण रूप से व्याप्त हो। कबीर की वाणी एक संत की वाणी है। कबीर सरल, सहज, संवेदनशील होकर भी विशेष हैं। अतएव कबीर को जाग्रत गुरु कहा गया है। 'कबीर की कविता को उत्कृष्ट बनाती है उनके व्यक्तिगत आध्यात्मिक अनुभव की गहराई एवं विचारों की दिव्यता, जो वे अत्यंत सरल भाषा ढंग से व्यक्त करते हैं। कबीर की महानता इसमें है कि उन्होंने इस भाषा पर कुछ भी ध्यान नहीं दिया, जो पंडित समाज की संस्कृत या राजदरबार की फ़ारसी थी, पर वह अपने पद और गीत ऐसी मिली-जुली भाषा में करने लगे जिसे विद्वानों ने सधुक्कड़ी कहा है।'[3] कबीर की भाषा को लेकर विभिन्न मतभेद रहे हैं। संत कबीरदास घुमक्कड़ प्रवृत्ति के थे। यही कारण है कि उनकी भाषा में भिन्न-भिन्न प्रांतों की भाषाओं का मिश्रण देखने को मिलता है। इसीलिए श्यामसुंदर दास ने कबीर की भाषा को पंचमेल खिचड़ी कहा है और आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने

सधुक्कड़ी की संज्ञा दी है। डॉ॰ गोविंद त्रिगुणायत के अनुसार, 'कबीर ने किसी एक भाषा का प्रयोग नहीं किया। उनकी बानियों में हिंदी, उर्दू, फ़ारसी आदि कई भाषाओं का सम्मिश्रण तो मिलता ही है साथ ही साथ खड़ी, अवधी, भोजपुरिया, पंजाबी, मारवाड़ी आदि उपभाषाओं का भी प्रचुर प्रयोग मिलता है।[4] स्वयं कबीर ने अपनी भाषा के विषय में कहा है–

बोली हमारी पूरब की, हमै लखै नहिं कोय
हम का तो सोई लखै, धुर पूरब का होय।

कबीर जी ने अपनी भाषा में विभिन्न भाषाओं के शब्दों, स्वरूप भाव एवं अर्थ को स्वीकार किया है। एक तरफ़ इस भाषा में व्याकरण की शुद्धता न होना विभिन्न भाषाओं का मिश्रण, शब्दों की तोड़-मरोड़ तथा स्थूल काव्यगुणों के अभाव की बात कही जाती है, इन सबके उपरांत भी कबीर की भाषा गद्‌गद् भाव से प्रशंसा किए जाने की पात्र है। कबीर की भाषा का बाहरी रूप अत्यंत आलोचनाओं से घिरा, परंतु उनकी भाषा की महत्ता एवं उपयोगिता को उसके प्रभाव का मूल्यांकन करने के पश्चात् ही प्राप्त किया जा सकता है। कबीर नाम उस ज्ञानरूपी प्रकाश का है जिसकी शरण में आने से हर जिज्ञासु ज्ञानी हो जाता है। यह नाम हिंदी वाङ्मय में ही नहीं, बल्कि संपूर्ण संतसाहित्य में महान है। कबीर ने जिस भाषा का प्रयोग किया है उसे अनेक लेखकों ने अपने विचारों द्वारा प्रस्तुत किया है। रामकुमार वर्मा ने इनकी भाषा को राजस्थानी, पंजाबी और ब्रजभाषा का मिश्रण बताया है। डॉ॰ गोविंद त्रिगुणायत कहते हैं, 'कबीर का भाषा पर एकाधिकार था। भावानुकूल और समयानुकूल भाषा गढ़कर तथा काट-छाँटकर उसे स्वेच्छानुसार अभिव्यक्ति दे देना उन्हें ख़ूब आता था। तभी तो उनकी उक्तियों में इतना प्रभाव और प्रेषणीयता है।'[6]

कबीरदास ने बड़ी सहजता से भिन्न प्रदेशों की भाषाओं के शब्दों को अपनी भाषा में गूँथा या काव्यभाषा का अंग बनाया। कबीर की भाषा उनके संदेशों को जनमानस तक पहुँचाने में पूर्ण रूप से समर्थ है। यह अत्यंत ही सरल, सहज एवं संगीतात्मक से परिपूर्ण है। भाषा की सृष्टि करना उनका लक्ष्य नहीं था। वे तो इन सबसे अनभिज्ञ थे और अनजाने में ही इस ओर बढ़ते चले जा रहे थे। कबीर की भाषा में पंजाबी, गुजराती, उर्दू, फ़ारसी, मैथिली, भोजपुरी, बँगला, बिहारी, ब्रज, राजस्थानी, अवधी आदि बोलियों का प्रयोग मिलता है।

कबीर की वाणी अद्वितीय एवं अनमोल है। कबीर की निष्पक्ष एवं न्यायसंगत वाणी से जो सत्यज्ञान का प्रकाशपुंज उत्पन्न हुआ है, वह समस्त संसार पर आच्छादित होकर मानवता के सभी पार्श्वों को प्रकाशित करने में सक्षम है। कबीर ने भाषा में सभी प्रकार के शब्दों को महत्त्व दिया है। उनकी भाषा में ठेठ शब्दों का प्रयोग होने के साथ-साथ संस्कृत के तत्सम शब्दों के प्रयोग का भी विशेष महत्त्व है, जिसके द्वारा भाषा के क्षेत्र में भी अभिजात्य का खंडन किया है। कबीर जहाँ भी विचरण करते थे, वहाँ के देशकाल एवं पात्र के अनुसार उनकी भाषा में परिवर्तन हो जाता था अर्थात् उनकी भाषा का एक विशिष्ट वातावरण तैयार हो जाता था। जब वे मुसलमानों से मिलते उन्हें संबोधित करते, तो उनकी भाषा में अरबी फ़ारसी के शब्दों का प्रयोग देखने को मिलता है–

अल्लाह अवलि दीन का साहि, जावे नहिं फरमाया
मुरसिद पीर तुम्हारे है को, कहौ कहाँ थे आया।[7]

हिंदी शब्दों से युक्त–

निरबैरी निहकामंता, सांई सेती नेह
विषिया सूं न्यारा रहै, संतनि का अंग एह।[8]

कबीर ने अपनी भाषा में अनेक प्रकार से व्यंग्य या चुटकी लेने जैसे वाक्यों का भी प्रयोग किया। हजारीप्रसाद द्विवेदी के शब्दों में, 'पंडित और काजी अवधू और जोगिया, मुल्ला और मौलवी सभी उनके व्यंग्य से तिलमिला जाते हैं। अत्यंत सीधी भाषा में वे ऐसी चोट करते है कि चोट खाने वाला केवल धूल झाड़के चल देने के सिवा और कोई रास्ता नहीं पाता।[9]

कबीर ने हिंदी साहित्य में अपनी रचनाओं में जिस तरह विपरीत काल परिस्थितियों की परवाह न करते हुए सामाजिक कुरीतियों, आडंबरों तथा पाखंडों का निर्भीकता से विरोध किया वह अपने-आपमें अतुलनीय है। उन्होंने हिंदू एवं मुस्लिम दोनों ही धर्मों में व्याप्त कुरीतियों का कड़ा विरोध किया है, जो कि उनकी पंक्तियों में प्रस्तुत है–

दुनिया ऐसी बाबरी, पाथर पूजन जाय
घर की चाकी कोई न पूजै, जाका पीसा खाय।[10]
काकर पाथर जोड़ कै, मस्जिद लई बनाय
ता चढ़ मुल्ला बांग दे, क्या बहरा हुआ खुदाय।[11]

कबीर ने अपने प्रयासों से आपसी मतभेद को मिटाने तथा सर्व समानता के मानव धर्म को पुष्ट करने का सफल प्रयत्न किया है। कबीर ने सदैव सादगी एवं सहजता पर बल दिया है। कबीर की साधारण सहजता के कारण ही वह आम जनता में लोकप्रिय हुए। उन्होंने अपने आसाधारण भावों को भी सरलता से ग्राह्य करने योग्य बनाया जो कि उन्हें लोगों के बीच भक्ति, श्रद्धा, प्रेम एवं विश्वास का पात्र बनाती है। प्रो॰ प्रतिमा अस्थाना के शब्दों में, 'संत कबीर अनोखे, अनुपम और अतुलनीय थे। आज तक उनके जैसा समन्वयवादी और निर्भीक वाणी बोलने वाला मनीषी दूसरा पैदा नहीं हो सका। जिन्होंने समय की धारा मोड़कर देश को विषम परिणाम भोगने से बचा लिया था। परस्पर विरोधी धर्मों और संस्कृतियों की टक्कर से जो पूर्ण विनाश और अंतिम विघटित स्थिति आ जाती है, उसे संत कबीर ने आंतरिक शक्ति और अध्यात्मिक के नये प्रकाश से ओत-प्रोत करते हुए एक सृजनात्मक दशा प्रदान की।'[12] अनेक विद्वान कबीर की प्रेम भक्ति की वाणी की आलोचना करते हुए उन्हें घमंडी, अहंकारी, अगुण-सगुण, विवेक अनभिज्ञ कहकर संतुष्ट होते हैं। इस सब के साथ-साथ जिस प्रकार कबीरदास ने अज्ञानजनित भ्रम का विध्वंस किया, उसके लिए महान सद्गुरु कबीरदास को उनके संत भक्त उन्हें सत्पुरुष के नाम से सम्मानित करते हैं। कबीर की कविताओं की महानता का प्रमुख कारण उनकी मूर्त विधायिनी क्षमता का होना है।

कबीर की भाषा शैली काव्य मुक्तक शैली है। उनकी रचनाओं में जिस प्रकार की भाषा का प्रयोग है वह अत्यंत ही ओजपूर्ण तथा प्रभाव उत्पन्न करने वाली है। कबीरदास मुमुक्ष जनों के कल्याण को सार्थक करने हेतु ही प्रकट हुए थे। उनका जीवन सांसारिक विषय कामनाओं से उसी प्रकार मुक्त था जिस प्रकार कमल पत्र कीचड़ में निर्लित होकर भी निर्मल एवं स्वच्छ रहता है। उनका जीवन विवेक वैराग्य रूपी यत्नों से होकर भी अंत तक निष्पक्ष एवं निर्मुक्त रहा। कबीर संत कवि और समाजसुधारक एवं भक्ति काव्य परंपरा के महानतम कवियों में से एक

थे। हजारीप्रसाद द्विवेदी कहते हैं कि 'हिंदी साहित्य के हजारों वर्षों के इतिहास में कबीर जैसा व्यक्तित्व लेकर कोई लेखक उत्पन्न नहीं हुआ। महिमा में यह व्यक्तित्व केवल एक ही प्रतिद्वंदी जानता है, तुलसी दास।'[13]

संदर्भ

1. कबीर, हजारीप्रसाद द्विवेदी, पृ॰ 170
2. प्रकाश हिंदी दिग्दर्शन, डॉ॰ सुरेशचंद्र गुप्त, प्रकाश बुक डिपो, बरेली, पृ॰ 71
3. यूथ कॉम्पिटिशन टाइम्स पत्राचार हिंदी, पृ॰ 288
4. डॉ॰ सुरेशचंद्र गुप्त, प्रकाश हिंदी दिग्दर्शन, पृ॰ 80
5. वही, पृ॰ 80
6. वही, पृ॰ 80
7. वही, पृ॰ 80
8. सं॰ माताप्रसाद गुप्त, कबीर ग्रंथावली, पृ॰ 55
9. कबीर, हजारीप्रसाद द्विवेदी, पृ॰ 170
10. प्रकाश हिंदी दिग्दर्शन, डॉ॰ सुरेशचंद्र गुप्त, प्रकाश बुक डिपो, बरेली, पृ॰ 92
11. वही, पृ॰ 92
12. प्रो॰ प्रतिमा अस्थाना, मध्ययुगीन समाज और संतकबीर, पृ॰ 60
13. कबीर, हजारीप्रसाद द्विवेदी, पृ॰ 170

सुपुत्री स्व॰ छोटेलाल सागर
म॰नं॰ 12**, मो॰ कटघर, पो॰ थाना किला**
जिला बरेली 243003
मो॰ 9760552261

पंत का विचार-जगत

डॉ॰ कनुप्रिया प्रचंडिया

व्यक्ति के व्यक्तित्व का मानस पक्ष है–चिंतन तथा अनुभूति और क्रियात्मक पक्ष है–व्यवहार अथवा आचार। चिंतन एक विचारात्मक प्रक्रिया है जिसका स्वरूप प्रतीकात्मक है। उसका आरंभ व्यक्ति के समक्ष उपस्थित किसी ऐसी समस्या अथवा कार्य से होता है, जो प्रयास की अपेक्षा रखता है और जो मनुष्य को उपस्थित समस्या के सुलझाने अथवा उसके निष्कर्ष तक पहुँचने की प्रेरणा देता है।[1] चिंतन मानव का आंतरिक व्यवहार है जिसमें पदार्थों तथा विचारों के लिए प्रतीक शामिल रहते हैं।[2] चिंतन किसी विश्वास या अनुमानित प्रकार के ज्ञान पर उसके आधारों तथा निष्कर्षों के प्रकाश में सक्रिय, सतत एवं सजगता के साथ विचार करना है।3 विचार ही वह सूत्र है, जो अलग-अलग ऐंद्रिय चित्रों को व्यापक एकता के सूत्र में संग्रथित करता है।[4] चेतना की समृद्धि और विस्तार श्रेष्ठ कला का लक्षण है और जब तक मानव समस्याएँ हल नहीं होतीं, चाहे वे किसी भी क्षेत्र या स्तर की क्यों न हों, तब तक मानव-संवेदनापूर्ण कलात्मक रूप में प्रस्तुत करे।[5] पंत का व्यक्तित्व अतिशय जागरूक सांस्कृतिक साहित्यकार का है। पंत जी का सांस्कृतिक चैतन्य उनकी कलात्मक सृजनशीलता का अवयव ही नहीं, उसका प्रेरक और नियामक भी प्रतीत होता है। पंत जी स्वयं कहते हैं–'साहित्य केवल विचार तत्त्व से ही प्रणीत नहीं होता। विचार तो मुख्यत: शास्त्रों के क्षेत्रों में उगते हैं। साहित्य तो उनसे प्रकाश एवं प्रेरणाभर ग्रहण करता है। साहित्य मेरी दृष्टि में प्रधानत: मानव-हृदय का दर्पण है, हृदय मनुष्यत्व के सांस्कृतिक स्वास्थ्य का सूचक है, जिसके द्वारा जीवन में नवीन प्राणों के सौंदर्य तथा रक्त का संचार होता है।'[6] पंत जी आगे स्वीकारते हैं–'मेरी कल्पना भविष्य की इस मनुष्यता और सामाजिकता को चित्रित करने में सुख का अनुभव करने लगी जिसका आधार ऐतिहासिक सत्य है। ऐतिहासिक शब्द का प्रयोग मैं इतिहास-विज्ञान के ही अर्थ में कर रहा हूँ, जो दृश्य और द्रष्टा के सामूहिक विकास के नियमों का निरूपण करता है। बाह्य परिस्थितियों से प्रेरित होकर मनुष्य की अंतश्चेतना तदनुकूल पहले ही विकसित हो जाती है, यथा–'जग-जीवन के अंतर्मुख नियमों से स्वयं प्रवर्तित/मानव का अवचेतन मन हो गया आज परिवर्तित।' किंतु उसके बाद भी मनुष्य के उपचेतन के आश्रित विगत सांस्कृतिक गुणों की प्रक्रियाएँ होती रहती हैं, जिसका परिणाम बाह्य संघर्ष होता है। साथ ही वह नवविकसित अवचेतन की सहायता से प्रबुद्ध होकर नवीन सत्य का समन्वय भी करता जाता है।[7] पंत जी की वैचारिकता की व्यापकता, गहराई, रचनात्मकता और उदात्तता को पहचानने, व्याख्यायित करने तथा उसके महत्त्व को निरूपित करने का प्रयास यहाँ अभिप्रेत है।

पंत जी का व्यक्तित्व पूर्ण संस्कृत तथा शालीन है। उनका संगीतमय सुमधुर स्वर,

निर्विकार दृष्टिनिक्षेप सौजन्य, विनम्र और निश्छल वार्तालाप, चिरमोह के प्रबल बंधन हैं। दो श्रेष्ठ गुण पूर्ण मनुष्यत्व के हैं–आत्मविश्वास और निरभिमानता। साथ ही वे दूसरों के स्वाभिमान का सम्मान करते हैं। यही नहीं, उनकी अंतर्भेदिनी दृष्टि में व्यक्तियों के अंतस्थल तक पहुँचने की सुंदर क्षमता है।[8] पंत के काव्यवैभव का स्वर प्रकृति के विशाल प्रांगण से प्रारंभ होकर, प्रेम की परिधियों में स्वास लेकर लोक कल्याण के पथानुगामी साम्यवाद को स्वीकारता हुआ अंत में मानवात्मा और सांस्कृतिक उत्थान के लिए आध्यात्म में विश्राम लेता है।[9] पंत काव्य के निम्नचरण स्थिर किए जा सकते हैं–प्रथम चरण–छायावादी युग–'वीणा' से 'गुंजन' तक (सन् 1918 ई॰ से सन् 1935 ई॰ तक), द्वितीय चरण–प्रगतिवादी युग–'युगांत' से 'ग्राम्या' तक (सन् 1936 ई॰ से सन् 1940 ई॰ तक), तृतीय चरण–आध्यात्मवादी युग–'स्वर्णकिरण' से 'वाणी' तक (सन् 1940 से अंत तक)।[10] 'पल्लव' में कवि अपने व्यक्तित्व के घेरे में बँधा और 'गुंजन' में कभी-कभी उसके बाहर और 'युगांत' में लोक के बीच दृष्टि फैलाकर आसन जमाता हुआ दिखाई देता है। 'गुंजन' तक वह जगत से अपने लिए सौंदर्य और आनंद का जगत में पूर्ण विस्तार देखना चाहता है। कवि की सौंदर्यभावना अब व्यापक होकर मंगलभावना के रूप में परिपात हुई।[11] 'युगवाणी' एक प्रकार से भारतीय साम्यवाद की वाणी है, भारतीय अर्थात् जिस रूप में उसे भारत का मस्तिष्क और हृदय समझ सका है।[12] सर्वहारा के कल्याण-कामना के कारण ही व्यावहारिक दृष्टि में पंत ने साम्यवादी विचारधारा को आत्मसात् किया। 'स्वर्णकिरण' में कवि प्रकृति की वस्तुओं का तटस्थ रूपदर्शन कम करता है और विचारशीलता अधिक प्रारंभ होने लगती है। वह समाज, संस्कृति, क्रांति, शांति व मानवता के विकास आदि पर व्याख्याता की पद्धति अपने विचार प्रकट करने लगता है और परिणाम यह होता है कि 'वस्तु' केवल बात कहने का बहाना बन जाती है।[13] पंतजी की कुल साहित्यिक कृतियों की संख्या उनतालीस है, जिनमें से आठ गद्य कृतियाँ तथा इकतीस पद्य कृतियाँ हैं। गद्य कृतियों में 'हार' एक उपन्यास है, 'ज्योत्स्ना' एक नाट्य कृति है और 'पाँच कहानियाँ' एक कहानी संकलन है। शेष गद्य रचनाएँ या तो उनकी विभिन्न ग्रंथों की भूमिकाएँ हैं अथवा विभिन्न अवसरों पर उनके द्वारा लिखे गए निबंध हैं, जो बाद में संकलित रूप में 'शिल्प और दर्शन' (1961), 'कला और संस्कृति (1965) तथा 'साठ वर्ष और अन्य निबंध' (1973) शीर्षकों से प्रकाशित हुए। 'छायावाद : पुनर्मूल्यांकन' समीक्षात्मक कृति है, जो स्वतंत्र रूप से सन् 1965 ई॰ में प्रकाशित हुई। पद्य कृतियों में तीन प्रबंधात्मक काव्य रचनाएँ हैं जिनमें से 'लोकायतन' तथा 'सत्यकाम' महाकाव्यात्मक कलेवर वाली काव्य कृतियाँ हैं। 'ग्रंथि' एक खंडकाव्य है। पंत में उनकी किशोरावस्था से ही एक ऐसी निर्मल मनोवृत्ति के दर्शन होते हैं, जो उन्हें जीवन के शुभ पक्ष की ओर निरंतर प्रेरित करती रही है। वीणा, पल्लव, गुंजन आदि में जीवन को शुभ्र से शुभ्रतर और शुभ्रतर से शुभ्रतम बनाने की उनकी आकांक्षा की अभिव्यक्ति बराबर होती रही है। उनका यह संस्कार युगांत, युगवाणी, ग्राम्या, स्वर्णकिरण में स्थान-स्थान पर खिल उठा है। पंत जी की ज्योत्स्ना नाटिका उसी प्रकार के स्वप्न की एक चित्रपटी है और अब इधर स्वर्णधूलि उनकी आत्मा के संदेश की वाहिका बनी है। कहने का तात्पर्य यह कि जीवन को उज्ज्वल बनाने की यह भावधारा चाहे कहीं पृथुल और कहीं विरल रही हो, परंतु पंतजी के काव्य में वह कहीं सूखने नहीं पाई है।14

साहित्य और दर्शन का उद्देश्य जीवन की व्याख्या करना है। साहित्य जीवन के प्रति

भावात्मक दृष्टिकोण रखता है। दर्शन में जीवन के प्रति बौद्धिक दृष्टिकोण रहता है। साहित्य का दृष्टिकोण अत्यंत उदार होता है जबकि दर्शन एक बँधी हुई परिपाटी पर चलता है। जन्म से लेकर मृत्यु तक मानव में विकास होता रहता है। शारीरिक विकास की अपेक्षा मानसिक विकास कहीं अधिक महनीय है। व्यक्ति का मानसिक जीवन ही उसका सच्चा जीवन है। बाह्याचार उसी की अभिव्यक्ति मात्र है। 'पल्लव' तक का काव्य कवि के हृदय का काव्य है। उसके पश्चात् बौद्धिक जागरण का काल आता है। 'गुंजन' संक्रांति काल की है। हृदय से बुद्धि की ओर प्रगति के अवसर की रचना है। युगांत से लेकर 'ग्राम्या' तक के काल को मैं कवि का अध्ययन काल मानती हूँ, जिसका पूर्णपरिपाक परवर्ती काव्य में पड़ा है। उपनिषद्, अद्वैतवाद, स्वामी विवेकानंद, मार्क्सवाद, गांधीवाद और श्रीअरविंद के दर्शन का कवि-काव्य पर सघन प्रभाव पड़ा है। इसके अतिरिक्त हीगल के दर्शन से भी कवि पंत प्रभावित हुए हैं। उपनिषदों का उद्देश्य व्यग्र आत्मा को शांति और स्वाधीनता प्रदान करना है। कवि पंत आरंभ से ही आस्तिक रहा है। मनुष्य और मनुष्य को एकता की दृढ़ प्रतिष्ठा उपनिषदों में मिलती है। यह समत्व आज के मानव का सबसे बड़ा स्वप्न है। पंत इससे विशेष प्रभावित हुए हैं। वेदांतसूत्र गीता और उपनिषद प्रस्थानत्रयी का आधार लेकर शंकराचार्य ने अद्वैतमत की प्रतिष्ठा की। अद्वैतवाद के अनुसार ब्रह्म एकमात्र सत्य है। ज्ञान ही सत्य प्रकाशित कर देता है। ज्ञानप्राप्ति के संसार का त्यागना आवश्यक है। ज्ञान और माया दोनों एक साथ ही ईश्वर में विद्यमान है। ईश्वर ही जीव पर अनुग्रह कर उसे सत्य का ज्ञान कराता है। आधुनिक युग में अद्वैत के तीन प्रधान व्याख्याता हुए हैं—स्वामी रामकृष्ण परमहंस, स्वामी विवेकानंद और स्वामी रामतीर्थ। स्वामी विवेकानंद ने अद्वैत दर्शन के मूल पक्ष पर बल दिया और वह आत्मा और ब्रह्म का अभेद, संसार और ब्रह्म का अभेद। सदाचार और परमार्थ के उच्चतम आदर्श और उच्चतम दार्शनिक सत्य में सामरस्य है। श्रीअरविंद ने उपनिषद दर्शन और चेतन विकासवाद का सामंजस्य किया है। मार्क्सवाद में द्वंद्ववाद इतिहास की भौतिक व्याख्या है और वर्गसंघर्ष के सिद्धांतों को जोड़कर मार्क्स ने इस वाद को जन्म दिया। गांधीवाद के तीन पहलू हैं—राजनीतिक, सामाजिक और धार्मिक। राजनीतिक क्षेत्र में गांधी और ब्रिटिश साम्राज्यवाद का संघर्ष आता है। सामाजिक क्षेत्र में भारत के सांस्कृतिक पुनरुत्थान की बात है और धार्मिक क्षेत्र में गांधी की आध्यात्मिक शक्ति का निरीक्षण करना है।

'वीणा' में प्रकृति-प्रेम, माँ का प्रेम और आदर्श के प्रति मोह अभिदर्शित है। इस शुरुआती काव्य में जो प्रार्थनाएँ मिलती हैं उनमें माँ के प्रेम और आदर्श के मोह का मधुर मिलन दिखाई देता है। अधिकांश प्रार्थनाएँ व्यक्तिगत हैं किंतु कतिपय गीतों में संसार के कल्याण की भावना भी प्रस्फुटित हुई है—'कुमुद कला वन कल हासिनि/अमृत प्रकाशिनि, नभवासिनी/तेरी आभा को पाकर माँ!/नभ का तिमिर त्रास हर दूँ—/नीरव रजनी में निर्भय।' यह आदर्श चिंतन सर्वत्र कवि के पास रहा है। माँ के अनन्य प्रेम ने ही कवि के हृदय में माँ के प्रति भक्तिभावना जाग्रत की दी है। यकायक कवि के हृदय में प्रेम का बाण लगता है जो चिर वियोग का शल्य छोड़ जाता है। 'ग्रंथि' और 'पल्लव' में इस मर्मपीड़ा की ही विवृत्ति का कलात्मक वैभव है। जहाँ तक चिंतन का सवाल है, 'पल्लव' की 'परिवर्तन' कविता अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। यहाँ से कवि का जागरण काल आरंभ होता है। कवि को सुख और दुख दोनों के महत्त्व का ज्ञान होता है। जीवन के लिए दोनों आवश्यक हैं—'आज का दुख कल का आह्लाद, और कल का सुख आज विषाद।'

यह विचार पंत के चिंतन का एक प्रधान स्तंभ है। 'गुंजन' में कवि की चेतनापूर्ण रूप से सजग हो गई है। आगे सारे काव्य में हमें कवि की उद्‌बुद्ध बुद्धि के ही दर्शन होते हैं। कवि उपनिषद्‌-दर्शन, अद्वैत और स्वामी रामकृष्ण और स्वामी विवेकानंद के विचारों से प्रभावित है। कवि की प्रतिभा उनमें फँसी हुई नहीं, तपी हुई दिखाई देती है। अद्वैत सिद्धांत की मधुर व्यंजना 'एक तारा' कविता में लक्षित होती है। चाँदनी के अंतिम छंद में भी इसी की छाया है, किंतु प्रधानतः कवि ने अद्वैत को ग्रहण न कर उपनिषदों और स्वामी विवेकानंद आदि आधुनिक विचारकों के आध्यात्मिक स्वरों को वाणी दी है। उनका प्रधान वाद है–आस्तिकता और मानवतावाद या विश्वबंधुत्व। 'नीरवतार', 'तप' और 'प्रार्थना' आदि कविताओं में दोनों बातें दिखाई देती हैं। 'मानव' कविता में कवि पंत ने मानव की गरिमा–शारीरिक और मानसिक–का प्रदर्शन किया है। यदि मनुष्य अपने अंतर का विकास कर ले, यदि वह सच्चे अर्थों में मानव बन जाए तो वह पूर्ण काम हो जाएगा। 'युगांत', 'युगवाणी' और 'ग्राम्या' में वह मानव-जीवन में स्वच्छंद विचरण कर उसी व्याख्या करने वाले सिद्धांतों और वादों का अध्ययन करती दिखाई देती है वे हैं–गांधीवाद और मार्क्सवाद। किंतु बीच-बीच में कवि की स्वच्छंद प्रतिभा के स्वर भास्वर हो उठते हैं। 'पतझर' और '1940' आदि कविताओं में कवि प्राचीन के नाश पर नवीन के सृजन की बात कहता है। सृजन और नाश का यह क्रमिक चक्र गतिमान ही रहता है। यह विश्वास पंत के चिंतन-भवन का एक और प्रधान स्तंभ है, जो आद्यंत मिलता है। यथार्थ की विषमता से पीडित कवि की चेतना मानव-जीवन की मुक्ति के साधन खोजने के लिए आध्यात्मवाद से मार्क्सवाद, मार्क्सवाद से गांधीवाद और गांधीवाद से श्रीअरविंद के दर्शन तक चक्कर लगाने लगी। पंत ने विरोधी सिद्धांतों का अध्ययन करते हुए उनके विरोधों को दूर कर अपने स्वतंत्र चिंतन के अनुरूप उनके समन्वय का प्रयत्न किया। समन्वय की प्रवृत्ति पंत के चिंतन-महल का एक और सोपान है। युगांत से ग्राम्या तक की विचारधारा में तीन बातें दृष्टिगत हैं–प्रथम है कवि का स्वतंत्र चिंतन, द्वितीय गांधीवाद और तीसरा मार्क्सवाद। कवि पंत ने अपने चिंतन के अनुरूप समन्वय का प्रयत्न किया है। समन्वय के भी तीन रूप मिलते हैं–अद्वैतवाद और मार्क्सवाद का समन्वय, गांधीवाद और मार्क्सवाद का समन्वय और अध्यात्मवाद और भूतवाद का समन्वय। स्वर्णकाव्य, उत्तरा आदि परवर्ती काव्य में समन्वय का रूप निखर उठता है। नाशोन्मुख यथार्थ जीवन से विरक्त होकर कवि नवसंस्कृति के गान में लीन हो जाता है। इस प्रकार पंत के नवमानव में हृदय का भी पूर्ण उत्कर्ष है और भौतिक ऐश्वर्य की भी चरम तृप्ति है। वह उदार मानवता के पोषक हैं–'आओ स्थितियों से लड़ें/साथ-साथ आगे बढ़ें/भेद मिटेंगे निश्चय/एक्य की होगी जय/जीवन का यह विकास/आ रहे मनुज पास/उठता उर से रव है–/एक हम मानव हैं/भिन्न हम दानव हैं।' पंत का काव्य अखिल विश्व की कल्याण-कामना से अनुप्राणित है।

समग्रतः पंत का सांस्कृतिक चैतन्य ही उनके व्यक्तित्व का मूल प्रेरक तत्त्व था। बालावस्था में पंत जी ने गीता, रामायण उपनिषद आदि भारतीय वाङ्‌मय के विशिष्ट ग्रंथों का अध्ययन किया। आगे चलकर उन्हें जहाँ अँग्रेजी के माध्यम से पाश्चात्य साहित्य को पढ़ने का अवसर मिला। हिंदी, संस्कृत, बंगला और अँग्रेजी साहित्य का मनोयोगपूर्वक अध्ययन करने के साथ-साथ पंत जी ने दर्शन, समाजशास्त्र, राजनीति एवं अर्थशास्त्र का भी यथेष्ट अनुशीलन किया। उन्होंने आधुनिक विज्ञान और मनोविज्ञान के विभिन्न पक्षों को आत्मसात् करने में भी गहरी रुचि

दिखाई। डार्विन के जैविक विकासवाद के सिद्धांत और मार्क्स के सामाजिक विकासवाद का उनके मन पर गहरा प्रभाव पड़ा और वे उनकी चिंतन-प्रक्रिया के स्थाई अंग बन गए। आर्यसमाज की सामाजिक चेतना तथा विवेकानंद की व्यावहारिक वेदांती दृष्टि की ओर उनका झुकाव और लगाव आरंभ से ही रहा। भारतीय राष्ट्रीयता के अमर नायक महात्मा गांधी के प्रति पंत की अगाध श्रद्धा जाग्रत हुई। अध्यात्म और विज्ञान के आधार पर महर्षि अरविंद ने वैयक्तिक और सामाजिक विज्ञान की जो समन्वित कल्पना 'भागवत जीवन' के रूप में प्रस्तुत की, उसे पंत जी ने अपने मन-मानस में अंकित करते हुए जीवन-दृष्टि के समीप पाया और तज्जन्य उनके चिंतन को नया आलोक प्राप्त हुआ। वस्तुतः पंत का विचार-जगत सृष्टि के एकत्व की प्रतीति से आलोकित था और जीवन के समेकित विकास की छवि को प्रकाशमान करने में ही उन्होंने अपने साहित्यिक रचना-संसार को सार्थक सिद्ध किया।

संदर्भ

1. Thinking is an ideationsl activity, Symbalic in character mitiated by a problem or a task the individual is tacing, involing some amount of trial, but under direct influence of his problem-set and leading ultimately to a conclusion or solution of the problem. - Warren, Dictionary of Psychology.
2. Thinking is implicit or inner behaviour involving symbols for ideas and objects. - Garret H.E., General Psychology, indied (1961)
3. Thinking is active, persistent and Carefut consideration of any belief or supposed from of knowledge in the light of the grounds that support it and the further conclusion in wich it tends. -John Duwey
4. केदारनाथ सिंह, आधुनिक हिंदी कविता में बिंब विधान का विकास, पृ॰ 71
5. गजानन माधव मुक्तिबोध, नए साहित्य का सौंदर्यशास्त्र, पृ॰ 52
6. पंत ग्रंथावली, खंड-6, प्रथम संस्करण 1979, पृ॰ 593
7. वही, पृ॰ 282-283
8. शांतिप्रिय द्विवेदी, हमारे साहित्य के निर्माता, पृ॰ 190
9. डॉ॰ आदित्य प्रचंडिया, आधुनिक हिंदी कविता : परंपरा और परिवेश, पृ॰ 74
10. वही, पृ॰ 74
11. आचार्य रामचंद्र शुक्ल, हिंदी साहित्य का इतिहास, पृ॰ 354
12. डॉ॰ नगेंद्र, सुमित्रानंदन पंत, पृ॰ 142
13. डॉ॰ विश्वंभरनाथ उपाध्याय, पंत जी का नूतन काव्य और दर्शन, पृ॰ 562
14. विश्वंभर 'मानव', सुमित्रानंदन पंत, पृ॰ 374

मंगलकलश
394, **सर्वोदयनगर**
आगरा रोड, अलीगढ़ 202001 **(उ॰प्र॰)**
मो॰ 09897144022

दुष्यंतकुमार के काव्य में बिंब एवं प्रतीक-योजना

बिंदु यादव
हेमवती नंदन बहुगुणा गढ़वाल विश्वविद्यालय
श्रीनगर (गढ़वाल)

बिंब शब्द अँग्रेजी के 'इमेज' शब्द का हिंदी रूपांतर है। बिंब से तात्पर्य है एक ऐसा शब्द चित्र जिसे कवि अपनी कल्पनाशक्ति से प्रतीकों एवं उपमानों के माध्यम से पाठक अथवा स्रोता के मन-मस्तिष्क में साकार करता है। जिसकी सहायता से कवि के विचारों एवं भावों को समझना सरल हो जाता है। डॉ॰ नगेंद्र के अनुसार, 'बिंब एक प्रकार का चित्र है, जो किसी पदार्थ के साथ विभिन्न इंद्रियों के सन्निकर्ष से प्रभाता के चित्त में उदबुद्ध हो जाता है। अत: काव्य बिंब शब्दार्थ के माध्यम से कल्पना द्वारा निर्मित एक ऐसी मानव छवि है जिसके मूल में भाव की प्रेरणा रहती है।'[1]

सामान्यत: बिंब के दो मुख्य रूप हैं–मानस बिंब तथा इंद्रीय बिंब। इंद्रीय बिंब के अंतर्गत दृष्टि बिंब, घ्राण बिंब, रस बिंब, स्वाद्य बिंब, स्पर्श बिंब तथा ध्वनि बिंब आते हैं। मानस बिंबों में कलात्मक बिंब, पौराणिक बिंब, प्रकृति बिंब, वैज्ञानिक बिंब आदि गणनीय हैं। दुष्यंतकुमार के काव्य में बिंब के ये सभी रूप प्राप्त होते हैं। उन्होंने सदैव लीक से हटकर काव्य रचना की है। रूढ़िगत काव्य परंपराओं से चिपके रहना दुष्यंत को कभी नहीं भाया। वे तो स्वभाव से ही गतिशील तथा क्रांतिकारी साहित्यकार रहे हैं। दुष्यंत यथार्थवादी कवि थे। उनके काव्य में अनुभूति तथा संवेदनशीलता की अभिव्यंजना हेतु सुंदर बिंब योजना दृष्टिगत होती है। उनकी अभिव्यक्ति को और अधिक जीवंत तथा प्रभावशाली बनाने में बिंबों का महत्त्वपूर्ण योगदान है। बिंब विधान की दृष्टि से इनका काव्य संपन्न है। इनकी कविताओं में बिंब विधान के वर्ण्य विषय भी प्रचुर मात्रा में है। दुष्यंत ने प्रकृति, पुराण, कला, विज्ञान तथा जीवन के धरातल से अधिकाधिक बिंबों का चयन किया है।

दुष्यंत के काव्य में कलात्मक बिंबों में भाव व्यंजना के साथ-साथ अर्थ की गहनता भी विद्यमान है–'जो मरूस्थल आज अश्रु भिगो रहे हैं/भावना के बीज जिस पर बो रहे हैं/सिर्फ मृगछलना नहीं वह चमचमाती रेत/अर्थ लेंगे कल हमारे आज के संकेत।'[2]

दुष्यंत ने धार्मिक बिंब पौराणिक तथा ऐतिहासिक कथ्यों के रूप में चित्रित किए हैं– 'ज़िंदगी जो सीता-सी बैठी है इस वन में/चारों ओर खिंची हुई रेखाओं के बीच/जहाँ संभावनाओं के रावण/या आशाओं के राक्षस/आते ही भस्म हो जाते हैं।'[3]

प्रकृति बिंब का संबंध प्राकृतिक उपादानों से होता है। दुष्यंत की कविताओं में प्रकृति युगबोध के संदर्भ में प्रकट हुई है। प्रकृति बिंब उनके काव्य में अधिकतर मानवीकरण रूप में

मिलता है–'एक दुखी माँ की तरह संध्या/मैला-सा आँचल पसारे सामने खड़ी है। सारा आकाश ग्राम/बाल-वृद्ध-वनिताएँ/साँस रोक/देख रहे विदा दृश्य/लिपे-पुते आँगन-सी/धरती पड़ी है।'[4]

वैज्ञानिक धरातल पर दुष्यंत के काम में अनेक बिंब सृजित हुए हैं। जिनमें विज्ञान से संबंधित शब्दों एवं घटनाओं का चित्रण हुआ है–'पाँच बजते टूट पड़ती/एक भीड़ अपार/अनगिन लोग-कारें-बसें-बाइसिकलें/राजमार्गों पर उतरती दौड़ती हैं।'[5]

इंद्रीय बोधात्मक बिंबों के प्रस्तुतीकरण में दुष्यंत विशेष रूप से सफल हुए हैं। दृश्य संवेदना द्वारा मानस-पटल पर अंकित होने वाला बिंब दृश्य बिंब कहलाता है। यह बिंब रूप-रंग प्रधान होता है। दुष्यंत के ग़ज़ल-संग्रह 'साये में धूप' में दृश्य बिंब का सुंदर चित्र अंकित है–

खंडहर बचे हुए हैं, इमारत नहीं रही
अच्छा हुआ कि सर पे कोई छत नहीं रही।[6]

घ्राण अर्थात् गंध से संबंधी घ्राण बिंब का चित्रण भी दुष्यंत के काव्य में दृष्टिगत होता है–जो कीट धरा से ऊपर/हर क्षण उड़ते फिरते थे/दुर्गंधयुक्त निर्भय जो/कण-कण दूषित करते थे।'[7]

दुष्यंत की कविताएँ एवं ग़ज़लें कहीं-कहीं पर ऐसे रसात्मक तत्त्वों से जुड़ी हुई हैं, जो मनुष्य के खाने से संबंधित हैं। उनकी ग़ज़ल में रस बिंब का उदाहरण दृष्टव्य है–

हम ही खा लेते सुबह को भूख लगती है बहुत
तुमने बासी रोटियाँ नाहक उठाकर फेंक दीं।[8]

दुष्यंत जी ने अपनी रचनाओं में कहीं-कहीं स्वाद बिंबों को भी उभारा है। स्वाद बिंब का संबंध 'रसना' से है। दुष्यंत ने अपने काव्य नाटक 'एक कंठ विषपायी' में सर्वहत के माध्यम से शासकों द्वारा पीड़ित जनता के शोषण की परंपरा को व्यंजनात्मक रूप से चित्रित किया है–'तुम मुझको चुल्लू-भर रक्त पिला सकते हो/आह!/आज मैं प्यासा हूँ।'[9] दुष्यंतजी ने यहाँ परंपरित स्वाद से हटकर मनुष्य के रक्त पीने की नई रुचि को दर्शाया है।

दुष्यंतजी के काव्य में स्पर्शजन्य संवेदनात्मक बिंबों की सुंदर योजना दृष्टव्य है। स्पर्श द्वारा पदार्थों की कोमलता, कठोरता, तापमानगत स्थिति आदि का ज्ञान किया जा सकता है–'था सुडौल 'औ' गोरी बाँहों का कैसा विस्तार/ निठुर के थे कैसे भुजपाश कि मेरी देह/निबल 'औ' क्षीण हो गई।'[10]

ध्वनि बिंब कर्णेन्द्रिय से संबंधित होता है। दुष्यंतजी ने रूढ़ियों के बंधन में बँधे व्यक्ति की व्यथा को पिंजरे में कैद पक्षी की व्यथित अवस्था द्वारा चित्रित किया है–'उस चिड़िया की चीं-चीं से/उसकी कातर ध्वनि से सारा वातावरण त्रस्त है।/नन्हें-नन्हें पंखों की कातर आवाजें/अंत:पुर में गूँज रही हैं।'[11]

बिंब निर्माण में दुष्यंतजी की कल्पना के द्वारा चमत्कारोत्पत्ति की क्षमता अतुलनीय है। उनके काव्य में बिंबों का प्रस्तुतीकरण अद्‌भुत है। उन्होंने अपनी कविताओं में शिल्प के क्षेत्र में नवीन प्रयोग किए हैं। उन्होंने अपनी कविता को जनसामान्य के अधिकाधिक निकट लाने के लिए दैनिक जीवन के क्रिया-कलापों का बिंबात्मक स्वरूप ग्रहण किया है–'एक कार तेजी से चिल्लाती भागती हुई/घर के आगे से निकल गई/सुबह हुई/आँखे मलती नन्ही बिटिया-सी/जगी हुई धूल उठी/बाहर के आँगन में/पसर गई।'[12]

नयी कविता में फ्रायडीय दर्शन पर आधारित मनोवैज्ञानिक तथा यौन बिंब भी उपस्थित

है। अधिकांशत: इस प्रकार के बिंब कवियों की मौलिक कल्पना की उपज है। दुष्यंत जी की रचनाओं में प्रेम के स्वरूप को चित्रित करते हुए शारीरिक स्तर पर प्रेम की अभिव्यक्ति हेतु यौन बिंबों का चित्रण भी मिलता है–'किसके अधरों ने मेरे अधरों पर ताला डाला/साँसों को मुँह के भीतर ही घुटने को मजबूर किया/किसने मुझको मेरे तन की सुधि-बुधि से दूर किया।'[13]

दुष्यंत जी ने अपनी कविताओं में मनुष्य की संवेदनाओं यथा–प्रेम, घृणा, कुंठा, जिजिविषा आदि की अभिव्यक्ति हेतु भी काव्य बिंब चित्रित किए हैं, जो परंपरागत बिंबों से सर्वथा भिन्न हैं–'कीड़ों की तरह बिलबिलाती हुई साँसे जहाँ/कभी सिर उठाती हैं/जीने की आशाएँ/चिकनी मछलियों सी/हाथों में आती हैं/और निकल जाती हैं।'[14]

दुष्यंत जी ने बिंबों के शिल्प सौंदर्य के माध्यम से अपनी रचनाओं की भावभूमि को चित्रात्मक और संवेदनशील बनाने में कोई चूक नहीं की है। उनके काव्य बिंबों कवि की संपूर्ण संवेदना और अभिव्यक्ति का शब्द-चित्र है। बिंब-विधान की दृष्टि से दुष्यंत जी का काव्य हिंदी साहित्य की अमूल्य निधि है। आधुनिक नवीन काव्य परंपरा में दुष्यंत जी के काव्य बिंब अपनी ऐंडिक संवेदना तथा अनुभव की एकात्मकता की अभिव्यक्ति में पूर्णतया समर्थ हैं। उनके काव्य बिंब अस्पष्ट अथवा जटिल न होकर सरल एवं व्यवस्थित हैं, जो कवि के मानसिक संवेगों को स्पष्ट अभिव्यक्ति प्रदान करते हैं।

दुष्यंतकुमार ने अपनी रचनाओं में 'प्रतीकों' का चयन भी अत्यंत प्रभावशाली ढंग से किया है–'प्रतीक शब्द का प्रयोग उस दृश्य वस्तु के लिए किया जाता है, जो किसी अदृश्य (गोचर या अप्रस्तुत) विषय का प्रतिविधान उसके साथ अपने साहचर्य के कारण करती है अथवा कहा जा सकता है किसी अन्य स्तर के विषय का प्रतिनिधित्व करने वाली समानरूप वस्तु 'प्रतीक' है।'[15] प्रतीक को परिभाषित करते हुए कैलाश वाजपेयी कहते हैं–'प्रतीक विस्तार को संक्षेप में कहने का माध्यम है।'[16] डॉ॰ रामस्वरूप चतुर्वेदी के अनुसार–'प्रतीक किसी सूक्ष्म भाव की अभिव्यक्ति के लिए एक अपेक्षा स्थल तत्त्व का चुनाव है।'[17] प्रतीकों में भावों को जाग्रत करने की अद्‌भुत क्षमता होती है।

दुष्यंत जी ने अपनी रचनाओं में नवीन प्रतीकों का सृजन किया है। उनके प्रतीक अधिकांशत: समसामयिक जीवन से चयनित हैं। प्रतीकों की खोज में दुष्यंत जी कभी इतिहास की यात्रा पर निकल पड़े, कभी पौराणिक पात्रों को खंगाला, तो कभी प्रकृति की शरण में चले गए। कवि की दृष्टि वैज्ञानिक उपकरणों के साथ-साथ अणु-परमाणु में भी प्रतीक तलाशती रही। दुष्यंत जी के काव्य में पौराणिक प्रतीकों का प्रयोग अत्यंत सराहनीय है–'पार्थ हूँ न चाहे मैं/ किंतु महाभारत-सा युद्ध सामने है/कृष्ण हो न चाहे तुम/किंतु तुम्हें अश्वों की डोर थामनी है।'[18]

दुष्यंत जी की इन पंक्तियों में अर्जुन कर्मठता एवं कर्त्तव्यपरायणता का प्रतीक है तथा कृष्ण जीवनरथ को संचालित करने वाली शक्ति का प्रतीक हैं। दुष्यंत जी इसी कृष्ण रूपी शक्ति की प्रेरणा से मानव को अर्जुन की भाँति जीवन-संघर्ष रूपी युद्ध पर विजय प्राप्ति का संदेश देते हैं।

प्रकृति से प्रतीकों के चयन की परंपरा पूर्वकाल से ही रही है। प्रकृति आलंबन, उद्‌दीपन, मानवीकरण, अलंकार आदि रूपों में काव्य में प्रकट हुई है। दुष्यंत जी ने प्रकृति को युगबोध के संदर्भ में अपनाया है। उन्होंने अपनी कविता 'साँझ एक विदा दृश्य' में प्रकृति के माध्यम से कन्या की विदाई के पश्चात् का दृश्य प्रस्तुत करते हुए संध्या को दुखी माता के तथा पिता को पर्वत

के प्रतीकों द्वारा प्रदर्शित कर सुंदर चित्र उभारा है–'वृद्ध-वृक्ष, गर्दन हिलाते/ पिता-पर्वत/काली-सी चादर में मुँह लपेट/विदा का प्रसंग टाल जाते हैं।'[19]

दुष्यंत जी ने अपनी रचनाओं में कलात्मक प्रतीकों द्वारा सुंदर अभिव्यक्ति की है–'दीवार, दरारें पड़ती जाती हैं इसमें/दीवार, दरारें बढ़ती जाती हैं इसमें।'[20]

दुष्यंतकुमार के काव्य में समसामयिक घटनाओं का प्रभावशाली चित्रण मिलता है। अत: उनके कृतित्व में सामान्य जनजीवन संबंधित प्रतीकों की बहुलता है। उनकी 'सूर्य का स्वागत' में संग्रहीत 'अनुभव-दान' कविता में मानव-जीवन को पतंग के प्रतीक द्वारा दर्शाया गया है–'टूटी हुई ज़िंदगी/आँगन में दीवार से पीठ लगाए खड़ी है।'[21]

दुष्यंत जी की रचनाओं में पौराणिक प्रतीक, प्राकृतिक प्रतीक, कलात्मक एवं समसामयिक जनजीवन से संबंधित लगभग सभी के परंपरागत एवं कुछ नवीन प्रतीक भी पाए जाते हैं। इनके प्रतीक सरल एवं अधिकाधिक जनसामान्य से संबंधित हैं। इनके अतिरिक्त दुष्यंत जी की रचनाओं में यत्र-तत्र यौन प्रतीक एवं वैज्ञानिक प्रतीकों के भी प्रयोग मिलते हैं।

संदर्भ

1. डॉ॰ नगेंद्र, काव्य बिंब, पृ॰ 3
2. विजयबहादुर सिंह, दुष्यंतकुमार रचनावली-एक, पृ॰ 413
3. वही, पृ॰ 412
4. विजयबहादुर सिंह, दुष्यंतकुमार रचनावली-दो, पृ॰ 199
5. विजयबहादुर सिंह, दुष्यंतकुमार रचनावली-एक, पृ॰ 416
6. विजयबहादुर सिंह, दुष्यंतकुमार रचनावली-दो, पृ॰ 264
7. विजयबहादुर सिंह, दुष्यंतकुमार रचनावली-एक, पृ॰ 153
8. विजयबहादुर सिंह, दुष्यंतकुमार रचनावली-दो, पृ॰ 286
9. वही, पृ॰ 104
10. विजयबहादुर सिंह, दुष्यंतकुमार रचनावली-एक, पृ॰ 241
11. विजयबहादुर सिंह, दुष्यंतकुमार रचनावली-दो, पृ॰ 34
12. वही, पृ॰ 135-136
13. विजयबहादुर सिंह, दुष्यंतकुमार रचनावली-एक, पृ॰ 241
14. विजयबहादुर सिंह, दुष्यंतकुमार रचनावली-दो, पृ॰ 148
15. डॉ॰ मधु खराटे, साठोत्तरी हिंदी ग़ज़ल, पृ॰ 17
16. कैलाश वाजपेयी, आधुनिक हिंदी कविता में शिल्प, पृ॰ 75
17. रामस्वरूप चतुर्वेदी, कविता यात्रा : रत्नाकर से रघुवीर तक, पृ॰ 108
18. विजयबहादुर सिंह, दुष्यंतकुमार रचनावली-दो, पृ॰ 147
19. विजयबहादुर सिंह, दुष्यंतकुमार रचनावली-दो, पृ॰ 199
20. दुष्यंतकुमार, सूर्य का स्वागत, पृ॰ 42
21. वही, पृ॰ 68

द्वारा श्री आर॰ के॰ श्रीवास्तव
श्रीगांधी आश्रम, वी॰सी॰एस॰जी॰ मार्ग
श्रीनगर (पौड़ी-गढ़वाल) उत्तराखंड 246174

मूल्यबोध और समकालीन हिंदी-साहित्य

प्रा॰ डॉ॰ अशोक द्रोपद गायकवाड

'मूल्य' शब्द संस्कृत की 'मूल' धातु में 'यत' प्रत्यय लगाने से बना है, जिसका अर्थ 'कीमत' या 'मजदूरी' होता है। वस्तुतः 'मूल्य्' अँग्रेजी के 'वैल्यु' शब्द का पर्याय है। 'वैल्यु' शब्द लैटिन भाषा के 'वैलीरी' शब्द से बना है, जिसका अर्थ अच्छा या सुंदर होता है। इसकी सामान्य परिभाषा यह बनती है कि 'जो कुछ भी इच्छित या वांछित है, वही मूल्य है।'[1] इसी कारण कुछ विद्वान 'वैल्यु' शब्द के लिए संस्कृत के 'इष्ट' शब्द को समानार्थी रूप में प्रयुक्त करना चाहते हैं। मूल्य मानव जीवन में कई प्रकार से कार्यान्वित होते हैं। जैसे–वैयक्तिक, पारिवारिक, सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक आदि।

मनोविज्ञान तथा समाजशास्त्री 'सहज ज्ञान और इच्छा' को आधार बनाकर ही मूल्य शब्द की व्याख्या प्रस्तुत करते हैं। वे लक्ष्य, आदर्श और प्रतिमान की संजीवित समग्राकृति की मनोग्रंथी को ही मूल्य कहते हैं। उनके अनुसार अभिवृत्तियों का आंतरिक स्वरूप ही मूल्य है।[2] महादेवी वर्मा जी ने मूल्य को परिभाषित करते हुए लिखा है कि 'वास्तव में थोड़े से सिद्धांत में जो मनुष्य को मनुष्य बनाते हैं, हम उन्हीं को जीवनमूल्य कहते हैं। सिद्धांत शब्द मानवोचित आदर्शात्मक कृत्यों की ओर संकेत करता है। अतरू सदाचरण तथा सद्गुण स्वयं ही मूल्य को निरूपित एवं उद्घाटित कर देते हैं। गुण स्वयं में मूल्यवान होने से मूल्य शब्द का ही समानार्थक बन जाता है।'[3]

'मूल्य' वास्तव में मानव जीवन के दिशा निर्देशक ही है। प्रसिद्ध समाजशास्त्री वुडस् के अनुसार, 'मूल्य दैनिक जीवन में व्यवहार को नियंत्रित करने के सामान्य सिद्धांत है। मूल्य न केवल मानव व्यवहार को दिशा प्रदान करते हैं, बल्कि वे अपने आप से आदर्श और उद्देश्य भी है।'[4] रामधारीसिंह दिनकर के अनुसार, 'मूल्य आचरण के सिद्धांतों को कहते है। मूल्य वे मान्यताएँ हैं, जिन्हें मार्गदर्शक ज्योति मानकर सभ्यता चलती रही है और जिनकी उपेक्षा करनेवालों को परम्परा उच्छृंखल या बागी कहती है।'[5]

भारतीय संस्कृति में जीवन को श्रेष्ठ बनाने के लिए पुरुषार्थों (मूल्यों) की रचना की है। पुरुषार्थ का सामान्य अर्थ है–मानव के लिए ऐसे उचित कर्त्तव्यों का पालन करके वह स्वयं को सुखी बनाता है। ये पुरुषार्थ हैं–धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष। 'मूल्य' शब्द का पर्यायवाची शब्द 'पुरुषार्थ' रहा है। बाबू गुलाबराय के शब्दों में, 'धर्म में सामाजिक नैतिक मूल्य आ जाते हैं, अर्थ का संबंध भौतिक मूल्यों से है, काम में सौंदर्य और कला-संबंधी सभी मूल्य सम्मिलित है और मोक्ष में आध्यात्मिक मूल्य आ जाते हैं। आध्यात्मिक मूल्य भौतिक मूल्यों से ऊँचे अवश्य हैं, किंतु उनकी उपेक्षा नहीं करते।'[6]

मूल्य मानव-जीवन में कई प्रकार से कार्यान्वित होते हैं। जैसे–वैयक्तिक, पारिवारिक,

सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक आदि। इन जीवन मूल्यों से मानव को सुख, शांति मिलती है। मूल्य का अर्थ है जीवन-दृष्टि या स्थापित वैचारिक इकाई। विचार तो समय के साथ बदलते रहते हैं, इसलिए मूल्यों को दो वर्गों में बाँटा जा सकता है. शाश्वत और सामयिक। सामयिक मूल्यों में समय के साथ परिवर्तन होता रहता है। आज समय की रफ्तार तेज हो गई है और इसी के साथ इन मूल्यों में भी तेजी से परिवर्तन हो रहा है। परिणामस्वरूप इसका असर धीरे धीरे शाश्वत मूल्यों पर भी पड़ रहा है जो इतनी धीमी रफ्तार से होता है कि इन बदलावों को महसूस करने में लम्बा समय लगता है।[7] साहित्यकार अपने युग का प्रतिनिधि होता है। वह अपने युग की सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक परिस्थितियों से प्रभावित होता है। अत: उसकी कृतियों में युगीन परिस्थितियों की स्पष्ट छाप रहती है। समकालीन हिंदी साहित्य में अत्यधिक उग्रता और निर्ममता और यथार्थ की क्रूरता की प्रवृतियाँ दृष्टिगोचर होती हैं।

जीवन, साहित्य और समाज–ये तीनों तत्त्व परस्पर अंतरंग रूप से जुड़े हुए हैं। जीवन की सुख-दु:खभरी नाना अनुभूतियों को लेकर साहित्य में शृंगार, हास्य, करुण आदि नव रसों की अवधारणा की गई है। साहित्य शास्त्रियों ने अपनी रचनाओं में जीवन का तात्त्विक विश्लेषण किया है। साहित्य जब जीवन-धर्मी होता है, तब पाठक और श्रोता के हृदय को विशेष रूप से स्पर्श करता है। साहित्यिक कृतियों में रचनात्मक तत्त्व यदि सकारात्मक रूप में गर्भित हो, तो समाज पर अनुकूल और स्वस्थ प्रभाव अनुभूत होता है। सत्पथ में आगे बढ़ने के लिए उत्साह और प्रेरणा देना लेखक का धर्म है। प्राणिजगत् में मंगलकारक तत्त्व जीवनधर्मी चिंतन का परिप्रकाश करता है। भारतीय साहित्य में 'उत्तिष्ठत, जाग्रत, प्राप्य वरान् निबोधत', 'असतो मा सद्गमय, तमसो मा ज्योतिर्गमय, मृत्योर्मा अमृतं गमय' इत्यादि उपनिषदीय वाणी मनुष्य-जीवन को संयत एवं शांतिमय बनाने में सहायता करती है। वर्त्मान के कंप्यूटर युग में सारा विश्व एक परिवार-सा बन गया है। महापुरुषों की 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की भावना साकार होने लगी है। इसी परिवेश में समाज और मातृभूमि के उत्कर्ष हेतु साहित्यकारों के युगानुरूप रचनात्मक अवदान सर्वथा स्वागतयोग्य एवं अपेक्षित हैं। प्रतिभाशाली व्यक्तिगण विविध क्षेत्रों में कृतित्व अर्जन करके देश के गौरव बढ़ाएँ। कलम और कदम साथ-साथ आगे चलें। विश्व-नीड में मानवता का सौरभ वितरण करना जीवन का ध्येय बने। विश्वबंधुता, मैत्री, प्रेम और शांति की पावन धारा सभी के हृदय को रसाप्लुत एवं आनंदमय करे।

परिवार के दायरे से बाहर निकलकर मनुष्य व्यापक समाज में आता है। ग्राम, प्रांत, देश सब उन व्यापक समाज के घटक हैं। अतरू साहित्य समाज का दर्पण है। उपनिषदों के 'सत्यम वद' 'धर्मंचर' से लेकर कबीर तथा तुलसीदास से लेकर रहीम के नीति काव्य तक व्याप्त नीति साहित्य मानव मूल्यों की प्रतिष्ठा का प्रत्यक्ष प्रयास है। आधुनिक साहित्य में 'मूल्य' शब्द का प्रयोग वैयक्तिक, सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक तथा सांस्कृतिक स्तर का संपूर्ण मानव व्यवहार के मानदंड के रूप में किया जाता है। 'मूल्य' शब्द का आवश्यकता, प्रेरणा, आदर्श, अनुशासन, प्रतिमान आदि अनेक अर्थों में प्रयोग होता है। आज मनुष्य पुराने विचारों को काल बाह्य समझने लगा है, प्राचीन मूल्य अस्वीकृति हो रहे हैं और नए-नए मूल्य स्वीकार किए जा रहे हैं।

साहित्य पाठकों को जीवन के यथार्थ से जोड़ता है और नैतिक मूल्यों के प्रति आस्था उत्पन्न करता है। 'सहितस्य भावरू इति साहित्यम्श्' इसके अनुसार साहित्य में हित की भावना

का होना अनिवार्य है। साहित्य की पहचान का वास्तविक आधार आज भी मानव-मूल्य ही है। साहित्य जो मानवीय संस्कृति, सभ्यता एवं व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति है। साहित्य और जीवन मूल्यों का शाश्वत संबंध है। साहित्यकार का उद्देश्य कृति के द्वारा आनंद की सृष्टि तथा समाज मार्गदर्शक के रूप में होता है। डॉ॰ जगदीशचंद्र गुप्त का मत है, 'कला और साहित्य दोनों एक प्रकार से जीवन का ही परिविस्तार करते हैं, मानव मूल्यों की स्थापना साहित्यकार से इस बात की अपेक्षा रखती है कि वह साहित्यिक मूल्यों को भी उतना ही समादर प्रदान करे जितना मानव-मूल्यों की, क्योंकि तत्त्वतरू दोनों एक ही हैं।'[8]

साधरणतया मूल्य वे होते हैं, जो सदियों से समाज में बहुजन हिताय के रूप में कल्याणकारी भावना के साथ पूरी निष्ठा व भावना के साथ चलते आ रहे हों। ऐसे मूल्य ही इतिहास में गांधी और बुद्ध एवं अंबेडकर पैदा करते हैं। अतीत की बात करें तो जीवन मूल्यों की परंपरा वैदिककाल से ही प्रारंभ हो जाती है। वेद मूल्यों की ही बात करते हैं, और ये मूल्य एकपक्षीय नहीं हैं। जीवन, रिश्ते-नाते, संबंध, साहित्य, कला, संगीत, विज्ञान, यौवन, विवाह, प्रेम, राष्ट्र, सभी के अपने-अपने मूल्य हैं और ये मूल्य समग्र रूप में जीवन मूल्यों को प्रभावित करते हैं।[9]

जीवन मूल्य ही जीवन की सार्थकता है। चाहे वे पारंपरिक हों या तात्कालिक। वैश्वीकरण एवं भौतिकता के बढ़ते इस युग में जीवन मूल्यों पर गाँधी जी का कहना था कि 'मैं नहीं चाहता हूँ कि मेरा घर चहारदीवारी व खिड़कियों में कैद हो। मैं चाहता हूँ कि दुनिया की सभी सस्कृतियों की हवाएँ मेरे घर में स्वाभाविक रूप में आए। परंतु मैं यह भी चाहता हूँ कि हवाओं के थपेड़ों से मेरे पैर न उखड़ें और मैं अपनी जमीन पर अडिग खड़ा रहूँ! अर्थात हमारे जीवन मूल्य सुरक्षित रहें तभी हम भौतिकता एवं उत्तरोत्तर विकास की बात सोच सकते हैं।'[10]

साहित्यिक या कलात्मक निर्मिति के अंतर्गत साहित्य के कलात्मक मूल्यों की खोज तथा संवर्धन किया जाता है। साहित्य हमारे अव्यक्त भावों को व्यक्त करता है। उसमें जीवन के विविध रूप हमारे सामने आते हैं। साहित्य का आधार मनुष्य और उसके अपने यथार्थ के बीच जीवित संबंधों में है। साहित्य और मूल्य एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। साहित्य का संबंध व्यक्तिगत रूचि से न होकर सामाजिक, आर्थिक, राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय व्यवस्था से होता है। वही जीवन का साहित्य कहलाता है। 'हितेन सह सहितं' कहकर साहित्य शब्द के व्याख्याकारों ने उसमें स्वयं कल्याण भावना की प्रतिष्ठा की है। यदि समाज न होता तो साहित्य भी नहीं होता। यदि साहित्य होगा तो समाज भी होगा। समष्टि ही साहित्य में अभिव्यंजित है। अत: मानव, साहित्य और समाज के बाहर जी नहीं सकता। साहित्य जिन मानव मूल्यों को ग्रहण कर उनके स्वरूप को अभिव्यक्त करता है, वे साहित्यिक मूल्य कहलाते हैं। मानव मूल्य एवं साहित्यिक मूल्य वस्तुत: एक ही हैं। मूल्य समाज की मान्यताओं और धारणाओं के अनुसार बनते-मिटते और बदलते रहते हैं, किंतु शाश्वत मूल्य न कभी बदलते हैं और न मिटते हैं।

संदर्भ

1. द सोशिअल स्ट्रक्चर ऑफ वैल्युज, आर॰ के॰ मुखर्जी, पृ॰ 21
2. हिंदी कहानी में जीवन मूल्य, डॉ॰ रमेशचंद्र लवानिया, पृ॰ 1
3. रामचरितमानस में जीवन मूल्य, डॉ॰ अमिता रानीसिंह, पृ॰ 28
4. समाजशास्त्र विवेचन, नरेंद्रकुमार सिंधी, पृ॰ 29

5. आधुनिक बोध, रामधारीसिंह दिनकर, पृ॰ 28
6. अध्ययन और आस्वादन, गुलाबराय, पृ॰ 6-7
7. http://rajendrarmishra.blogspot.in/2013/11/blog.post_21.html
8. http://www.deshbandhu.co.in/newsdetail/5576
9. http://www.apnimati.com/2011/06/blog.post_6554.html
10. http://www.rachanakar.org/2009/07/blog.post_1541.html

सहायक प्राध्यापक, हिंदी विभाग,
न्यू आर्टस, कॉमर्स एंड साइंस कॉलेज,
अहमदनगर 414001
मो॰ 09822941330
ईमेल- ashok.gaikwad2010ègmail.com
ashok_gaikwad2009èredffimail.com

पुणे की हिंदी प्रचार संस्थाएँ : एक मूल्यांकन

शेख शिराज हसन, शोधार्थी
हिंदी विभाग,
पुणे विश्वविद्यालय, पुणे

प्रास्ताविक

हिंदी हमारे देश की वह एकमात्र भाषा है, जो संपूर्ण देश को एकसूत्र में बाँधकर रखने की क्षमता रखती है। सदियों से यह जनभाषा, आम बोलचाल की भाषा और संपर्क भाषा के रूप में विद्यमान रही है। लगभग 1000 वर्ष पुरानी इस भाषा का साहित्य समृद्ध तो है ही, साथही इस भाषा में पनपे साहित्य की मौलिकता सर्वविदित है। स्वतंत्रता संग्राम की प्रमुख भाषा भी हिंदी ही रही है। देश के एकत्व को ध्यान में रखते हुए महात्मा गांधीजी ने हिंदीतर प्रदेशों में हिंदी के प्रचार-प्रसार की योजना बनाई और अपने पुत्र देविदास गांधी को प्रत्यक्षत: मद्रास भेजा। इसके अतिरिक्त अन्य हिंदीतर प्रदेशों में हिंदी के प्रचार कार्य हेतु 'राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा' की स्थापना की गई। इसी समय महाराष्ट्र में हिंदी के प्रचार-प्रसार का कार्य प्रारंभ हो चुका था। इस कार्य में महाराष्ट्र के पुणे नगर की अहम भूमिका दिखाई देती है। 'हिंदी प्रचार संघ', 'महाराष्ट्र राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, पुणे' और 'महाराष्ट्र राष्ट्रभाषा सभा, पुणे' आदि संस्थाओं का इस क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण योगदान दिखाई देता है। अत: इन संस्थाओं के हिंदी प्रचार-प्रसार के योगदान को निम्नांकित रूप में देखा जा सकता है–

1. **हिंदी प्रचार संघ**

21 जून 1934 को जबकि महाराष्ट्र में वर्धा समिति की स्थापना नहीं हुई थी, पुणे के 'तिलक स्मारक मंदिर' में राष्ट्रपिता म॰ गांधीजी के कर-कमलों से 'हिंदी प्रचार संघ' की स्थापना हुई। संस्था प्रारंभ में 'दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा, मद्रास' की परीक्षाओं का आयोजन करती थी। सन् 1937 से 'राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा' और 'हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग' की परीक्षाओं का आयोजन करने लगी।

परीक्षा आयोजन, चर्चासत्र, ग्रंथालय, पुस्तक बिक्री आदि के माध्यमों से संस्था का प्रचार कार्य होता रहा है। प्रारंभ में संस्था ने पुणे के विभिन्न स्थानों पर हिंदी वर्ग चलाए। विविध स्थानों पर हिंदी वर्ग चलाने के कारण पुणे शहर में हिंदीमय वातावरण होने लगा। संघ से जुड़े प्रचारक निस्वार्थ भाव से एवं निर्वेतन हिंदी प्रचार कार्य करते थे। 'हिंदी प्रचार संघ' के कार्यवृत्त को डॉ॰ केशव प्रथमवीर जी ने इस प्रकार उद्घाटित किया है–'हिंदी अध्ययन-अध्यापन के लिए इस संस्था ने पुणे में एक अपूर्व उत्साहवर्धक वातावरण तैयार किया। इसने हजारों व्यक्तियों को हिंदी सिखाई जिनमें बहुत से प्रामाणिक प्रचारक बने।'[1] इससे स्पष्ट होता है कि 'हिंदी प्रचार संघ' पुणे

की प्रथम हिंदी प्रचारक संस्था है जिसने प्रथम बार हिंदी प्रचार-प्रसार की दृढ़ नींव रखी।

2. **महाराष्ट्र राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, पुणे**

सन् 1936 में वर्धा समिति की स्थापना के उपरांत आ॰ काकासाहेब कालेलकर और स्व॰ शंकरराव देव ने राष्ट्रभाषा के प्रचारार्थ महाराष्ट्र का परिभ्रमण किया और 'अखिल महाराष्ट्र हिंदी प्रचार समिति, पुणे' की स्थापना की। इसके प्रथम अध्यक्ष स्व॰ शंकरराव देव थे और मंत्री संचालक के रुप में नानासाहब धर्माधिकारी की नियुक्ति हुई। सन् 1940 में संस्था का नाम 'महाराष्ट्र राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, पुणे' रखा गया। सन् 1945 में संगठन विषयक मतभेदों के कारण कुछ पदाधिकारियों ने वर्धा समिति से अपना संबंध तोड़कर स्वतंत्र रूप से कार्य करने की घोषणा की और 'महाराष्ट्र राष्ट्रभाषा सभा, पुणे' की स्थापना हुई। इस पर वर्धा समिति के मंत्री भदंत आनंद कौसल्यायन ने 8 नवंबर 1945 को समिति का पुनर्गठन किया और तब से आज तक समिति, वर्धा समिति के अंतर्गत कार्य करती है। समिति के उद्देश्य इस प्रकार हैं-

उद्देश्य

1. भारतीय संविधान की धारा 343 और 351 के अनुसार भारत गणराज्य द्वारा स्वीकष्त राष्ट्रलिपि देवनागरी में लिखी जाने वाली राष्ट्रभाषा हिंदी का प्रचार-प्रसार करना, साथ ही राष्ट्रीय एकात्मता बढ़ाने के लिए अन्य उपक्रमों का संयोजन करना।
2. हिंदीभाषा के साथ अन्य भारतीय भाषाओं के संबंधों को विकसित करने का विविधांगी प्रयास करना।
3. हिंदी भाषा एवं् साहित्य की अभिवृद्धि के लिए यथासंभव प्रयास करना।
4. राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा के परीक्षा केंद्रों, प्रचारकों तथा परीक्षार्थियों की संख्या में वृद्धि करने का निरंतर प्रयत्न करना और परीक्षाओं के लिए अध्ययन-अध्यापन की कक्षाओं का प्रबंध करना और कराना।
5. साक्षरता और प्रौढ़ शिक्षा का प्रबंध करना।[2]

कार्यक्षेत्र :

महाराष्ट्र के प्रमुख तेरह जिलों में समिति की जिला समितियाँ कार्यरत है(जिनमें-1. जलगांव 2.धूलिया 3.नंदूरबार 4.नासिक 5.अहमदनगर 6.पुणे 7.सातारा 8.सांगली 9.सोलापुर 10. कोल्हापुर 11.सिंधूदुर्ग 12.रत्नागिरी 13.रायगड़ आदि प्रमुख हैं।

कार्यप्रवृत्तियाँ :

समिति शुरू से ही हिंदी के प्रचार-प्रसार में सहायक कार्यक्रमों का संचालन करती रही है। इन कार्यप्रवृत्तियों को निम्नानुसार देखा जा सकता हैं-

1. **परीक्षा आयोजन**

समिति निरंतर रूप से सन् 1937 से वर्धा समिति के अधीन रहकर हिंदी परीक्षाओं का आयोजन करती है, जो क्रमवार इस प्रकार हैं-1.शुद्ध हिंदी सुलेखन परीक्षा 2.राष्ट्रभाषा प्राथमिक परीक्षा 3.राष्ट्रभाषा प्रार्भिक परीक्षा 4.राष्ट्रभाषा प्रवेश परीक्षा 5.राष्ट्रभाषा परिचय परीक्षा 6.राष्ट्रभाषा कोविद परीक्षा 7.राष्ट्रभाषा रत्न परीक्षा 8.राष्ट्रभाषा आचार्य परीक्षा आदि।

शिक्षक प्रचारकों की नियुक्ति करने हेतु समिति द्वारा सन् 1947 में 'शिक्षक सनद पाठयक्रम' चलाया गया। यह बी.एड के समकक्ष था। महाराष्ट्र के दूरवर्ती प्रदेशों में इस पाठयक्रम

प्राप्त शिक्षकों की सहायता से हिंदी के प्रचार-प्रसार का कार्य होता रहा है। समिति के 'तुलसी महाविद्यालय' में समिति की परीक्षाओं का संचालन होता रहा है। समिति में अध्ययन कक्ष की सुविधा उपलब्ध है, इसी विभाग में सांस्कष्टतिक विभाग भी कार्यरत है। सांस्कष्टतिक विभाग द्वारा नाटक, एकांकी, निबंध, काव्यवाचन और समूहगीत-गायन आदि कार्यक्रमों का प्रस्तुतिकरण होता रहता है। समिति के नाट्याभिनय विभाग द्वारा- 'अमावस की रात', 'रिर्पाटर', 'मीना कहां है', 'भोर का तारा', 'देवता', 'शारदिया' आदि नाटक खेले गए हैं। इसी सांस्कष्टतिक विभाग में महापुरुषों, साहित्यकारों की जयंतियाँ एवं् पुण्यतिथियाँ मनाई जाती हैं। गणेशोत्सव, दीपावली, मकरसंक्रांत आदि उत्सव तथा स्नेह-मिलन, प्रचार शिविर, साहित्यिक गोष्ठियाँ, हिंदी सम्मेलन, हिंदी-अहिंदी साहित्यकारों के सत्कार, पुस्तक लोकार्पण समारोह आदि का आयोजन होता रहता है। समिति द्वारा 'अखिल भारतीय राष्ट्रभाषा प्रचार सम्मेलन का तीसरा अधिवेशन' सन् 1951 में संपन्न हुआ था। भारत सरकार के तत्कालीन मंत्री श्री न.वि. काकासाहब गाड़गीळ उद्घाटक थे और अध्यक्ष स्थान पर हिंदी के प्रसिद्ध आलोचक श्री वियोगीहरि थे। इस अधिवेशन में आ. क्षितिमोहन सेन को 1501 रु का 'म. गांधी पुरस्कार' एवं् ताम्रपट देकर सम्मानित किया गया। सम्मेलन में लगाई गई पुस्तक प्रदर्शनी अविस्मरणीय थी।

प्रकाशन :

समिति ने शुरू से ही अनेक पुस्तकों, स्मरणिकाओं, पत्रिकाओं का प्रकाशन किया है। समिति के पूर्व संचालक स्व. पं.मु. डांगरे जी के कार्यकाल में 'बातचीत', 'बापू की बाते', 'अमावस की रात', आदि पुस्तकों का प्रकाशन हुआ है। समिति की ओर से 'अमावस की रात' (महाराष्ट्र राज्य सरकार द्वारा मराठी नाटक 'अशीच एक रात्र येते') का हिंदी अनुवाद हुआ है। इन्हीं के कार्यकाल में महाराष्ट्र राज्य के स्कूलों के लिए 'जयभारती पाठशाला' पुस्तक संपादित की गई थी। हिंदी के प्रचार-प्रसार में साहित्यिक पत्रिकाओं के महत्व को ध्यान में रखकर स्व. पं.मु.डांगरे के संपादकत्व में 'जयभारती' पत्रिका का प्रकाशन सन् 1947 से होता था। धनाभाव के कारण यह पत्रिका बंद हुई और वर्तमान संचालक श्री ज.ग. फगरे के संपादकत्व में सन् 2010 से 'समिति संवाद' नाम से यह पत्रिका निरंतर रूप से निकलती है। इसके अतिरिक्त जून 2011 को स्मरणिका 'अमृतकुंभ' का प्रकाशन समिति की ओर से किया गया। इस प्रकार समिति द्वारा संपादित हिंदी पुस्तकों का हिंदी के प्रचार-प्रसार में महत्वपूर्ण योगदान दिखाई देता है।

आनंद वाचनालय :

समिति में 'आनंद वाचनालय' स्थित है। इसमें नियमित रूप से हिंदी, मराठी के 20 समाचार पत्र और36 साहित्यिक पत्रिकाएँ नियमित रूप से आती रहती है। समिति में एक समृद्ध ग्रंथालय विद्यमान है। 'केंद्रीय सरकार के अनुदान-योजना के अंतर्गत इस ग्रंथालय की स्थापना सन् 1961 में की गई है।'[3] इसे 'राष्ट्रभाषा ग्रंथालय' और 'पुरुषोत्तम ग्रंथालय' के नाम से जाना जाता है। हिंदी अध्ययनार्थी, अध्यापक वर्ग और शोधार्थी इससे लाभान्वित होते हैं। इसमें दुर्मिल ग्रंथ, शोधप्रबंध, उपन्यास, कहानी, निबंध, नाटक, एकांकी, आलोचना, कविता, यात्रासाहित्य, संस्मरण, रेखाचित्र, धार्मिक ग्रंथ आत्मकथा और जीवनी आदि विविध विधाओं की हिंदी, मराठी और अंग्रेजी माध्यम की पुस्तकें संगृहीत की गई है। आज कुल मिलाकर इस ग्रंथालय में 6586 पुस्तकें उपलब्ध हैं।

निष्कर्ष

समिति की विभिन्न कार्य प्रवृत्तियों और कार्य विस्तार को देखते हुए यह ज्ञात होता है कि स्वतंत्रतापूर्व काल से कार्यरत इस संस्था का हिंदी के प्रचार-प्रसार में सराहनीय कार्य रहा है।

महाराष्ट्र राष्ट्रभाषा सभा, पुणे

22 मई 1937 को महाराष्ट्र में 'अखिल महाराष्ट्र हिंदी प्रचार समिति' की स्थापना की गई। इसी संस्था के स्व. शंकरराव देव, स्व. दत्तो वामन पोत्दार एवं् स्व. गो.प.नेने आदि ने सन् 1945 में 'महाराष्ट्र राष्ट्रभाषा सभा, पुणे' की स्थापना की। 'महाराष्ट्र राष्ट्रभाषा सभा, पुणे' गांधी जी की भाषा नीति के अनुसार कार्य करने वाली महाराष्ट्र की अग्रणी संस्था है। श्रद्धेय एस.एम. जोशी और श्रद्धेय मोहन धारिया जैसे दिग्गज सभा के अध्यक्ष रह चुके हैं। हिंदी के प्रचार-प्रसार की दृष्टि से इस संस्था ने शुरू से ही अपने उद्देश्य, नीति एवं प्रेरणा आदि को स्पष्ट नियमावली में निम्नानुसार आबद्ध किया है–

उद्देश्य

(क) राष्ट्रभाषा हिंदी का प्रचार करना तथा भारतीय संविधान के 17 वें भाग में निर्णीत राजभाषा हिंदी और लिपि देवनागरी के प्रसार और विकास में सहायता करना।

(ख) उक्त राजभाषा हिंदी की पढ़ाई का प्रबंध करना।

(ग) भारत कीप्रचलित सभी भाषाओं, विशेषकर मराठी भाषा के द्वारा हिंदी के विकास में सहायता करने हेतु प्रयत्न करना, मराठी तथा भारत में प्रचलित सभी भाषाओं की पढ़ाई का प्रबंध करना, उनके माध्यम से सभी पोषक प्रवृत्तियों को चलाना तथा राष्ट्रीय एकात्मता को पुष्ट करना।[4]

उपर्युक्त उद्देश्यों की पूर्ति हेतु सभा ने अपनी नीति निर्धारित की है, जिसके तहत् महाराष्ट्र में हिंदी के प्रचार-प्रसार का कार्य होता रहता है।

नीति :

1. प्रदेशों में प्रादेशिक भाषाओं का स्थान और मान बढ़ा रहे। आंतरप्रांतीय व्यवहार के लिए राष्ट्रभाषा हिंदी का प्रयोग हो।
2. राष्ट्रभाषा प्रचार, राष्ट्र के नवनिर्माण, राष्ट्रीय तथा सांस्कष्टतिक एकता के संवर्धन का एक रचनात्मक कार्य है।
3. राष्ट्रभाषा का स्वरूप सर्वसंग्राहक हो।
4. राष्ट्रभाषा का विकास देश के प्रादेशिक भाषाओं के संपर्क और उनके विकास के साथ संपन्न होता रहे।
5. राष्ट्रभाषा के द्वारा राष्ट्रीय एकात्मता निर्माण हो।[5]

उपर्युक्त नीति-निर्देशों का पालन करते हुए सभा, महाराष्ट्र में हिंदी के प्रचार-प्रसार एवं् संवर्धन में अपनी विशेष भूमिका अदा करती रही है। इस दृष्टि से सभा द्वारा निम्नवत् कार्य-प्रवृत्तियों का आयोजन किया जाता रहा है–

हिंदी प्रचार शिक्षण :

महाराष्ट्र में हिंदी प्रचार कार्य को गति देने के लिए और हिंदी प्रचारकों की आवश्कता को ध्यान में रखते हुए सभा द्वारा 'हिंदी शिक्षक सनद' पाठ्यक्रम चलाया गया। अनेक शिक्षक

प्रचारकों की नियुक्ति की गई और इन प्रचारकों के माध्यम से पुणे, दादर, घाटकोपर, धूलिया, म्हापसा आदि जगहों पर विद्यालय खोले गए। सभा द्वारा हिंदी की अनेक परीक्षाओं का आयोजन होता रहा है, वे इसप्रकार है-

1. राष्ट्रभाषा बालबोधिनी 2. राष्ट्रभाषा प्राथमिक 3. राष्ट्रभाषा प्रवेशिका 4. राष्ट्रभाषा सुबोध 5. राष्ट्रभाषा प्रबोध 6. राष्ट्रभाषा प्रवीण 7. राष्ट्रभाषा पंडित 8. राष्ट्रभाषा पद्म 9. नागरी लिपि परिचय 10. उर्दू लिपि परिचय (पहली) 11. उर्दू लिपि परिचय (दूसरी) 12. राष्ट्रभाषा संभाषण योग्यता 13. राष्ट्रभाषा व्याख्यान योग्यता 14. अनुवाद पंड़ित द्धलिखितऋ 15. अनुवाद पंडित (मौखिक)16. राष्ट्रभाषा व्यवहार योग्यता आदि।

सभा द्वारा प्रकाशित कार्य विवरण वार्षिकी (1 अप्रैल 2011 से 31 मार्च 2012) के अनुसार इन परीक्षाओं में बैठने वाले परिक्षार्थियों की संख्या लगभग 82,198 है। इन परीक्षाओं के अतिरिक्त सभा द्वारा संस्कार परीक्षाओं का भी आयोजन किया जाता हैं। छात्रों को महापुरुषों की जीवनियों से परिचित कराना, प्रेरणा देकर संस्कारी नागरिक बनाना, इन परीक्षाओं के उद्देश्य रहे हैं।

इन परीक्षाओं के अतिरिक्त पुणे में हिंदी की दृढ़नींव रखने हेतु पुणे कैंप में ई॰ सन् 10 जून 1955 से 'सुनील राठोड पूर्व प्राथमिक विद्यालय', 'सरस्वति निकेतन हिंदी प्राथमिक विद्यालय' और 'एस॰एम॰ जोशी माध्यमिक विद्यालय' चलाए जाते हैं। इन तीनों विद्याशालाओं के एकत्रित रूप को 'राष्ट्रभाषा विद्या संकुल' के नाम से जाना जाता है। इस विद्यासंकुल के वर्तमान अध्यक्ष डॉ॰ अशोक कामत हैं। राष्ट्रीय एकात्मता और हिंदी के प्रचार-प्रसार एवं् संस्कार की दृष्टि से इस विद्या संकुल का महत्वपूर्ण स्थान है। विद्यासंकुल की गतिविधियों को देखकर जिन महानुभावों ने विद्यालय के बारे में अभिप्राय दिए हैं, उनमें युनेस्को प्रतिनिधि श्री टेरेंस लॉसन का कथन दृष्टव्य है-'भावात्मक और राष्ट्रीय एकता के संबंध में आपके प्रकल्प से परिचित हुआ। मुझे लगता है कि आप जो कार्य कर रहे है, वह निश्चित ही अत्यंत महत्त्वपूर्ण है-मात्र भारत के लिए ही नहीं, बल्कि समूचे विश्व के लिए भी।'[6]

सभा के केंद्रवर्ती कार्यालय में 'राष्ट्रभाषा महाविद्यालय' अवस्थित है। यहाँ पर सभा द्वारा आयोजित परीक्षाओं के वर्ग चलाए जाते थे। संस्था द्वारा प्रतिवर्ष हिंदी की अलग-अलग परीक्षाओं हेतु वर्षभर में कुल 37 पुरस्कार दिए जाते हैं। पुणे में हिंदी साहित्य के वातावरण की निर्मिति में सहायक 'ज्ञानदा' नामक विशेष संगोष्ठी बैठक सन् 1964 से कार्यरत है। 'ज्ञानदा' साहित्य एवं् कला मंच की स्थापना के पीछे डॉ॰ भगीरथ मिश्र, डॉ॰ प्रभुदास भूपटकर, स्व॰ हरिनारायण व्यास सभा के तत्कालीन ग्रंथपाल श्री प्रभाकर स्वामी और डॉ॰ अशोक कामत का विशेष सहयोग रहा है। लगभग 40 वर्षों से कार्यरत 'ज्ञानदा' के अंतर्गत 500 के करीब अलग-अलग कार्यक्रमों का संयोजन किया गया है। इसके आज तक के प्रमुख संयोजकों में-स्व॰ प्रभाकर स्वामी, विप्रदास, प्रा॰ शैलजा मांडके, प्रा॰ नीला महाडिक, डॉ॰ नीलिमा परदेशी के नाम अग्रणी कहे जा सकते हैं। आजकल डॉ॰ नीला बोर्वणकर यह कार्य सँभाल रही हैं। इस प्रमुख प्रवृत्ति के संचालक डॉ॰ प्रभुदास भूपटकर थे और उनके बाद प्रा॰ सु॰मो॰ शहा सर अनेक वर्षों से संचालक रहे हैं। सभा के वर्तमाण अध्यक्ष उल्लासदादा पवार और कार्याध्यक्ष डॉ॰ वीणा मणचंदा सभा की कार्य-प्रवृत्तियों का संचालन करते हैं।

सभा द्वारा अनेक प्रकार की प्रतियोगिताओं का आयोजन होता रहा है। सन् 1962 से 'अंतर्राज्यीय वक्तृत्व प्रतियोगिता', सन् 1963 से 'पश्चिम भारत हिंदी-निबंध प्रतियोगिता' और सन् 1967 से 'हिंदी एकांकी प्रतियोगिता' का आयोजन होता रहा है। सभा का एक समृद्ध ग्रंथालय है, जिसे 'केंद्रीय राष्ट्रभाषा ग्रंथालय' के नाम से जाना जाता है। इस ग्रंथालय में हिंदी की विविध विधाओं की शोधपरक और स्पर्धात्मक परीक्षाओं की पुस्तकें उपलब्ध हैं। मार्च 2012 के कार्य विवरण के अनुसार कुल 43,786 पुस्तकें इस ग्रंथालय में संगृहीत है। ग्रंथालय से जुड़े वाचनालय में हिंदी की लगभग 50 पत्रिकाएँ निरंतर रूप से आती रहती है। इस ग्रंथालय से विश्वविद्यालयीन शोधछात्र, तथा हिंदीप्रेमी लाभान्वित होते हैं। वर्तमान में ग्रंथपाल श्री प्रदीप जोशी अध्येता एवं शोधार्थियों की सेवा में कार्यरत हैं। केंद्रीय ग्रंथालय के अतिरिक्त 'स्वामी रामानंद तीर्थ हिंदी, मराठी ग्रंथालय (सेलु)', साने गुरुजी बाल ग्रंथालय (धूलिया) तथा मुंबई, नागपुर, औरंगाबाद, अहमदनगर, नांदेड, कोल्हापुर आदि प्रमुख शहरों में सभा के विभागीय ग्रंथालय विद्यमान हैं।

सभा द्वारा संचालित 'पुस्तक भांडार' लक्ष्मी पथ पर विद्यमान है। इसमें अनेक पुस्तकें उपलब्ध है। महाराष्ट्र के अनेक हिंदीप्रेमियों तथा शोधकर्ताओं को शोध-सामग्री उपलब्ध कराने में आसानी होती है।

सभा का 'प्रकाशन विभाग' भी हिंदी के प्रचार-प्रसार में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। सभा ने इस प्रकाशन विभाग द्वारा लगभग 350 पुस्तकों का प्रकाशन किया है। इन पुस्तकों के अलावा सभा द्वारा साहित्यिक एवं समीक्षात्मक मुखपत्रिका 'राष्ट्रवाणी' (द्वैमासिक) तथा 'हमारी बात' नामक मासिक पत्रिका का निरंतर रूप से प्रकाशन होता है।

इसप्रकार राष्ट्रभाषा सभा, पुणे इस संस्था का स्थापना से लेकर आज तक हिंदी के प्रचार-प्रसार में अपूर्व प्रदेय रहा है।

उपर्युक्त विश्लेषित कार्यवृतांत इस बात का प्रमाण है कि हिंदीभाषा एवं साहित्य की समृद्धि में पुणे की उपर्युक्त संस्थाएँ अग्रणी रही हैं। पुणे के लोकमान्य तिलक, वि॰ दामोदर सावरकर, गोपाल नरहरि देशपांडे, केशव वामण पेठे आदि की इन संस्थाओं की स्थापना में और हिंदी को राष्ट्रभाषा का दर्जा दिलाने के प्रयासों में महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। पुणे शहर में संचालित यह संस्थाएँ राष्ट्रभाषा प्रचार के इतिहास की ताजा याद दिलाती हैं और इस कार्य में आज भी सक्रिय हैं।

संदर्भ

1. महाराष्ट्र में हिंदी, डॉ॰ रामजी तिवारी, डॉ॰ त्रिभुवन राय, पृ॰ 201
2. 'अमृतकुंभ' स्मरणिका, संपादक, श्री ज॰ग॰ फगरे, पृ॰ 6
3. राष्ट्रभाषा विचार संग्रह, डॉ॰ न॰चि॰ जोगळेकर, पृ॰ 271
4. महाराष्ट्र राष्ट्रभाषा सभा, पुणे परिचय पत्रिका, पृ॰ 4
5. वही, पृ॰ 5
6. राष्ट्रवाणी (स्मरणिका), पृ॰ 1 अपनी ओर से

पोस्ट बोरी, तालुका खंडाला (सतारा) 415521 **(महा॰)**
मो॰ 9011444059।

'एक इंच मुस्कान' में स्त्री-पुरुष मानसिकता

डॉ॰ नीलांबिका पाटील
सहायक प्राध्यापिका
कर्नाटक कालेज, धारवाड़

राजेंद्र यादव हिंदी साहित्य के सुपरिचित ख्यातिलब्ध लेखक, कहानीकार, उपन्यासकार व आलोचक थे। नई कहानी के नाम से हिंदी कहानी में उन्होंने एक नई विधा का सूत्रपात किया। नई कहानी के कथाकार कमलेश्वर, मोहन-राकेश, शिवप्रसादसिंह, अमरकांत, मार्कंडेय, शेखर जोशी आदि लोगों ने कहानी को इतना जनप्रिय बनाया कि लगभग सभी कलाकार कहानी लेखन की ओर प्रवृत्त हुए। इस दृष्टि से नई कहानी आंदोलन का विशेष महत्त्व सिद्ध हुआ। नई कहानी का मुख्य स्वर केवल यथार्थ को अभिव्यक्ति देना ही नहीं, अपितु नए सिरे से व्यक्ति, परिवार, समाज, राष्ट्र के आपसी संबंधों को जाँचना भी है, इस समर्थ प्रयास में संलग्न नई कहानी के प्रमुख कथाकारों में से राजेंद्र यादव भी एक हैं।

उपन्यासकार मुंशी प्रेमचंद द्वारा सन् 1930 में स्थापित साहित्य पत्रिका हंस का पुन:प्रकाशन उन्होंने प्रेमचंद की जयंती पर 31 जुलाई, 1986 को प्रारंभ किया था। यह पत्रिका सन् 1953 में बंद हो गई थी। इसके प्रकाशन का दायित्व उन्होंने स्वयं लिया और अपने मरते दम तक पूरे 27 वर्ष निभाया।

28 अगस्त 1929 ई॰ को उत्तर प्रदेश के शहर आगरा में जन्मे राजेंद्र यादव ने सन् 1951 ई॰ में आगरा विश्वविद्यालय से एम॰ए॰ की परीक्षा हिंदी साहित्य में प्रथम श्रेणी में प्रथम स्थान के साथ उत्तीर्ण की। उनका विवाह हिंदी की प्रसिद्ध लेखिका मन्नू भंडारी के साथ हुआ था।

हिंदी अकादमी दिल्ली द्वारा राजेंद्र यादव को उनके समग्र लेखन के लिए वर्ष 2003-04 का सर्वोच्च सम्मान (शलाका सम्मान) प्रदान किया गया था। 28 अक्टूबर 2013 की रात्रि को नई दिल्ली में 84 वर्ष की आयु में उनका निधन हुआ।

राजेंद्र यादव एक प्रगतिशील लेखक हैं। उन्होंने अपनी रचनाओं में सामाजिक समस्याओं एवं प्रश्नों को आधुनिक जीवन की विशाल पृष्ठभूमि पर चित्रित करने का प्रयास किया है। स्वातंत्र्योत्तर युग में मानव के बनते-बिगड़ते संबंधों के अनेक पहलुओं पर विचार किया है।

राजेंद्र यादव के उपन्यासों में अधिकतर मध्यवर्ग के पात्र मिलते हैं। इनके सारा आकाश (1951), प्रेत बोलते हैं (1951), उखड़े हुए लोग (1956), कुलटा (1958), शह और मात (1959), अनदेखे अनजान पुल (1963), एक इंच मुस्कान (मन्नू भंडारी के साथ, 1963), मंत्रविद्या (1967), एक था शैलेंद्र (2007) आदि प्रमुख उपन्यास माने जाते हैं। सन् 1951 से 1967 तक साहित्य जगत में चली राजेंद्र यादव की औपन्यासिक यात्रा इंद्रधनुषी रंग लेकर उनकी

समाज-सापेक्ष अवधारणा की प्रतिध्वनि है। उनकी यात्रा को हम इस तरह से चित्रित कर सकते हैं। आज समाज रूपी 'सारा आकाश' 'उखड़े हुए लोगों' से भरा पड़ा है, आधुनिक विचारों को अपनानेवाली स्त्रियाँ 'कुलटा' के नाम से संबोधित की जाती हैं, सबको 'शह और मात' की होड़ लगी है, ऐसी भीषण स्थिति में किसी 'अनदेखे अनजान पुल' पर किसी अपने की 'एक इंच मुस्कान' पाने हेतु 'मंत्रविद्या' की भाँति चलने के लिए मानव अभिशप्त है। इनमें कहीं भी ग्रामीण जनजीवन का चित्रण नहीं मिलता है। खासकर जमीदार से किसानों का जो शोषण होता है, उसका चित्रण राजेंद्र यादव जी ने कहीं भी नहीं किया है। इसका कारण यह है कि उनके जीवन का अधिकांश समय नगर या महानगर में ही बीता है। ऐसे में केवल शहर के जीवन-विधान को ही उन्होंने अनुभव किया है। इस प्रकार राजेंद्र यादव जी ने अपने उपन्यासों में शहरी मध्यवर्गीय पात्रों को चित्रित किया है। उनमें नई पुरानी दोनों पीढ़ियों के पात्र मिलते हैं। उनमें आधुनिक विचारधारा वाले भी हैं और पुराने विचारों के पात्र भी हैं।

'एक इंच मुस्कान' राजेंद्र यादव और मन्नू भंडारी का पहला सहयोगी उपन्यास है। इस उपन्यास का कथानक स्वतंत्र रूप से श्रीमती मन्नू भंडारी का था, किंतु प्रयोग की लालसा से श्री राजेंद्र यादव व श्रीमती मन्नू भंडारी ने सम्मिलित रूप से इसकी पुनर्रचना की। यह प्रयोग इस दृष्टि से हुआ कि उपन्यास के प्रमुख पुरुष पात्र को यादव जी ने सँभाला और स्त्री पात्रों को मन्नू जी ने सँवारा है।

'एक इंच मुस्कान' एक सामाजिक उपन्यास है। इसमें तीन प्रमुख पात्र हैं। उपन्यास का नायक अमर बुद्धिजीवी वर्ग का लेखक है, जो अपनी पत्नी रंजना और पाठक मित्र अमला के संबंधों में बँटा हुआ है। इस उपन्यास में त्रिकोणीय प्रेम कहानी है। अमर अपनी धर्मपत्नी, त्यागीमयी रंजना के मुकाबले अहंभावी और धनवान अमला से अधिक प्रेम करता है। इसी के साथ अमला को वह अपनी प्रेरणा भी मानता है। इस उपन्यास की कथावस्तु में त्रिकोणीय प्रेम है। दांपत्य-जीवन के उतार-चढ़ाव आर्थिक व मानसिक विद्वताओं को अत्यधिक सुंदर ढंग से बताया गया है। संपूर्ण कथा इन तीन पात्रों के इर्द-गिर्द ही घूमता है। उपन्यास का नायक एक उभरता हुआ संवेदनशील, प्रतिभाशाली नवोदित लेखक है, जो बाह्य परिस्थितियों की अपेक्षा मानसिक धरातल पर अधिकाधिक जीवन यापन करता है। रंजना एक सीधी-सादी आत्मसमर्पित आधुनिक स्त्री है, जो अपने पति अमर से बेहद प्रेम करती है। वह अमर के लिए अपने सारे रिश्ते-नाते, यहाँ तक कि माता-पिता को भी त्यागकर, उसकी सारी सबलताओं और निर्बलताओं सहित अपनाना चाहती है। वह दिल्ली में एक महाविद्यालय में प्राध्यापिका बनकर स्वतंत्र जीवनयापन कर रही है। अमर भी रंजना को अपने व्यक्तित्व का पूरक मानता है। उसके साथ विवाह करने का भी निर्णय कर लेता है। एक बार अमर को स्कॉलरशिप से संबंधित इंटरव्यू के लिए कलकत्ता जाना पड़ता है। वहाँ अमर की मुलाकात अपने उपन्यास की पाठक मित्र अमला से होती है। अमला को देखकर अमर आश्चर्यचकित हो जाता है। अमला कालेज में पढ़नेवाली लड़की नहीं, बल्कि पति द्वारा त्यक्त उच्चवर्ग की विडंबना से प्रताड़ित अहमन्या नारी है। वह अमीर बाप की बेटी और कई कंपनियों की मालकिन है। इतने ऐश्वर्य के बावजूद भी अमला का सादगीपूर्ण रहन-सहन अमर को विचित्र लगता है। कई रईस इस पर आकर्षित होते हैं, मगर वह अमर के लेखन के लिए प्रेरणा बनकर आती है। साथ ही अपनी मुस्कान से उसे अपनी ओर

आकर्षित करती है। वह अमर से अपनी कला के साथ किसी भी प्रकार का समझौता न करने का वचन भी लेती है। तब अमला स्वयं अपना परिचय देते हुए कहती है–'मैं परित्यक्ता हूँ, पति द्वारा त्यागी हुई। विवाह के एक साल बाद मैं यहाँ लौट आई। जिस स्त्री को पति ने छोड़ दिया हो, उसे किसलिए रंग-बिरंगे कपड़े पहनना, सजना, सँवरना? इसलिए मैं नहीं पहनती।'

अमर अपने घनिष्ठ मित्र टंडन और मंदा भाभी के कहने पर रंजना से विवाह कर लेता है। रंजना विवाह के बाद अमर की सारी आदतें बदल देती है। वह स्वयं एक कालेज में नौकरी करती है। दोनों मिलकर एक फ्लैट भी खरीद लेते हैं, लेकिन अमर अपने वैवाहिक जीवन से कभी सुखी नहीं रह पाया। उसे बार-बार अनुभव होता रहा कि उसका लेखक कहीं दब गया है। उसके मानसिक अंतर्द्वंद्व में जहाँ एक ओर रंजना उसका समर्पण प्रेम था, तो दूसरी ओर अमला की मुस्कान जो उसे मुक्त होने की प्रेरणा देती थी।

अमर को लगता है कि उसकी पत्नी बाहर जाकर काम करती है और उसकी अपनी कोई नौकरी नहीं है। अमर सोचता है बाहर जाकर कमाने के कारण रंजना की स्थिति पुरुष जैसी है और घर में ही रहने के कारण उसकी अपनी स्थिति औरत की तरह है। पत्नी की कमाई पर घर बैठे खाना उसके अहं को स्वीकार नहीं होता। वह कहता है–'मैं जानता हूँ रंजना, मेरे लिए तुम अपना सर्वस्व भी दे सकती हो, पर कभी मेरी ओर से भी सोचा है सारी बात को? तुम कमाओगी, काम करोगी और मैं बैठा-बैठा खाऊँगा... इसे मेरा अहं कैसे स्वीकार करेगा?'[1]

एक दिन अमर के नाम पर अमला का एक पत्र आता है, जिसमें उसने आनेवाली शरद पूर्णिमा की रात को अमर के साथ बिताने की इच्छा प्रकट की थी। भूल से उस पत्र पर रंजना की नजर पड़ जाती है।

अमर और अमला दोनों साथ रहने लगते हैं। इस स्थिति को रंजना बर्दाश्त नहीं कर पाती है। वह अमर से झगड़ती है। रंजना पर संशय का भूत सवार हो जाता है और वह सोचती है कि वे दोनों समदु:खी हैं। रंजना को लगता है कि अमर उसके साथ छल कर रहा है। पति प्रेम के अभाव में रंजना अंदर ही अंदर घुटती रहती है। उसे लगता है कि उसकी सारी दुनिया ही लुट गई है। रंजना चाहती है कि उसके और उसके पति के बीच कोई न आए। जब अमला आकर उसके प्यार को बाँटना चाहती है, तो रंजना पति को ही छोड़कर चली जाती है और दूसरी शादी कर लेती है। अमर कई बार यह तय करता है कि अब वह केवल रंजना का ही पति बनकर रहेगा। वह अपना घूमना-फिरना, लिखना-पढ़ना सब-कुछ छोड़ देगा, कहीं नौकरी कर लेगा, लेकिन वह ऐसा नहीं कर पाता। अमला का मन पुरुष मित्रों की ओर दौड़ता अवश्य है, मगर वह अपने-आप पर असाधारण रूप से काबू कर लेती हैं अत: अमर को वह भी नहीं मिलती है।

उधर कैलाश नामक व्यक्ति अमला से शादी करने के लिए तैयार है। वह अमला से बेहद प्यार करता है, लेकिन अमला किसी के साथ जुड़कर रहना नहीं चाहती। वह हर बार नए-नए दोस्त जोड़ती चली जाती है। किसी एक पुरुष से बँधना नहीं चाहती और वह बंधन उसके अहं को स्वीकार नहीं है। वह पुरुष के समक्ष निरीह व दुर्बल होकर नहीं रहना चाहती। विवाह उसके लिए एक बंधन, एक फंदा है।

अमला अपनी जिम्मेदारी किसी के ऊपर डालना नहीं चाहती। वह कहती है–'अमला कोई साधन नहीं बनना चाहती। वह साध्य बनना चाहती है। उसका जीवन उन्मुक्त धारा के समान

है। वह सिर्फ बहना चाहती है। चाहे अमर हो या कैलाश या माथुर हो। कोई भी उसकी बहती जीवनधारा को रोक नहीं सकता।' उसका यह कथन उसकी मनस्थिति को खोलता है, तो दूसरी तरफ रंजना पति को सुखी देखने के लिए अमर को त्यागकर चली जाती है और दूसरी शादी भी कर लेती है। इधर यह समाचार मिलता है कि अमला की मौत हो गई है। दोनों अमर के लिए सपना बनकर रह जाती हैं। अमर एकाकी जीवन-यापन करने के लिए बाध्य हो जाता है।

इस उपन्यास में रंजना और अमला दोनों परस्पर विरोधी मानसिकता वाली पात्र हैं। रंजना शक की पूर्व धारणाओं से ग्रस्त महिला है। अमला अमीर होते हुए भी मानसिक एवं शारीरिक रूप से अतृप्त अकेलेपन की पीड़ा को समेटकर जीनेवाली महिला के रूप में चित्रित हुई है। इस उपन्यास का नायक अमर बुद्धिजीवी वर्ग का लेखक है। पत्नी रंजना और पाठक मित्र अमला के संबंधों बँटा हुआ है। दोहरे संबंधों की वजह से अमर को अंत में अकेलेपन के कारण विवशतापूर्वक जीवन बिताना पड़ता है। वास्तविक जीवन में उसे असफलता ही मिलती है। उसे किसी-न-किसी स्तर पर थोड़ा-सा समझौता कर लेना अनिवार्य है। इसका आभास यह उपन्यास देता है। साथ ही लेखक के खंडित व्यक्तित्व का परिचय भी मिलता है।

अमर अपने-आपमें उलझा हुआ, अतीत की पर्तों को खोलता हुआ, दो टुकड़ों में बँटा हुआ है। निश्चय ही वह खंडित व्यक्तित्व का प्राणी है और उसका आंतरिक व्यक्तित्व दो भागों में बँटा हुआ है। एक के प्रति वह अपेक्षा धारण नहीं कर सकता तो दूसरे की पुकार को भुलाना उसके वश के बाहर है। रंजना के साथ सब कुछ है—सहानुभूति, संस्कार, समाज और स्वयं अमर की नैतिक चेतना। अमला के पास कुछ भी नहीं है—सिवाय एक प्रवंचक मुस्कान कें यही मुस्कान मर्यादाबद्ध अभिव्यक्ति ही अमला है और मालूम नहीं यह मुस्कान है भी या नहीं। अमर के मन का भ्रम ही है।'[2]

व्यक्ति के रूप में जहाँ अमर के लिए रंजना अनिवार्य है, वहीं उसका लेखक अमला की अपेक्षा नहीं कर पाता। रंजना के प्रति उसकी निष्ठा और आत्मीयता में कहीं कमी नहीं है। फिर भी उसक अलगाव एक कटु सत्य है। जिस द्वंद्व से मुक्त होने के लिए अमर ने रंजना से विवाह किया था, वह विवाह के बाद और विकराल हो उठता है। उसकी मुक्ति-कामना बराबर चोट खाती है। जिस मुक्ति कामना के अभाव में लेखक मर जाता है उसे रंजना का साहचर्य सीमित करना चाहता है। उपास के अंत को खुला छोड़ देना दोनों उपन्यासकारों के गैर रोमांटिक नजरिए को व्यक्त करता है।[3]

उपन्यास के शुरू में समुद्र के दो रूपों का उल्लेख साभिप्राय लगता है। पुरी का उफनता हुआ समुद्र गतिशील रौद्र सौंदर्य का प्रतीक अमला के आकर्षण को व्यंजित करता है। जबकि जुहू की लहरें सरल, सौम्य तथा सागर को नैवेद्य की तरह समर्पित है, ठीक रंजना की तरह। पुरी समुद्र में जहाँ 'अप्रतिरोध निमंत्रण' है, वहीं जुहू के समुद्र में 'संयत्त समर्पण' की मुद्रा है। अमर के जीवन में ये दोनों समुद्र जो कहीं भीतर दूर-दूर के क्षितिज बहाता चला आया है और यह साग पानी का नहीं तरल अंधकार है...और यह तरल अंधकार बाहर नहीं भीतर ही कहीं दूर-दूर के क्षितिज बहाता चला आया है।'4

अमर उपन्यास का नायक है। उसका व्यक्ति खंडित, स्खलित एवं द्वंद्वमय है। अपने लेखक व्यक्तित्व को सर्वोपरि रखने की चाह उसमें इतनी प्रबल है कि उसका 'व्यक्ति' अमर

विशेष उभर ही नहीं पाता और अंत तक उसका जीवन एक दु:खमयी विडंबना बनकर रह जाता है। प्रेमी, पति, लेखक, मित्र किसी रूप में भी वह विशेष नहीं है।5

अमर का व्यक्तित्व खंडित एवं द्वंद्वमय है। अपने सृष्टा व्यक्तित्व को जीवित रखने के लिए प्रयत्नशील रहता है, लेकिन इसमें असफल हो जाता है। यहाँ तक कि प्रेमी, पति, लेखक, मित्र किसी रूप में भी सफलता मिलती है। निर्णय लेने में असमर्थ है। भावुक है, इसीलिए अंत तक अमर का जीवन दु:खमय, विडंबना बनकर ही रह जाता है।

'अमला और रंजना दोनों भिन्न स्वभाव एवं भिन्न वर्गों की दो प्रताड़ित नारियाँ हैं। अमला को उच्चवर्ग की विडंबना ने मारा था और रंजना को एक सनकी की प्रवंचना ने।'6

इसप्रकार राजेंद्र यादव का 'एक इंच मुस्कान' उपन्यास में स्त्री-पुरुष मानसिकता, आक्रोश एवं दुख का चित्रण बहुत ही सुंदर ढंग से हुआ है।

संकेत

1. एक इंच मुस्कान, राजेंद्र यादव और मन्नू भंडारी, पृ॰ 53
2. वही, पृ॰ 5
3. वही, पृ॰ 24
4. राजेंद्र यादव कथा-यात्रा, डॉ॰ वेदप्रकाश अमिताभ, पृ॰ 68
5. स्वातंत्र्योत्तर कथा लेखिकाएँ, पृ॰ 355
6. एक इंच मुस्कान, राजेंद्र यादव और मन्नू भंडारी, पृ॰ 261

बसावा शिवा चेतन
प्लॉट नं॰ 32, **दूसरा क्रास (लैफ्ट)**
जयनगर, धारवाड़-1 **(कर्नाटक)**
मो॰ 09845870759

भक्तकवि सूरदास और उनकी भक्ति-भावना

संजयकुमार

सूरदास जन्मांध थे। उन्होंने सारा जीवन कृष्णभक्ति में बिताया। वे जीवनभर अपने इष्टदेव की भक्ति में इस प्रकार रमे रहे कि उन्हें अपने कृष्ण के अलावा कोई नज़र ही नहीं आया। उनके अनुसार भवसागर को पार करने के लिए श्रीकृष्ण-रूपी नाव ही साधन है। सूरदास जी के अनुसार वे लोग परम सौभाग्यशाली हैं, जिनको नामरूपी रतन मिल जाता है। उनके भगवान बड़े दयालु हैं। भक्त उनके भगवान के पास आकर चिंतामुक्त हो जाता है तथा जन्म-मरण के बंधन से भी छूट जाता है। जीवनभर भगवत भजन का गान करके इन्होंने जो उदाहरण प्रस्तुत किया, वह भक्तिकाव्य में एक अतुल्य है।

आरंभ/भूमिका

ईश्वर के सगुण रूप के गायक महाकवि सूरदास परम वैष्णव भक्त थे। उनके साहित्य में भक्ति का विशद् निरूपण हुआ है। सूर-निरूपित भक्ति का स्वरूप परंपरागत आचार्यों की मान्यताओं एवं सनातन धर्म के लक्षणों के सर्वथा अनुकूल है। माया की विशाल वाहिनी को ध्वस्त करने के लिए तथा दुस्तर संसार-सागर को पार करने के लिए भक्ति का अत्यधिक महत्त्व स्वीकार करते हुए सूरदास कृष्णभक्ति पर अत्यधिक बल देते हैं। 'सूरसागर' में सर्वत्र कृष्णभक्ति के लिए ही उनका सर्वोपरि आग्रह दृष्टिगोचर होता है। यही कृष्णभक्ति संपूर्ण जीवन-परिधि का केंद्रबिंदु है और अपनी कृतियों में इसी को प्रस्तुत करने का उन्होंने विराट् आयोजन किया है।

सूरदास जी गोस्वामी वल्लभाचार्य के शिष्य थे। अत: इनकी भक्तिभावना अधिकांशत: वल्लभाचार्य जी के दार्शनिक सिद्धांत पर आधारित है। वल्लभाचार्य जी ने ब्रह्मा के सगुण एवं निर्गुण दोनों रूपों को स्वीकार किया है, परंतु वे निर्गुण ब्रह्मा की उपासना को सुगम एवं श्रेष्ठ मानते हैं। डॉक्टर हरबंसलाल शर्मा के शब्दों में, 'सूरदास जी की भक्ति-साधना जहाँ एक ओर भागवत की भक्ति से प्रभावित है, वहीं दूसरी ओर कवि वल्लभ संप्रदाय की मर्यादा का भी यथावत् पालन करते हैं।' सूरदास जी अपने मत को स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि 'निर्गुण ब्रह्म चिंतन का विषय हो सकता है, परंतु उसकी आराधना एवं उपासना कदापि संभव नहीं है।' निर्गुणमार्गी भक्त भी भगवान के प्रेम में तन्मय होकर उनमें क्षमा, दया, भक्तवत्सलता आदि गुणों का आरोप कर लेते हैं, किंतु अव्यक्त में आसक्त साधकों को अधिकतर कष्ट ही होता है।

सूरदास के अनुसार इस मायावी संसार से छूटने का एकमात्र उपाय हरि-भक्ति ही है। यह भक्ति स्वत: पूर्ण है। साधन नहीं, साध्य है। व्यापार नहीं, लक्ष्य है। उनके अनुसार भक्ति की प्राप्ति होना ही सब इच्छाओं की पूर्ति है। हरि का भक्त स्वयं हरि-रूप हो जाता है—वह ब्रह्मा और

महादेव से भी महान् है–

हरि के जन सब ते अधिकारी
ब्रह्मा महादेव तैं को बढ़, तिनकी सेवा कछु न सुधारी।

सर्वश्री द्वारकादास पारीख और प्रभुदयाल मित्तल के शब्दों में, 'उनके काव्य का अध्ययन करने पर ज्ञात होता है कि वह पहले भक्त हैं और बाद में कवि। अपने भगवान की भक्ति भावना में मग्न होकर उन्होंने जो कुछ गाया है, वह भक्तिकाव्य की सबसे श्रेष्ठ कृति है, इसलिए वह भक्ति-रस से ओत-प्रोत है।'

सूरदास जी के निधन से थोड़ी देर पहले गोस्वामी विट्ठलनाथ द्वारा कहे गए ये शब्द तो सूरदास को पूर्णत: भक्तकवि सिद्ध कर देते हैं। उनके अनुसार सूरदास जी भक्तिमार्ग के जहाज हैं। अब उनके जाने का समय हो गया है। उनसे जो कुछ लेना हो, ले लो।' सूर की भक्ति-भावना का सबसे बड़ा आधार पुष्टिमार्ग का सिद्धांत–भगवत अनुग्रह है। इसको आधार मानकर वे वात्सल्य, सख्य और माधुर्य भाव की अनेक पद्धतियों की भाव-व्यंजना में लीन रहे। पुष्टिमार्ग में दीक्षित होने से पहले वे विनय के पदों की रचना करते थे। सूर की भक्ति-साधना और तत्कालीन परिस्थितियों के संबंध में एक बात विचारणीय है। जहाँ सूर ने एक ओर इन परिस्थितियों के प्रति विरक्ति व्रत, पूजा, उपावास आदि से उदासीनता प्रकट की, वहीं दूसरी ओर मानव-दुर्बलताओं से समझौता भी किया, जिनका शिकार उस समय का समाज हो रहा था। सूर के काव्य में कृष्णचरित्र के विलासमय चित्र और श्रृंगाररस की भावुकता का जैसा संचार हुआ, वैसा अन्यंत्र दुर्लभ है। आचार्य द्विवेदी जी के शब्दों में, 'सूरदास ने मनुष्य की इस विफलता का कारण भजन का अभाव बतलाया है। अगर भजन न हो तो सारी विफलता सफलता में परिणत हो जाए। सूर ने वस्तुत: अपने काल की सारी विलासिता का सुंदर उपयोग किया है और कोई भी सहृदय इस बात को अस्वीकार नहीं करेगा। भक्ति का परिचय शब्द भज् सेवायाम धातु में क्तिन् प्रत्यय लगाकर बनता है? जिसका अर्थ है भगवान की सेवा। शांडिल्य भक्ति-सूत्र में 'सा परानुरक्तिरीश्वरे' कहकर ईश्वर में परम अनुरक्ति को ही भक्ति माना गया है। नारद भक्ति सूत्र के अनुसार, 'भक्ति ईश्वर के प्रति परम-प्रेम रूपा है और अमृतस्वरूपा भी है।' 'भागवत' पुराणकार ने भक्ति का लक्षण इस प्रकार दिया है, 'मनुष्य के लिए सर्वश्रेष्ठ धर्म वही है, जिसके द्वारा भगवान श्रीकृष्ण में भक्ति हो, भक्ति भी ऐसी, जिसमें किसी प्रकार की कोई कामना न हो और जो नित्य-निरंतर बनी रहे। ऐसी भक्ति से हृदय आनंदस्वरूप भगवान की प्राप्ति करके धन्य हो जाता है।' महाप्रभु वल्लभाचार्य के अनुसार 'भगवान में पूरी तरह ध्यान लगाना और सतत स्नेह ही भक्ति का इससे सरल उपाय नहीं है।

वल्लभाचार्य ने भक्ति की तीन अवस्थाएँ बताई हैं–प्रेम, आसक्ति और व्यसन। सूरदास ने राधा के प्रेम में भक्ति के विकास का यह क्रम बड़े ही सुंदर ढंग से अंकित किया है। राधा और कृष्ण के बीच प्रेम के अंकुरित होना का यह उदाहरण दर्शनीय है–

खेलन हरि निकसे ब्रज खोरी,
सूर श्याम देखत ही रीझे नैन नैन मिलि परी ठगोरी।

सांसारिक विषय-वासनाओं से मुक्ति और परब्रह्म की प्राप्ति मानव-जीवन का परम पुरुषार्थ माना गया है। इसी भावना से प्रेरित होकर मानव ने जिन मार्गों की खोज की है, उनमें दो मार्ग प्रमुख हैं–निवृत्ति मार्ग तथा प्रवृत्ति मार्ग। प्रतिकूल प्रवृत्तियों की निवृत्ति करके तथा विवेक

द्वारा अनात्मा का त्याग करके परब्रह्मा का सान्निध्य प्राप्त करना या उसका साक्षात्कार निवृत्ति मार्ग है। इस मार्ग के दो भेद हैं–योगमार्ग और ज्ञानमार्ग। विषयों से चितवृत्ति का निरोध करके उसे ब्रह्म में लगाना योगमार्ग है और विवेक द्वारा आत्मा-अनात्मा का भेद जानना, ज्ञानमार्ग है।

प्रवृत्तिमार्ग का अर्थ है–शरीर की स्वाभाविक प्रवृत्तियों द्वारा परब्रह्म को प्राप्त करना, उसके साथ तन्मयता की दशा को पा लेना। इस मार्ग के भी दो भेद हैं–कर्ममार्ग ओर ज्ञानमार्ग। इस प्रकार सांसारिक विषय-वासनाओं से मुक्ति और परब्रह्म की प्राप्ति के चार मार्ग हुए–योगमार्ग, ज्ञानमार्ग, कर्ममार्ग और भक्तिमार्ग। इन मार्गों में अपनी सुलभता के कारण भक्तिमार्ग की सर्वाधिक श्रेष्ठ एवं ग्राह्य माना गया है–'अन्यस्मात् सौलभ्यम् भग्तौ'

सूरदास का भक्तिमार्ग पुष्टिमार्ग कहा जाता है। इसमें भगवान श्रीकृष्ण की भक्ति से भक्त आनंदधाम में प्रवेश पाता है। इसलिए पुष्टिमार्ग की प्राप्ति भगवान की कृपा से ही संभव है। इसमें भक्तों को किसी साधना की अपेक्षा नहीं रहती। सूरदास परमात्मा को 'पतितपावन' जानकर उनकी शरण में जाते हैं। पुष्टिमार्गीय भक्ति का संबंध भगवान की लीला में भाग लेकर उनकी सेवा करने से है। सूरदास ने अपने सूरसागर में इसका विशद् वर्णन किया है। अपने गुरु वल्लभाचार्य से हरिलीला के रहस्य को जान लेने के बाद वे समस्त साधनों को छोड़कर हरि-लीला के गायन में ही मग्न हो गए थे।

सूरदास जी ने भक्ति को महत्त्व देते हुए ज्ञान और कर्म की ही व्याख्या नहीं की है, उन्होंने भक्ति के मर्यादामार्ग को भी महत्त्व बताया है। सूरदास की भक्ति को मुख्यत: दो दृष्टिकोणों से देखने का प्रयत्न किया जा सकता है–

1. साधारण भक्ति–विवेचन, उसका स्वरूप और महत्ता
2. वैराग्यपूर्ण भक्ति–जो संभवत: वल्लभ संप्रदाय में दीक्षित होने से पूर्व सूर में थी।

सूर के मत से इस मायावी संसार से मुक्ति पाने का एकमात्र उपाय भक्ति ही है, जिसके बिना समस्त जीवन भार-स्वरूप है। भक्तिरहित जीवन अधार्मिक जीवन है। कलियुग के इस दुख-भरे जाल का निवारण भक्त के कोमल हृदय से बहते हुए भागवत भक्तिरस के शीतल जल से ही संभव है। हरिभक्ति का रस केवल भौतिक संघर्षजन्य कष्ट को ही दूर नहीं करता, बल्कि मानसिक क्लेश को दूर कर हृदय को भी स्वच्छ करता है और उसे उच्च भावों के ठहरने योग्य बनाता है। भौतिक विषयों के दुष्परिणामों का उद्घाटन और प्रभु प्रेम का गान उन्होंने बड़ी खूबी के साथ किया, जिसे देख-सुनकर लोग प्रभुभक्ति में लीन हो गए।

सूरदास ने साधारण भक्ति के चित्रण में भक्ति के साथ वैराग्य की आवश्यकता बताई है।

भक्ति के प्रकार

श्रवन, कीर्तन, वंदना, अर्चन, पादसेवन, स्मरण, दास्य, सख्य तथा आत्मनिवेदन– 'इन नौ प्रकार की भक्तियों में से प्रथम छह प्रकारों के साधनों का इतना विशद विवेचन सूर- साहित्य में नहीं, जितना उन्होंने अंतिम तीन प्रकार की भक्तियों का किया है। पहले तीन प्रकार की भक्ति भगवान के नाम और लीला से संबंध रखती हैं, दूसरे तीन प्रकार की भक्ति का रूप से और अंतिम तीन प्रकार की भक्ति का मन से संबंध है। मन से संबंधित भक्ति ही रस की कोटि तक पहुँचाती है। श्रवण, कीर्तन तथा स्मरण इन तीनों में भगवान-नाम का ही महत्त्व है। नाम-महिमा का

प्रतिपादन करने वाले अनेक पद सूर ने कहे हैं। हरिनाम का प्रभाव ही ऐसा है, जिसके सहारे जीव भवसागर से पार हो जाता है। भगवान का यशोगान करने से भक्ति सहज ही प्राप्त हो जाती है। हरिनाम की बड़ी महिमा है। इसलिए वह धन्य है, जो हरि के नाम का गान करता है। हरिस्मरण के बिना मुक्ति भी संभव नहीं, इसी से सब सुखों की प्राप्ति होती है। भगवान के साक्षात्कार का भी यही साधन है।

इस प्रकार कीर्तन का महत्त्व भी प्रतिपादित किया गया है। भगवान के नाम, गुण, लीला, धाम आदि का प्रेम-श्रद्धा के साथ पाठ और गान कीर्तन कहलाता है। संगीत कला-विशारद सूर ने कीर्तन में संगीत का पुट देकर सोने पे सुहागा उत्पन्न कर दिया। सूर जन्मसिद्ध गायक थे और उन्होंने न जाने कितनी ही राग-रागिनियों का समावेश 'सूर-सागर' में किया है।

सूर अपने पदों को रचते नहीं, गाते हैं। प्रभु के लीलागान में ही उन्हें सच्चे सुख की उपलब्धि होती है। सूर उसी रचना को रचना कहते हैं, जो भगवान के गुणों का कीर्तन कराती है और उन्हीं कानों को कान कहते हैं, जो हरिकथा का श्रवण करते हैं। हरि-कीर्तन की भाँति श्रवण-भक्ति भी सूर ने अपने काव्य में स्थान-स्थान पर प्रतिपादित की है। स्थान-स्थान पर सूरसागर में सूर स्वयं कहते हैं, 'मैं रसमयी रासलीला को गा-गाकर सुनाता हूँ। जो इस रासलीला का गान करते हैं, मैं उनके आगे मस्तक झुकाता हूँ। इस लीला के श्रवण एवं कथन के फल का वर्णन करने में मैं असमर्थ हूँ।

पादसेवन, वंदन, अर्चन—ये तीनों प्रकार के भक्ति-साधन भगवान के रूप से संबंध रखते हैं। पादसेवन में मूर्तिपूजा, गुरुपूजा तथा भगवत भक्तपूजा भी सम्मिलित है। इन पूजाओं के अनंत भाव से भक्त के दास्यभाव का जन्म होता है। फिर भक्त मानसिक पादसेवन की कोटि तक पहुँचता है और भगवान के अभौतिक चरणों की सेवा करता है। भगवान के चरणों की वंदना करके न जाने कितने भक्तों का उद्धार हो गया—'बंदौ चरण-कमल हरिराई' यहाँ चरण ही सब कुछ हैं। इन चरणों की कृपा से प्रह्लाद ने मुक्ति प्राप्त की। अहिल्या, बालि आदि का उद्धार हुआ। इनके ऊपर गोपिकाओं ने सर्वस्व लुटा दिया। इनकी कृपा से पांडवों के कार्य सिद्ध हुए। सूर स्वयं के लिए लिखते हैं, 'हे मन तू नंद-नंदन के चरणों की सेवा कर जो बड़े सुंदर और पवित्र हैं, जिनकी कृपा से बहुत से पापी तर गए हैं।'

श्रद्धा-सहित भगवान के रूप की उपासना अर्चनभक्ति कही जाती है। सूर के अनेक पद भगवान के अर्थावतार रूप की स्तुति में कहे गए हैं। श्याम के स्वरूप का कवि ने भिन्न-भिन्न प्रकार से वर्णन किया है। भगवान के विराट स्वरूप और आरती का भी सुंदर मनोहारी चित्रण किया है। वंदन और अर्चन दोनों भक्तियों के पात्र साथ-साथ चलते हैं, क्योंकि वंदना में भक्त के दास्य रूप का ही वर्णन है। सूर की वंदना केवल भगवत-चरणों तक ही सीमित नहीं, अपितु भगवान के विविध अंग, वस्त्र, वेश-भूषा तथा कार्यों की भी सूर ने वंदना की है। वह भावुक कवि थे, अतः उनकी भावुकता वंदना के पदों में सबसे आगे दिखाई देती है। आराध्यदेव से संबंध रखने वाली प्रत्येक चेतन व अचेतन वस्तु सूर के लिए वंदनीय है। यह एक मनोवैज्ञानिक तथ्य है कि प्रिय के संपर्क से सभी पदार्थ प्रिय हो जाते हैं।

दास्य, सख्य, आत्मनिवेदन—ये तीन मानसिक भाव हैं और भक्तिरस के उत्पादक हैं। प्रेमाभक्ति की दो अवस्थाएँ होती हैं—प्रेमावस्था और भावावस्था। यूँ तो भक्ति के अनेक मानसिक

भाव हैं और वे सभी भगवान के संबंध से अलौकिक हो जाते हैं। वैराग्य, दैन्य, विनय आदि भावों से प्रेरित होकर सूर ने जो पद लिखे हैं, उन्हें शांत भक्तिविषयक पद कहा जा सकता है, जिनमें भक्त अपनी दीनता का परिचय देता हुआ दिखाई पड़ता है। ऐसा लगता है कि उसे विरक्ति ही नहीं, आत्मग्लानि भी है, जिसके कारण वह कातर होकर प्रभु को पुकारता है—प्रभु, मेरी रक्षा करो।

सख्यभक्ति

पुष्टि संप्रदाय में सख्यभाव की भक्ति का बड़ा महत्त्व है। अष्टछाप के आठ कवियों ने सख्यभाव को ही अपनाया था। सूर के सखाभाव में यह विशेषता है कि उसमें एक ओर तो मनोवैज्ञानिक रूप से मानवीय संबंधों का निर्वाह किया गया है तो दूसरी ओर भक्तिभाव की पूर्ण तल्लीनता और भावात्मकता की अनुभूति भी की गई है। कृष्ण की ओर से सखाओं के प्रति प्रकट आत्मीयता और घनिष्ठता स्वाभाविक है। सूर का सख्यवर्णन विश्वसाहित्य में बेजोड़ है। सूरसागर में बाललीलाएँ, गोचारण लीलाएँ और सुदामा-दारिद्रय वर्णन सख्यभक्ति के ही हैं। इस सखाभाव में सूरदास ने सख्यभाव को चरण सीमा तक पहुँचाया है कि बाल-ग्वालों के साथ श्रीकृष्ण के सख्यभाव को देखकर ब्रह्माजी का गर्व भी नष्ट हो जाता है। वे श्रीकृष्ण की स्तुति करते हुए ब्रजवासियों के भाग्य की सराहना करते हैं और स्वयं भी यही कामना करते हैं कि वे भी ब्रज में ही रहें। श्रीकृष्ण के सख्यभाव में सबसे बड़ी विशेषता उसमें स्वाभाविकता का समावेश है, जिसके दर्शन उसकी प्रत्येक आलौकिक लीला से पहले होते हैं। गोवर्धनलीला, माखनलीला आदि सभी स्थलों पर सूर के सखा श्रीकृष्ण की अलौकिकता को भूले हुए हैं। संयोग में ही नहीं, वियोग में भी। श्रीकृष्ण के ब्रज से मथुरा चले जाने पर तथा राजा हो जाने पर भी सूर ने सख्य भाव को बनाए रखा है। बाल्यकाल के सहचर अपने मित्रता के मार्ग में पद अथवा स्थान की रुकावट पैदा नहीं होने देते हैं। कृष्ण के समायु उन्हें सखा ही मानते हैं। भले ही वे मथुराधीश हो गए हों, पर उनके लिए तो वे यशोदा-नंद नंदन, ब्रजमोहन, माखन-चोर, मुरलीधर श्याम ही हैं।

वात्सल्य

सख्यभाव की भक्ति की तरह सूर की वात्सल्यभक्ति भी बड़ी महत्त्वपूर्ण है। यदि मनोवैज्ञानिक दृष्टि से देखा जाए, तो वात्सल्यभक्ति अन्य सभी प्रकार की भक्तियों से उच्च प्रतीत होती है, क्योंकि वात्सल्यभाव में किसी भी प्रकार के स्वार्थ की गंध नहीं होती। अतः उसे निष्काम भक्ति का पोषक कह सकते हैं। यह एक व्यापक भाव है, क्योंकि इसकी स्थिति प्राणिमात्र में होती है। यदि यह कहा जाए कि सूर ने पुरुष होते हुए भी माँ का हृदय पाया है, तो कोई असंगति नहीं है। यशोदा के वात्सल्य में सूर ने इतनी तन्मयता तथा मनोवैज्ञानिकता भर दी है कि कृष्ण के अतिप्राकृत कार्यों को देखते हुए भी उसके भाव में परिवर्तन अथवा विकार नहीं आ पाया। यशोदा के वात्सल्य-भाव में हृदय का पूरा संयोग है। सूर के साहित्य में वात्सल्य-भाव बेहद महत्त्वपूर्ण है। बालवर्णन की इसी सिद्धता और व्यापकता को देखकर आचार्य शुक्ल को कहना पड़ा था कि 'जितने विस्तृत और विशद् रूप में बाल्य-जीवन का चित्रण सूर ने किया है, उतने विस्तृत रूप में और किसी ने नहीं किया। कवि ने बालकों की भीतरी प्रकृति में भी पूरा प्रवेश किया है और अनेक वात्सल्य भावों की सुंदर व्यंजना की है।'

माधुर्य भक्ति

सूर के समकालीन रूप गोस्वामी ने मधुराभक्ति का वर्णन करने के लिए 'उज्ज्वल नीलमणि' नामक ग्रंथ की रचना की। माधुर्य रूप की भक्ति शृंगारभाव की भक्ति कही जा सकती है। लौकिक प्रेम के जितने स्वरूप हो सकते हैं, वे सभी मधुराभक्ति में समाए हुए हैं। अंतर केवल इतना है कि लोक से हटाकर ईश्वर से जोड़ दिया जाता है। लोकपक्ष में जिसे शृंगाररस कहते हैं, भक्तिपथ में यही माधुर्यरस कहलाता है। आत्मसमर्पण और अनन्य भाव मधुराभक्ति के लिए आवश्यक हैं, जो सूरदास के काव्य में पूर्णतः प्राप्त होते हैं। मधुराभक्ति का जैसा वर्णन सूर ने किया है, वह अन्यत्र दुर्लभ है। गोपियों के पूर्व राग से प्रारंभ करके मधुराभक्ति का क्रमिक विकास सूरकाव्य में हुआ है। पूर्व राग की अवस्था में गोपियों ने कुल-मर्यादा का अतिक्रमण किया है, इसके पश्चात संयोग रति की पूर्ण अवस्था मिलन में दिखाई दी। सूर ने ज्ञान, योग, यश, पूजा आदि की अपेक्षा माधुर्यभाव की भक्ति की श्रेष्ठता प्रतिपादित की है।

आत्मनिवेदन

माधुर्य भाव भक्ति की अंतिम सीढ़ी है। इसी का एक पक्ष शरणागति है। सूर की भक्ति-पद्धति में शरणागति का बड़ा महत्त्व है। विनय के पदों में यह भाव दृष्टिगोचर होता है।

प्रेमाभक्ति

माधुर्य भक्ति में ही प्रेमाभक्ति का सर्वोपरि स्थान है। प्रेम से ही ऐहिक और पारलौकिक कार्य सिद्ध होते हैं। इस प्रेम से ही प्रेम की उत्पति होती है। सूरदास जी ब्रजधाम वास को ही प्रेमाभक्ति का फल मानते हैं, जिसके प्राप्त होने पर भक्त को और कुछ प्राप्त करने की कामना नहीं रहती है। इस भक्ति के प्राप्त होने पर सूर को समस्त संसार कृष्णमय दीख पड़ता है। प्रेम की गति बड़ी विचित्र होती है। वह किया नहीं जाता, हो जाता है। ऐसा नहीं है कि प्रिय के असाधारण गुणों पर रीझकर ही प्रेम होता है। उससे भी अधिक गुणवान कोई अन्य वस्तु हो सकती है, लेकिन वह प्रेमी के हृदय को नहीं लुभा सकती। जिस व्यक्ति को जो वस्तु अच्छी लगती है, उसके लिए वही सुंदर है। यही प्रेम की अनन्य पराकाष्ठा है, जो सूर की गोपियों में देखी जाती है। प्रेमाभक्ति की प्राप्ति का एकमात्र साधन सत्संग और हरिकृपा है। सूर ने इसी बात को अपने काव्य में स्थान-स्थान पर दर्शाया है कि भगवान के सभी अवतार उनकी भक्तवत्सलता और कृपा के प्रमाण हैं। इस भक्ति के लिए किसी फल की आवश्यकता नहीं, उनकी लीला सुनने-सुनाने से ही प्रेमाभक्ति प्राप्त होती है।

पुष्टिमार्गीय भक्ति

पुष्टिमार्गीय भक्ति के प्रवर्तक वल्लभाचार्य थे। वल्लभाचार्य द्वारा प्रकाशित 'दार्शनिक सिद्धांत' साधना की दृष्टि से अच्छा माना जाता है, क्योंकि इसमें श्रीहरि के पोषण, अनुग्रह तथा कृपा को अधिक महत्त्व प्रदान किया गया है। अतएव यह पुष्टिमार्ग कहलाता है। वल्लभाचार्य ने भक्ति को परिभाषित करते हुए लिखा, 'भगवान में सुदृढ़ सतत स्नेह ही भक्ति है। पुष्टिमार्ग में दीक्षित होने पर वल्लभाचार्य ने ही उसे तत्त्व तथा लीला के रहस्यों से अवगत कराया। सूर तत्त्वचिंतक नहीं थे, भक्त और कवि थे। इसलिए उनके साहित्य में पुष्टिमार्ग की संपूर्ण सैद्धांतिक

अवधारणाएँ व्यक्त नहीं हुईं। हाँ, उन्होंने एकाध स्थलों पर पुष्टि शब्द का अवश्य उल्लेख किया है। यदि पुष्टिमार्ग के सभी पक्षों पर विचार किया जाए, तो मालूम होगा कि पुष्टि संप्रदाय के दो पक्ष हैं–सिद्धांतपक्ष और सेवापक्ष।

जहाँ तक सेवाविधि के अंतर्गत सूरसाहित्य में मानसी सेवा के विधान का प्रश्न है, सूर ने इसका ही चित्रण किया है। इस सेवा में विशुद्ध प्रेम की प्रधानता होती है। इसलिए इसको प्रेमलक्षणा भक्ति, निर्गुणभक्ति, पराभक्ति या शुद्ध पुष्टिभक्ति कहा गया है। सूर ने गोपियों को प्रेमरूपा माना है। कृष्ण के समक्ष उनका आत्मसमर्पण करवाया है। इसी आत्मसमर्पण द्वारा वियोग की भावना का विस्तार रूप में वर्णन किया गया है।

सूरकाव्य में भक्तिभाव की रसात्मकता

सूरकाव्य में भक्तिभाव की रसात्मक अभिव्यंजना मिलती है। विनय, दीनता, आत्मनिवेदन आदि प्रसंगों में स्वतंत्र भक्ति की व्यंजना है, तो कृष्ण की अनेक लीलाओं में कहीं वात्सल्य, कहीं सख्य और कहीं शांत भाव की भक्ति की व्यंजना भी देखी जा सकती है।

भक्ति का बाह्य रूप

सूरदास ने जिस भक्ति-पद्धति को स्वीकार किया था, उसमें यद्यपि कर्मकांड तथा बाह्य आचार के लिए अधिक स्थान नहीं था, तथापि भागवत में वर्णित नवधा भक्ति को उन्होंने सर्वथा निरस्त नहीं किया था। आचार्य वल्लभ ने भी सांसारिक दुखों से मुक्ति पाने तथा भगवान का ज्ञान प्राप्त करने के लिए जीव को कृष्णसेवा का उपदेश दिया है। सेवा शब्द का यहाँ अर्थ सामान्य अर्थ से अलग है। उनके अनुसार भगवान से चिंता का पिरोना ही सेवा है।

सूरदास की भक्ति की विशेषताएँ

1. सूरदास की भक्ति में सगुण रहस्यात्मक भक्ति की झलक दिखाई गई है।
2. तुलसी की भाँति सूर ने भी राम-कृष्ण-समत्व की अवधारणा को अपनाया है। कहीं -कहीं कृष्ण और शिव को भी एक माना गया है। इस प्रकार की भावनाएँ सद्‌भाव और भाईचारे की प्रतीक हैं।
3. नाम महिमा में सूरदास का अटल विश्वास है। 'बड़ी है राम नाम की ओट' कहकर वे बार-बार नाम की दुहाई देते हैं और अनेक ऐसे लोगों का स्मरण करते हैं, जो भगवान के नाम के बल पर इस संसाररूपी सागर से पार हो गए थे।
4. सूरदास संयोग में ही नहीं, वियोग में भी सिद्धस्त हैं।
5. अगर वात्सल्य भक्ति को देखा जाए, तो उन्होंने पुरुष होते हुए भी माता का हृदय पाया है।
6. सूरदास जी की यह दृढ़ मान्यता थी कि भक्त को ब्रजधाम निवास बड़े भाग्य से मिलता है। ऐसा हरिकृपा और सत्संग से ही संभव है। उनके अनुसार एक बार ब्रजनिवास प्राप्त होने पर भक्त को अन्य कुछ पाने के लिए नहीं रह जाता है और न ही उसकी कोई इच्छा शेष रह जाती है।
7. वह भक्ति करते समय यह मानते थे कि भजन से तो नीच भी ऊँचा बन जाता है।

8. सूरदास ने जितने भी प्रकार की भक्ति की है, उनमें सख्यभाव सबसे महत्त्वपूर्ण है। वे भगवान को अपना सखा मानते हैं। डॉ॰ हरवंशलाल शर्मा के शब्दों में, 'सूर का सख्य-वर्णन विश्वसाहित्य में बेजोड़ है।'
9. सूरदास ने पुष्टिमार्गीय भक्ति को अपनाया है। भगवान का अनुग्रह पुष्टि कहलाता है।
10. सूरदास भक्त होने के साथ-साथ कवि भी हैं। काव्य और भक्ति का ऐसा मिश्रण अन्यत्र दुर्लभ है।
11. सूर ने भक्ति का वही रूप ग्रहण किया है, जो भागवत में है।

सूर की भक्ति : एक नज़र में

सूरदास की भक्ति में भक्ति के सभी प्रकार आकर मिल जाते हैं। उनकी भक्ति में सामयिक प्रभाव और मौलिकता का भी पुट है। सामयिक प्रभाव के अतिरिक्त सूर की भक्ति के शताब्दियों से चले आते हुए उस रूप के भी दर्शन होते हैं, जो समाज में प्रचलित लोकगीतों और परंपराओं में विद्यमान था। राधा और कृष्ण, कृष्ण और गोपियों की श्रृंगार की चेष्टाओं के पीछे से भक्ति का वह रूप झाँकता हुआ स्पष्ट दिखाई देता है। एक युगजीवी की भाँति सूर ने धार्मिक पक्ष में भी अपने युग का प्रतिनिधित्व किया है। उनकी भक्ति में जहाँ एक ओर विभिन्न वैष्णव संप्रदायों के सिद्धांतों का समावेश हुआ है, वहीं दूसरी ओर अन्य प्रचलित मत-मतांतरों का भी प्रभाव पड़ा है। सूर उच्चकोटि के भक्त थे। उनकी भक्ति अंत:करण की प्रेरणा और हृदय की अनुभूति थी। भक्त होने के साथ-साथ वह कवि भी थे। इसलिए उनकी भक्ति में कविसुलभ कल्पना का योग भी स्वाभाविक ही था। विनोदी प्रकृति के होने के कारण, हास्य और व्यंग्य का अहसास भी उनके पदों में आ गया है। वे संगीत के विद्वान थे। इसलिए उन्होंने अपने पक्षों को लय, स्वर, तान आदि का उचित ध्यान रख उन्हें गाने योग्य बना दिया। धार्मिक परिस्थितियों के साथ-साथ सामाजिक परिस्थितियों का भी परिचय सूरकाव्य में मिल जाता है।

सूर के समकालीन गोस्वामी तुलसीदास जी की सभी रचनाओं में किसी-न-किसी रूप में सामाजिक प्रतिछाया मौजूद है। कबीर की अटपटी, अक्खड़ भाषा में समाज की पोल खोलकर उस पर व्यंग्यबाणों की जो वर्षा की गई है, उसमें भी तत्कालीन समाज का पूरा नक्शा ज्यों-का-त्यों सामने आ जाता है। ढोंग और आडंबर के राक्षस मानवता और सदाचार को निगल रहे थे। व्रत, पूजा, तीर्थ आदि की प्रतिष्ठा होते हुए भी पवित्र धर्मबुद्धि का अभाव ही दीख पड़ता था। धर्म के नाम पर शोषण जोर-शोर से चल रहा था। साधुओं का ढकोसला भी कुछ कम न था। इन सब बातों का प्रभाव सूर की भक्ति पर पड़ना स्वाभाविक ही था। उनकी भक्ति-साधना में उस समय की परिस्थितियों का बहुत सीमा तक योग है।

निष्कर्ष

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर यह सहज ही कहा जा सकता है कि सूर की भक्ति उनके अंत:करण की प्रेरणा और अंतर की अनुभूति थी। उन्होंने एक भक्त के रूप में अपनी साधना शुरू की थी। भक्त के रूप में ही उसका उपसंहार किया। सीमाओं में रहकर असीम को जानना ही साधना की चरम सीमा है। जब सूर की साधना फलीभूत हुई, तो उसने असीम श्रद्धा-सम्मान प्राप्त किया और भक्तों के लिए भक्ति का प्रकाशमय पथ प्रशस्त कर दिया। उनमें संगीत की

अद्‌भुत कला थी।

भक्ति और साहित्य के उन्मुक्त वायुमंडल में सूर की कल्पना ने व्यावहारिक ज्ञान और अनुभव के पंख खोलकर इतनी ऊँची और लंबी उड़ान भरी है कि दर्शकों को कभी-कभी तो यह आभास हो जाता है कि यह किसी अन्य लोक की यात्रा कर रही है, परंतु सत्य है कि इतने ऊँचे पर उड़ते हुए भी उसकी दृष्टि सदैव पृथ्वी पर ही लगी रही है। सूर उच्चकोटि के पहले भक्त और बाद में कवि हैं। अतएव उनकी भक्ति में कविसुलभ कल्पना का योग भी स्वाभाविक था। वे विनोदी प्रकृति के थे।

सूर का साहित्यिक व्यक्तित्व वास्तव में भक्त का है। भगवत्‌भक्ति ही उनका सर्वस्व थी। उन्होंने अपने काव्य में भगवत्‌भक्ति की जो महत्ता प्रतिपादित की, उससे उनका भक्तरूप ही स्पष्ट होता है। सूर का समस्त काव्य हरिलीला का समकीर्तन है। उसकी रचना भी पुष्टिभक्ति के आचारों के अनुकूल ही है। उनकी यह मूल भक्तिभावना उपभावों के माध्यम से अभिव्यक्त हुई है। कहीं वह वात्सल्य रूप में, कहीं सख्यभाव अथवा माधुर्यभाव के रूप में उजागर हुई है। हर स्थान पर भक्ति की एक पवित्रता मिलती है। उनकी वाणी उनके भक्तहृदय की ही गूँज है, जो अपने भगवान की भावपूर्ण आरती उतारती है।

सूरदास जी का भक्ति के संबंध में व्यापक दृष्टिकोण था। उन्होंने साधारण भक्ति के साथ-साथ वैराग्य की आवश्यकता भी बताई है। सूर ने योगमार्ग की निरर्थकता को सिद्ध किया तथा वैराग्यभाव को ही भक्ति का अनिवार्य अंग बताया। उनके अनुसार भक्ति के बिना ज्ञान और कर्म व्यर्थ है। इस बात को सिद्ध करने के लिए सूरदास जी कहते हैं कि जिस प्रकार पतंग दीपक से प्रेम करता है और उसकी जलती हुई शिखा से नहीं डरता, अपितु उस पर गिर पड़ता है। उसी प्रकार ज्ञानी पुरुष भी अपने ज्ञानरूपी दीपक से सांसारिक दुख रूपी कुएँ को प्रकट देखता हुआ भी उसमें गिर जाता है।

महान भक्त सूरदास का व्रत था कि मनुष्य कृष्णभक्ति द्वारा ही भावसागर को पार कर सकता है। अगर सूरदास जी के साहित्य की बात करें, तो विनय के सारे पद इसी प्रकार की भक्ति-भावना से भरे हुए हैं कि मनुष्य-जन्म बड़ी कठिनता से प्राप्त होता है, उसे यों ही नहीं गँवाना चाहिए। अपनी इस बात को सिद्ध करने के लिए सूरदास जी ने अनेक पापियों का उदाहरण दिया और कहा कि भक्ति ही एकमात्र ऐसा साधन है, जिससे समस्त पाप नष्ट हो जाते हैं, अन्यथा जीव इस भवसागर में यों ही भटकता रहता।

सूरदास जी अपने भक्तिकाव्य के महत्त्व के कारण हिंदीकवियों के मुकुटमणि माने जाते हैं, फिर भी यह निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि उन्होंने कवि के दृष्टिकोण से अपने काव्य की रचना नहीं की है। उनके काव्य का दृढ़तापूर्वक अध्ययन करने पर यही भाव निकलता है कि उनका हृदय भक्त का ही रहा है। अपने इष्टदेव की भक्ति-भावना में आनंदविभोर होकर उन्होंने जो कुछ गाया है, वह भक्तिकाव्य की श्रेष्ठतम कृति है, इसलिए वह भक्ति-रस से ओत-प्रात है।

निष्कर्षत:, सूर पहले भक्त और बाद में कवि हैं। यह महान भक्त आचार्य वल्लभ के शिष्य थे। अत: इनकी भक्ति पर वल्लभ संप्रदाय की छाप स्पष्ट देखी जा सकती है। सगुण रूप का यह उपासक बड़ा ही अनोखा था। इसने भगवान की साधारण भक्ति के साथ वैराग्य भाव

को बराबर महत्त्व दिया। इनसे जैसे भी बन पड़ी यह हमेशा भगवान की भक्ति में लीन रहे। कभी भगवान की वंदना करते, तो कभी अर्चना। जब भक्ति में आत्मविभोर हो जाते थे, तो कीर्तन करने लगते थे। कभी दास बन भगवान की चरणसेवा करते, तो कभी अंतरात्मा से निवेदन करने लगते। कभी उनके बालपन पर मोहित हो जाते, तो कभी अपने इष्टदेव की हर वस्तु में इतनी मधुरता पाते कि उसकी सुंदरता का वर्णन करते-करते थकते नहीं थे। जब इन सबसे थोड़ी फुरसत मिल जाती, तो फिर उनके अंदर भावों की एक ऐसी नदी उमड़ती थी, जो उन्हें हमेशा प्रेम में डुबोए रखती थी।

इसमें कोई संदेह नहीं कि भक्तिकाल को हिंदी साहित्य का स्वर्णयुग माना जाता है। भक्तिकाल में एक से बढ़कर एक भक्तकवि हुए हैं, परंतु भक्तकवियों की इस परंपरा में सूरदास का जो अनूठा स्थान है, शायद ही कोई वहाँ तक पहुँच पाया है। भक्तशिरोमणि सूरदास जी की भक्ति-भावना हमेशा बहने वाली उस प्रवाहमय नदी की तरह है, जिसका छोर ढूँढ पाना मुश्किल है। हिंदी साहित्य से यदि भक्तिकाल को अलग कर दिया जाए, तो साहित्य बेसहारा हो जाएगा और यदि इस भक्तिकाल में से भी सूर की भक्ति को निकाल दें तो पूरा भक्ति-साहित्य लड़खड़ाकर गिर जाएगा। ऐसे थे भक्तिकवि सूरदास और उनकी भक्ति-भावना।

संदर्भ

1. सूर और उनका साहित्य, डॉ॰ हरबंसलाल शर्मा
2. सूरसागर सार, डॉ॰ धीरेंद्र वर्मा
3. हिंदी साहित्य कोश भाग, डॉ॰ धीरेंद्र वर्मा
4. भक्तिकालीन काव्य, डॉ॰ दिनेशकुमार गुप्ता
5. वृहत् साहित्यिक निबंध, डॉ॰ यश गुलाटी
6. साहित्यिक निबंध, एस॰के॰ सिंह
7. गीत परंपरा और सूरदास, डॉ॰ हरबंशलाल शर्मा
8. सूरसागर -
9. हिंदी के प्राचीन प्रतिनिधि कवि, डॉ॰ सुरेश अग्रवाल

म॰नं॰ 963, **बी॰ई॰** 5,
पटेलनगर, गुड़गाँव (हरि॰)
मो॰ 098187688430

गढ़वाली लोकगीत साहित्य में सौंदर्यानुभूति

डॉ॰ अंबरीषचंद्र चमोली

लोकगीत लोक की परंपरागत विरासत है। अनुभूत अभिव्यक्ति और हृदयोद्‌गार है। यह जीवन का स्वच्छ दर्पण है, जिसमें समाज के व्यक्त जीवन का प्रतिबिंब दिखाई पड़ता है। लोकगीतों की सृष्टि में किसी का हाथ नहीं रहा, ये अपने आप बने हैं। डॉ॰ श्याम परमार गीतों की उत्पत्ति सामाजिक चेतना की गतिशीलता के कारण मानते हैं। वास्तव में गीत खुले आकाश के नीचे, खुली धरती के एक छोर से दूसरे छोर तक अंकुरित हुए और पले हैं और यही धरती इनकी सर्जक माँ है, जिसके वक्षस्थल का दूध पीकर ये पुष्ट हुए हैं। ये किसी से उधार नहीं लिए गए, कहीं से हवा में बहकर नहीं आए, किसी व्यक्ति विशेष ने इमारत की तरह इन्हें गढ़ा नहीं है। सभी ने सुना, सभी ने गाया और अपनी आने वाली संतति को इन्हें सौंप दिया।[1]

लोकगीत मानव स्वभाव है। इसकी व्यापकता मानव के जन्म से मृत्युपर्यंत है। लोकगीतों में लोकसंस्कृति की अभिव्यक्ति जनपदीय बोली में होती है। शहरी तड़क-भड़क और चकाचौंध से दूर प्रकृति की गोद में प्रकृतिपुत्र एवं पुत्रियों के भावोच्छ्‌वास ही लोकगीत हैं। शिष्ट साहित्य की अलंकृत वल्लरी भी लोकसाहित्य की माटी में अंकुरित होकर चतुर्दिक फैली है। शहरी कृत्रिमता भाग-दौड़ एवं मारा-मारी से ऊबकर मानव-मन प्रकृति की ओर लौटना चाहता है। प्रकृति की गोद में ही उसका श्रांत मन विश्राम पाता है। द्रुम-लतान्वित अरण्य में पक्षियों की कंठध्वनि से अपनी कंठध्वनि मिलाकर बेपरवाह होकर वह गाना चाहता है।

लोकगीतों में पवाड़े वीरों से संबंधित लोकगाथाएँ हैं तथापि इनमें शृंगार की छटा भी दिखाई देती है। 'धार्मिक भावनाओं की धारा जीवन के अंतराल में जब बहने लगी और युद्ध व प्रेम की वीर शृंगारी धाराएँ सतह पर तीव्र वेग से प्रकट हुईं, तब प्राचीन पांडव गीतों का नवीन संस्करण मध्यकालीन पंवाड़ों के रूप में हुआ। मध्यकालीन पंवाड़ों का समय श्री भजनसिंह 'सिंह' 16 वीं-17 वीं शताब्दी मानते हैं। 'जाणो भोटंत हे नाग सूरीज' यह वीरगीत तिब्बती शासनकाल से संबंध रखता है। पंवाड़े सुनाने वाले चीन्हे हुए व्यक्ति वैसे तो सभी वर्णों के होते हैं, किंतु इनके सफल कलाकार 'हुड़क्या' ही हैं। प्रारंभ में केवल भड़ों की यशकीर्ति चिरकाल तक रखना ही उनका उद्‌देश्य था, किंतु समय के हेर-फेर में जैसे-जैसे कथा-प्रसंगों के भीतर रसिक गायक की दृष्टि प्रविष्ट होने लगी, शृंगार की मुल्ल मुस्कान और विरहकातर अश्रुधारा भी इनमें प्रकट होने लगी। फलतः रासो काव्य की तरह इन अलिखित वीरगाथाओं में तलवारों की छपाछप और पायलों की झनकार एक साथ मिली हुई है।'[2] गढ़वाली मध्यकालीन पंवाड़ों में गढ़ु सुम्याल, जीतू बगड्‌वाल हरि हिंडवाण, रणू झंक्रू लोदी रिखोला आदि भड़ों (वीरो) के वीरता पूर्ण कार्यों एवं प्रेम गाथाओं का वर्णन मिलता है।

गढ़वाली लोकगीतों में होलीगीत ब्रज के होलीगीतों की ही अनुकृतियाँ हैं। इनमें शृंगार की रस भरी फुहार है। उत्तराखंड के साहित्य में खुदेड़ गीतों को विप्रलंभ शृंगार के अंतर्गत रखा जा सकता है। 'खुद' शब्द 'क्षुधा' शब्द से बना है। गढ़वाली में इसका अर्थ है–व्याकुल स्मृतिजन्य विरह-वेदना। खुदेड़ गीतों में पाषाण हृदयों को भी द्रवित करने की क्षमता है। मायके की याद हो या प्रवासी पति का विरह पर्वतीय नारी की वेदना, खुदेड़ गीतों के स्वरों में अश्रुमुखी हो जाती है। हिमवंत की भोली-भाली विप्रलंभा, उदरपूर्ति की प्रादेशिक समस्या में जिसका पति परदेस में है, फागुन की जुताई में 'दणमण-दणमण' आँसुओं से मिट्टी के ढेलों को भिगोते हुई अपना 'बारामासा' प्रारंभ करती है–

फागुण मास फगणोटी बाई।
तिल मेरा स्वामी मुखड़ी लुकाई।
चैत का मैना बुति जाला धान।
मिल खैरि खाई स्वामी का बाना।

वर्षाकाल में 'ना बास, ना बास पापी मोर' वाले गीत में तो उसकी बारहमासी व्यथा प्रकृति के प्रवाह की ही भाँति उदात्त होकर उमड़ पड़ती है।[3]

खुदेड़ गीतों की सबसे बड़ी विशेषता इनका मर्मस्पर्शी एवं हृदयद्रावक होना है।

प्रारंभ में इन लोगों ने भी समय के अनुरूप देवी-देवताओं के गीत गाए होंगे, ऐसा प्रतीत होता है। पुनः 'तीला धारू बोल' (अर्थात् तूने अपने बोल निभा लिए, नाम कमा लिया या तूने देश या जाति का नाम अमर कर दिया) की टेक वाले गीत इनकी ढोलकी के अलबेले तालों पर लिपटते हैं। कालांतर में इन्होंने बसंत गीतों के रसोदधि में निमज्जन की समुत्तेजना दी ।

इनका प्रभाव क्षणस्थायी होते हुए भी प्रचार की दृष्टि से सर्वव्यापक होता है। इन गीतों में सामाजिक, ऐतिहासिक वस्तुस्थिति के साथ हास्य का भी समावेश रहता है, परंतु अश्लील शृंगारी भावना की अधिक अभिव्यक्ति होने से इनसे समाज के आचार-विचारों पर दूषित प्रभाव पड़ता है। इसलिए समाज में इनका कोई स्थायी साहित्यिक मूल्य नहीं समझा जाता।[4]

परिवर्तन प्रकृति का नियम है। मनुष्य जहाँ अपने अतीत से जुड़ा है, वहीं उसकी वर्तमान परिस्थितियाँ भी उसे कुछ नया सोचने एवं करने को विवश करती हैं। आज का वर्तमान ही कल का भविष्य बनता है। नए गीतों के अंतर्गत वर्तमान समय में रचित सामयिक गीतों को रखा जाता है। इन गीतों की भाषा एवं विषयवस्तु अपेक्षाकृत परिष्कृत एवं सचेष्ट हैं। इनमें आधुनिक रचनाकारों के सुविख्यात गीत आते हैं।

अलंकार सौंदर्य–

घ्वीड़ कू आपणो झुमैलों, चांथ पियारो भै झुमैलों।
एकुली नारी भै झुमैलों खरड़ि डालि सि भै झुमैलों।[5]

इन पंक्तियों में अकेली नारी की तुलना फूल एवं पत्तियों से रहित शुष्क डाली से की गई है।

रूपक-उपमेय पर उपमान का भेदरहित आरोपण होने से रूपक अलंकार होता है।

चंद्रागढ़ू रैंद रा बाळी चंद्रावली
रूप की बातुली वा होली मायादार।[6]

(चंद्रागढ़ में नवयौवना चंद्रावली रहती है, जो प्रेम से भरी हुई है और रूप की दीपशिखा है।)

छया वसुदेव का जाया हे मोहन, हवैल्यो देवकी का लाडो
छई दई की दुपकी हे मोहन, हवैल्यो दूद की बिराळी।[7]

(देवकीसुत वासुदेव कृष्ण दूध के रसिक विडाल हैं। श्रीकृष्ण की दुग्धप्रियता के कारण उन्हें दूध की बिल्ली कहा गया है।)

पुनरुक्तिप्रकाश–एक ही शब्द के अनेक बार प्रयोग से जब काव्य में सौंदर्य आ जाता है, तो वहाँ पुनरुक्तिप्रकाश अलंकार होता है–

कांसी की थाकूली ब्वै! कांसी की थाकूली।
प्वटगी कू बेच्याले ब्वै! नाक की नाथूली।
तिंदरों की ओट ब्वै! तिंदरों की ओट।
मांगीक पैर्यूं च ब्वै! ससुराजि को कोट।[8]

'कांसी की थाकूली' और 'तिंदरौं की ओट' शब्दों की पुनरावृत्ति से अभिव्यक्ति अधिक प्रभावशाली बनी है। कांसी की थाली, घर के बरतनों का पर्याय है। उदरपूर्ति के लिए जेवर और बरतन सब बिक गए। तिंदरों की ओट (तिनकों की ओट) की पुनरावृत्ति भी साभिप्राय है।

विरोधाभास–एक ही उक्ति में सार्थक साभिप्राय विरोधी शब्दों का प्रयोग ही विरोधाभास है–

ऐगे बसंत भै झुमैलों, मैकू च सौण भै झुमैलों।
मैकू बारामास भै झुमैलों, यक्कि रितु रैगे भै झुमैलों।[9]

(फूलों को खिलाता, सुगंध विखेरता बसंत आ गया है। ऐसा लोग कहते हैं, पर मेरे लिए तो यह सावन ही है, जिसमें मेरे नेत्र निरंतर बरस रहे हैं। ऋतु-परिवर्तन प्रकृति का सामान्य नियम है, पर मेरे लिए तो सर्वदा एक सी ऋतु है। बसंत-सावन, ऋतु परिवर्तन-एकसी ऋतु परस्पर विरोधी शब्दों के प्रयोग से विरोधाभास अलंकार है।)

उदाहरण अलंकार–एक कथन के समर्थन में दूसरा कथन किए जाने पर उदाहरण अलंकार होता है–

जैसि भरि रइ सौण कि गंगा तैसि भरि रइ मैं बालमा।
जैसि भरि रइ दूदै कटोरी तैसि भरि रइ मैं बालमा।
जैसि भरि रइ पाणी गगरिया, तैसि भरि रइ मैं बालमा।[10]

(जैसे सावन की नदी जल से भरी है, वैसे ही मैं यौवन से भरी हूँ। जैसे दूध की कटोरी दूध से भरी है, जैसे पानी की गगरी जल से भरी है वैसे ही प्रियतम मैं यौवन से भरी हूँ।)

ध्वन्यालंकार–जहाँ शब्द ध्वनियों के सहारे दृश्य व्यंजित हो उठता है, वहाँ ध्वन्यालंकार होता है–

कख होली मेरी डांडी व कांठी कख कुयेड़ी सौण की
रूम झुम बरखा छूम-छूम छोया मैकू सूझीं च रोण की।[11]

(सावन के महिने कुहरे की श्वेत चादर से ढकी पर्वतीय भूमि में झमझम बरसती वर्षा से छम-छम करते सोते फूट रहे होंगे। परदेस में उस जन्मभूमि की स्मृति अश्रुओं से भर देती है।

व्यतिरेक–जब उपमेय के सामने उपमान फीका पड़ जाए, तब व्यतिरेक अलंकार होता है।

केन होए केन होए कुंडी काजोळ?
केन होय केन होए सुरीज धुमैलों?
नहेंण लागी लक्ष्मी जी की लाडी,
तब होए, तब होए कुंडी काजोळ, सुरीज धुमैलों।[12]

(स्नान-पात्र का जल कांतिहीन और सूरज इसलिए धूमिल हो गया है, क्योंकि पार्वती के सदृश दीप्तानन कन्या मंगल स्नान कर रही है।)

बिंब सौंदर्य–बिंब अँग्रेजी शब्द Image का पर्याय है, जिसका शाब्दिक अर्थ है–रूपाकृति, चित्रा, छवि आदि। मनुष्य एक चिंतनशील प्राणी है। ज्ञान एवं अनुभव की वृद्धि के साथ मानव का भाव-जगत भी समृद्ध हुआ है। किसी काव्य के पढ़ने व सुनने से ही उसके वर्ण्य विषय से संबंधित जो संश्लिष्ट चित्रा भावजगत में उभरते हैं, उन्हें ही बिंब कहते हैं।

गढ़वाली लोकगीतों में अनायास घ्राण, श्रवण, स्वाद स्पर्श एवं चाक्षुष सभी प्रकार के बिंबों की रचना हुई है। इन पंक्तियों में पर्वतीय प्रदेश में पावस ऋतु का सुंदर बिंब द्रष्टव्य है–

कख होली मेरी डांडी व कांठी कख कुयेड़ी सौण की
रूम झूम बरखा छुमछुम छोया मैकू सुझीं च रोण की
अलड़ा का बीच छान्यों मा होली भैंसी बियांई सौंण की
दूद तचाला खीर पकाला गोंदकी खाला नौण की
कमळी की च्वंट मारीक ग्वैर बंशुळी बजौंदन खुद्द की
बळ्दु की घांडि घस्यार्यों का गीत, आग बढौंद विछोह की।[13]

(पावस ऋतु में प्रवासी के मन में जन्मभूमि की स्मृति प्रबल हो उठती है। जहाँ वर्षा ऋतु में पहाड़ियाँ कुहरे से ढकी हुई हैं, रिमझिम वर्षा में जलधाराएँ फूट रही हैं। जहाँ छानी (पशुशाला) में सद्य:प्रसूता (व्यायी हुई) दुधारू भैंस बँधी है और पर्याप्त दूध खीर व माखन खाने के लिए उपलब्ध है। जहाँ पशुचारक वर्षा से बचने के लिए कंबल की चोंट (आवरण) बनाकर पशुचारण के लिए वन में जाते हैं और हृदय को द्रवित करने वाली मधुर वंशी की धुन बजाते हैं। जहाँ घास चरते बैलों के गले में बजती घंटियों की रुनझुन और घास काटती कोकिलकंठी पर्वतीय नारियों की सुरीली और खुदेड़ स्वर-लहरी विरह की अग्नि को प्रदीप्त कर देती है।)

घ्राण बिंब का यह उदाहरण भी द्रष्टव्य है। धौळी (अलकनंदा) के किनारे खिला यह विचित्र फूल क्या है, जिसकी मोहिनी गंध से पूरा वनांचल महक रहा है–

धौळी का किनारा क्या फूल च?
अनमनी भांती को क्या फूल च?
सैरी धौळी धुमैली क्या फूल च?
सैरी धौळी धुमैली क्या फूल च?
द्यवतौउं सरीखो क्या फूल च?
धौळी का किनारा क्या फूल च?[14]

पट्टदार शैली के गीत–गढ़वाली लोकगीतों में इस प्रकार के गीतों का बहुत प्रचलन

है। पट्ट या टेक वाली पंक्ति को तुक या छंद मिलाने के लिए ही रखा जाता है और गीत के भाव से उसका कोई प्रत्यक्ष संबंध नहीं होता। यह गीत रचना में लोककवि को सहायता प्रदान करती है। यह भावपूर्ण पंक्ति के साथ तुक मिलाकर उसे आलंबन प्रदान करती है, परंतु गहराई से देखने पर इन पट्टों में आश्चर्यजनक रूप से अभिप्रेत भाव की एक धुँधली-सी छाया होती है, जिसमें गीतकार का उस अभिप्रेत भाव में निमग्न मनोविज्ञान काम करता है। उदाहरणार्थ स्व॰ श्री मालचंद रमोला द्वारा संकलित बाजूबंद की कुछ पंक्तियाँ प्रस्तुत हैं–

बाजूबंद–आँखी को रतन, पथळि कमर, हिटणु जतन।
समकक्ष हिंदी–चलत लक लचकत, चल सकत न अंग सम्हार।
भार डरत सुकुमार वह,धरत न उर पर हार।।
बाजूबंद–फुरकलि पौन, छाजा मा खड़ी ह्वै, धार मा किसी जोन।
समकक्ष हिंदी–चाँद अब तू किसे देखने निकला।
चढ़के कोठे पे वे उतर भी गए।
बाजूबंद–घट को भग्वाड़ी, रूबसी खुट्योंन तू चल अगाड़ी।
बंदुकी कु गज-तू चल अगाड़ी मैं देखलू सज।।

लोकगीतों की अंतर्वस्तु में प्रेम, सौंदर्य, रस, प्रकृति, नारी, रीति-रिवाज, लोक-आचरण एवं लोकविश्वास को लिया जा सकता है। प्रेम मानव-जीवन को अर्थवत्ता प्रदान करने वाला उच्च मानवीय गुण है। लोकगीतों में प्रेम के विविध रूपों का चित्राण हुआ है। जैसे–देश प्रेम, दांपत्य प्रेम एवं प्रकृति प्रेम आदि।

सौंदर्य–लोकगीतों में अभिव्यक्तिगत सौंदर्य, जैसे–रस, छंद एवं अलंकारादि के साथ-साथ आनुभूतिक सौंदर्य जैसे मानव एवं प्रकृति के सौंदर्य की मनोहारी छटा दिखाई देती है। लोकगीतों में डांडी कांठियों की निसर्ग सुंदरता में प्रकृति सौंदर्य मूर्तिमान हो उठा है। साथ ही मानवीय सौंदर्य का भी सुंदर चित्राण हुआ है। चंद्रावली चंद्रागढ़ की राजकुमारी है। उसका रूप दीपशिखा-सा तेजोदीप्त है।

चंद्रागढ़ू रैंदी रा बाळी चंद्रावली
रूप की बातुली वा होलि मायादार।[15]

मंगल स्नान करते वर एवं वधू के सौंदर्य के समक्ष सूर्य भी धूमिल हो गया है।

केन होए, केन होए, कुंडी काजोळ
केन होए, केन होए, सूरिज धुमैलो?
नयेण लागी लक्ष्मी जी कि लाडी
तब होए तब होए सूरिज धुमैलो।[16]

एक लोकगीत में धना, कामुक सौंदर्य से युक्त ललना है, जिसकी कमर पतली एवं वेणी सर्प के समान लहरदार है–

धन! मेरी धनुली धना ल्हसक कमर
पाथळी कमर च तेरि ल्हसक कमर।
सर्प जसी ज्यूड़ा धना ल्हसक कमर।[17]

काव्य के श्रवण एवं पठन से प्राप्त होने वाला आनंद ही रस है। गढ़वाली लोकगीतों में

प्राय: सभी रसों का परिपाक हुआ है। श्रृंगाररस के संयोग और वियोग दोनों रूप पाए जाते हैं। वियोग श्रृंगार का वर्णन विशेष मार्मिक है–

मेरा स्वामी न मीं छोड़ी घष्श्र निर्दयी ह्वै गैन मईं पर
ज्यूंरा का घर नी जगा मैंकू, स्वामी विछोह होयूं छ जैंकू।
रामी तैं स्वामी की याद ऐगी, हाथ कुटली छूटण लैगी।[18]

प्रकृति-चित्रण–लोकगीत प्रकृति की गोद में ही रचे जाते हैं। अत: लोकगीतों में प्रकृति- चित्रण होना स्वाभाविक ही है। लोकगीतों में प्रकृति आलंबन और उद्दीपन दोनों रूपों में विद्यमान है।

आलंबन रूप में

वृक्ष, पुष्प, पहाड़, हरियाली एवं नदियाँ आदि प्रकृति के सभी उपकरण लोकगीतों में चित्रित हुए हैं। 'नै डाळी पैंया जामी' में नई पैंया की डाली के पल्लवन से बिखरे उल्लास का वर्णन है। 'रैमासी को फूल' एवं 'क्या फूल च?' में धौली के किनारे खिलने वाले सुगंधित दुर्लभ पुष्प का वर्णन है। 'कख होली मेरी डांडि व कांठी' तथा 'प्यारो हिमवंत देश भलो स्वाणो लगद दा' गीतों में पर्वतीय डांडी कांठियों का प्राकृतिक सौंदर्य चित्रित हुआ है।

उद्दीपन रूप में प्रकृति-चित्रण–लोकगीतों में प्रकृति का उद्दीपक रूप भी व्यापक रूप से चित्रित हुआ है–

बारा रितु बौड़ली बार मास
आली व जाली जनु दांई फेरो।
आई नि आई निरभाग मैंक
क्वी भी नि आई रितु मेरी दां त।[19]

विरहिणी के लिए प्रकृति एवं ऋतु परिवर्तन के रंग नवीन उल्लास लेकर नहीं आते। इसी तरह–

ऐगे बसंत भै झुमैलो, मैंकू छ सौण भै झुमैलो।
मैकू बारा मास भै झुमैलो, यक्कि रितु रैगे भै झुमैलो।[20]

विरही के लिए बसंत के सुरंग और सुवासित पुष्पों से सजी प्रकृति भी आनंद प्रदान नहीं करती। संयोग के दिनों की स्मृति से विरह-वेदना और अधिक भड़क उठती है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि गढ़वाली लोकगीत साहित्य का काव्य-सौंदर्य एवं रसानुभूति सहज एवं हृदयग्राही है।

संदर्भ

1. लोकगीतों में रस योजना, डॉ॰ शिवदयाल जोशी, पृ॰ 20, 21
2. धुंयाळ (लोकगीत संग्रह), पृ॰ 32
3. धुंयाळ (लोकगीत संग्रह), पृ॰ 37
4. सिंहनाद, श्री भजनसिंह 'सिंह', पृ॰ 55
5. धुंयाळ (लोकगीत संग्रह), पृ॰ 100
6. धुंयाळ (लोकगीत संग्रह), पृ॰ 74
7. धुंयाळ (लोकगीत संग्रह), पृ॰ 75

8. धुंयाळ (लोकगीत संग्रह), पृ॰ 138
9. धुंयाळ (लोकगीत संग्रह), पृ॰ 139
10. धुंयाळ (लोकगीत संग्रह), पृ॰ 121
11. धुंयाळ (लोकगीत संग्रह), पृ॰ 141
12. धुंयाळ (लोकगीत संग्रह), पृ॰ 45
13. धुंयाळ (लोकगीत संग्रह), पृ॰ 141
14. धुंयाळ (लोकगीत संग्रह), पृ॰ 58
15. धुंयाळ (लोकगीत संग्रह), पृ॰ 74
16. धुंयाळ (लोकगीत संग्रह), पृ॰ 45
17. धुंयाळ (लोकगीत संग्रह), पृ॰ 125
18. धुंयाळ (लोकगीत संग्रह), पृ॰ 140
19. धुंयाळ (लोकगीत संग्रह), पृ॰ 143
20. धुंयाळ (लोकगीत संग्रह), पृ॰ 99

द्वारा प्रो॰ कुसुम डोभाल (मिश्रा)
36 **प्रोफेसर्स कालोनी**
स्वामी रामतीर्थ परिसर बादशाहीथौल, टिहरी
उत्तराखंड 249001
मो॰ 08126297920

'गोदान' में 'होरी' की मौत के सामाजिक यथार्थ के आयाम

डॉ॰ आशीष पांडेय

प्रेमचंद की अधिकतर कहानियों और उपन्यासों के नायक-नायिकाओं की कहानी के अंत में मृत्यु होती है। प्रेमचंद के पात्रों की इस तरह की मृत्यु के पीछे एक कटु सामाजिक यथार्थ है, एक आप्लावित विशद् विषाद से ओतप्रोत यथार्थ। उनके पात्रों की मृत्यु विभिन्न रूपों में आती है। बहुत सी जगह आत्महत्या है, तो कहीं हत्या और कहीं अभाव या पीड़ा के चलते असामयिक दुखांत मृत्यु। स्वाभाविक मृत्यु भी है, पर वह भी उतनी ही प्रभावी है जितनी ये घटनाएँ। अधिकतर कहानियों में इस तरह की मृत्युमयी घटना भले ही वह शुरूआत में हो, बीच में हो या फिर अंत में, के बाद कहानी का उद्देश्य या व्यवहार या संदेश पूरी कहानी को अपने में समेट लेता है। वह चाहे 'प्रेमाश्रम' में 'गायत्री' की मृत्यु हो, 'निर्मला' में 'मंशाराम' की मौत हो या फिर 'रंगभूमि' में 'सूरदास', गोदान में 'होरी' या फिर 'कफन' में 'बुधिया' की मौत।

'गोदान' भारतीय कृषक-जीवन का महाकाव्य माना जाता है। भारतीय कृषक के त्रासद जीवन का 'गोदान' में उपस्थित यह चित्र आजादी के दशक-भर पहले आया था। इस वजह से सवाल यह भी उठना चाहिए कि अगर यह दुखांत गाथा भारतीय कृषक-जीवन का महाकाव्य है तो हिंदुस्तान की 75 प्रतिशत आबादी इसी तरह के सामाजिक परिप्रेक्ष्य में आज भी जीने को अभिशप्त क्यों है? 'गोदान' भारतीय कृषक की जीवन कथा नहीं, बल्कि 'मृत्युगाथा' है। वह होरी या होरी के रूप में भारतीय कृषक का संसार नहीं दिखाती, बल्कि एक सीधे-सादे किसान की टूटती उम्मीदें, बिखरते घर, तार-तार होती 'मरजाद' और दम तोड़ती ज़िंदगी को दिखाती है। होरी की मौत नि:संदेह हिंदी साहित्य की सबसे कारूणिक और मार्मिक मौतों में से है। इसे सबसे करुण मौत बनाने के पीछे कारण भयावह होकर नहीं दिखते, क्योंकि वह एक जोंक की तरह चूसते रहते हैं। उसका घर बिखरता रहता है, यकायक नहीं, बल्कि साधारण घटनाओं की तरह। हीरा, शोभा के बाद गोबर वैसे ही घर से अलग होते रहते हैं, जैसे हर किसान के घर में सामान्यतया कर्ज बढ़ता रहता है, घर में फाके पड़ने की नौबत आ जाती है। कहीं कुछ जोशीला-सा होता ही नहीं है, कहीं कुछ उजला-सा दिखता ही नहीं है। धीरे-धीरे सब-कुछ घटता-मिटता चला जा रहा है, यही छोटी-छोटी घटनाएँ उसे घसीटती लिए चली जाती हैं मौत की तरफ। 'महतो' होने की 'मरजाद', घर का बड़ा होने की जिम्मेदारी, 'रायसाहब' के घर की बात भी जाने रहने का 'गर्व', और गोदान करने जैसी मामूली-सी आकांक्षाएँ और उपलब्धियाँ कैसे एक किसान को मजदूर और मजदूर को लाश बना देती हैं, यह अलग से चमककर नहीं आता। इस संदर्भ में रामविलास शर्मा

का संदर्भ उल्लेखनीय है, 'यहाँ सैलाब का वेग नहीं है। लहरों के थपेड़े नहीं हैं। यहाँ ऊपर से शांत दिखने वाली नदी की भँवरे हैं, जो भीतर-ही-भीतर मनुष्य को दबाकर नदी की तलहटी से लगा देती हैं और दूसरों को वह तभी दिखाई देता है, जब उसकी लाश उतराती हुई बहने लगी।'[1]

होरी अवध के एक गाँव का किसान है। गाँवों में किसान को सम्मानित समझा जाता है। किसान का सम्मान उसके लहलहाते खेत और दरवाजे की चरनी पर बँधे गाय-बैल ही होते हैं। होरी का घर टूटने के बाद यह दोनों उसे उस माफिक मयस्सर नहीं हैं, पर उसकी व्यावहारिक बुद्धि और रायसाहब से मिले-जुले रहने का प्रसाद ही था कि उसकी 'मरजाद' कायम थी। 'दोनों ओर खेत में काम करने वाले किसान उसे देखकर राम-राम करते और सम्मान भाव से चिलम पीने का निमंत्रण देते.. उसके अंदर बैठी सम्मान लालसा ऐसा आदर पाकर सूखे मुख पर गर्व की झलक पैदा कर रही थी। मालिकों से मिलते-जुलते रहने का ही तो यह प्रसाद है कि सब उसका आदर करते हैं, नहीं तो कौन पूछता? पाँच बीघे के किसान की बिसात ही क्या?'[2] इसी 'मरजाद' की 'तार-तार' साख को बचाए रखने की चिंता और उसकी 'आदमियत' होरी को धर्म और स्वार्थ के झूले पर मौत की तरफ हिलकोरें देती रहती है। प्रेमचंद 'गोदान' के शुरुआती पहले-दूसरे पन्नों पर ही बहुत कुछ साफ कर देते हैं। एक गरीब किसान परिवार का मुखिया होरी, जिसकी पत्नी दवा-दारू तक का इंतजाम न कर पाने के कारण अपने तीन बच्चों की मौत देख चुकी है। 'तीन लड़के बचपन में ही मर गए। उसका मन आज भी कहता था, अगर उनकी दवादारू होती तो वे बच जाते, पर वह एक धेले की दवा भी न मँगवा सकी थी।'[3] हर गृहस्थ की तरह एक गऊ की लालसा होरी के मन में भी संचित है। जीवन का सबसे बड़ा स्वप्न, सबसे बड़ी साध। 'मरजाद' बनी रहती अगर दरवाजे पर एक कबरी गाय बँध जाती, लेकिन सवाल यह है कि जीने भर के लिए खेती कर पाने वाला एक गरीब किसान, जिसके ऊपर सालों से ब्याज चुकाने के बावजूद गाँव के लगभग हर महाजन, साहूकार का कर्ज चढ़ा हुआ है, वह भला ऐसी इच्छा कैसे कर सकता है? पर शायद कर भी सकता था, लेकिन होरी के 'होरी' होने ने उसको ऐसा न करने दिया। होरी के इस 'महतो' होने और 'महतो' बने रहने ने उसे जीने नहीं दिया और अंत में खत्म कर दिया।

गोदान में होरी की मृत्यु की इस 'सामाजिक प्रक्रिया' में प्रेमचंद उसकी आदमियत को उभारते हुए चलते हैं, जो उसकी मौत की मुख्य वजह बना। दशहरे पर रायसाहब के धनुष यज्ञ में शगुन के रुपए हर किसान को देने होते हैं। होरी भोला से कहता है, 'उसी की चिंता तो मारे डालती है दादा, अनाज सब का सब खलिहान में ही तुल गया। जमींदार ने अपना लिया, महाजन ने अपना लिया। मेरे लिए पाँच सेर अनाज बच रहा। यह भूसा तो मैंने रातों-रात ढोकर छिपा दिया था, नहीं तो एक तिनका भी नहीं बचता। जमींदार तो एक ही है मगर महाजन तीन-तीन हैं। सहुआइन अलग और मँगरू अलग और दातादीन पंडित अलग। किसी का ब्याज भी पूरा न चुका। जमींदार के भी आधे रुपए बाकी रह गए। सहुआइन से फिर रुपए उधार लिए तो काम चला। ... हमारा जन्म इसीलिए हुआ है कि अपना रक्त बहाएँ और बड़ों का घर भरें। मूल का दुगुना सूद भर चुका पर मूल ज्यों-का-त्यों सिर पर सवार है।'[4]

उधार, सूद, लगान, बेगार, शोषण यह सब उसी सामाजिक प्रक्रिया के अंग थे, जो होरी की मौत के लिए कुचक्र रचते हैं। एक भँवरजाल, एक चक्रव्यूह जिसे बेध पाना होरी जैसे

सीधे-सादे किसानों के बस की बात नहीं थी। मँगरू साह से पाँच साल पहले साठ रुपए उधार लिए थे। उसमें साठ दे चुकने के बाद भी साठ बने रहते हैं। इसी तरह दातादीन, सहुआइन सब का कर्ज है। इसके बाद भी घर में फाके की नौबत बनी रहती है। गोबर, सोना के विवाह की चिंता अलग और विवाह में 'मरजाद' बनाए रखने की चिंता अलग। 'होरी जब काम-धंधे से छुट्टी पाकर चिलम पीने लगता था तो यह चिंता एक काली दीवार की भाँति उसे चारों ओर से घेर लेती थी, जिसमें से निकलने की कोई गली न सूझती थी। अगर संतोष था तो यही कि यह विपत्ति अकेले उसी के सिर नहीं थी। प्राय: सभी किसानों का यही हाल था। अधिकांश की दशा तो इससे भी बदतर थी। शोभा और हीरा को उससे अलग हुए अभी कुल तीन साल ही हुए थे। मगर दोनों पर चार-चार सौ का बोझ लद गया। झींगुर दो बैल की खेती करता है, उस पर एक हजार से कुछ बेसी ही देना है। जियावन महतो के घर भिखारी भीख भी नहीं पाता, लेकिन करजे का कोई ठिकाना नहीं। यहाँ कौन बचा है?'[5]

जमींदार, कारिंदा, दारोगा जैसे न्याय के पहरुए वाले पदों पर बैठे लोगों के लिए आसामी केवल पैसे कमाने का यंत्र था। होरी जैसे गरीब किसानों को निचोड़ने पर भी कुछ नहीं निकलता पर 'महाजनी व्यवस्था' इसका भी बखूबी इंतजाम करती थी। किसान को धर्म, न्याय, सरकार, दंड का भय दिखाकर डराती और उसके बाद बचाव के लिए खुद ही रुक्का लिखवाकर उधार कर्ज देते। एहसान अलग और लाभ अलग। किसान बस इस बात में ही संतोष कर लेते कि ऐसे गाढ़े वक्त में, इतने कर्ज के बाद भी उधार दे देना महाजनों की भलमनसाहत है। हीरा के घर की तलाशी के समय होरी को गाँव के महाजन यही भय दिखाकर दारोगा को घूस देने के लिए उधार देते हैं। धनिया कहती है, 'हम बाकी चुकाने को पच्चीस रुपए माँगते थे, किसी ने न दिया। आज अँजुली भर रुपए ठनाठन निकाल के दे दिए। मैं सब जानती हूँ। यहाँ तो बाँट-बखरा होने वाला था, सभी के मुँह मीठे होते। ये हत्यारे गाँव के मुखिया हैं, गरीबों का खून चूसने वाले! सूद-ब्याज, डेढ़ी-सवाई, नजर-नजराना, घूस-घास जैसे भी हो, गरीबों को लूटो। उस पर सुराज चाहिए। जेल जाने से सुराज न मिलेगा। सुराज मिलेगा धरम से न्याय से।'[6] गोबर के भाग जाने और झुनिया के घर में रखने की सजा भी होरी को यह महाजनी सभ्यता देती है। खेत में फसल खड़ी करने के लिए जुताई से लेकर कटाई तक किसान अपने पसीने को माटी के साथ मिलाकर हाड़तोड़ देता है। फसल कटने के लिए खेत में पहुँचते ही महाजन वहाँ पहुँच जाते हैं, अपने-अपने बही-खाते लेकर। फसल कटने, ओसाने के बाद किसान खाली हाथ अपना-सा मुँह लेकर घर चले आते। कारण यह कि सब बाँट बखरा खलिहान में ही हो जाता। कोई फसल कब्जा लेता तो कोई उसको दाम देकर खरीद लेता और वह दाम अपने पुराने उधार के सूद में काट देता। साल भर मेहनत के बाद तैयार ऊख के पैसे मिल के गेट पर जमे झिंगुरीसिंह ने ऐंठ लिए। होरी कहता है, 'शोभा इसके रुपए दे दो। समझ लो ऊख में आग लग गई थी। मैंने भी यही सोचकर मन को समझाया है।[7]' यह सामाजिक व्यवस्था और महाजनी सभ्यता प्रेमचंद के युग में किसानों के लिए साक्षात् 'यमराज' थी। 'गाँववालों में महाजनी का कुछ ऐसा प्रभाव था कि जिसके पास दस-बीस रुपए जमा हो जाते, वही महाजन बन बैठता था।' एक महाजन मौका पाते ही अपने आसामी को दबा लेता था, उससे बचने के लिए आसामी को दूसरा महाजन कुछ कम दाम पर उधार चढ़ा देता। कुल मिलाकर यह कि कर्ज कभी न उतरता, वह रक्तबीज की तरह बढ़ता ही

रहता।

गोदान में होरी की मृत्यु की विभीषिका ही इस महाजनी सभ्यता को नग्न कर सकती थी। फटेहाल और फाकेपरस्ती में भी धर्मभीरू किसानों को 'मरजाद' की चाह मार देती थी। होरी के अंदर आदमियत होना और मरजाद बचाए रखने की इच्छा थी और यही उसका सबसे बड़ा अपराध था, जिसकी सजा केवल घर गिरवी रखकर, बेटी को अधेड़ से रुपए लेकर ब्याह कर या किसान से मजूर बनकर ही नहीं चुकाई जा सकती थी। उसके बदले होरी की बलि चढ़नी थी। यही उसकी नियति थी। प्रेमचंद उपन्यास के शुरुआत में ही इसका आभास करा देते हैं, 'साठे तक पहुँचने की नौबत न आ पाएगी धनिया, इसके पहले ही चल देंगे।'[8] होरी का मरना आवश्यक नहीं था, वह बच भी सकता था, पर उस 'मरजाद' के साथ नहीं जिसके लिए वह ज़िंदगीभर लड़ता रहा। होरी जानता था कि 'जब दूसरे के पाँव तले अपनी गर्दन दबी हो तो उन पाँवों को सहलाने में ही कुशल है।'[9] इसके बावजूद अपनी ज़िंदगीभर की साध हीरा के हाथों खत्म होने के बाद भी उसका बखार भरता है। पंचों के धमकाने के बाद भी वह गर्भवती झुनिया को घर में रखता है और डांड़ भरता है। बैल खोल लेने पर भी भोला को गाँव की सरहद में घेरे जाने के बाद भी वह उसे भोला के 'धरम' पर छोड़ देता है। 'सिलिया' चमाइन को उसके परिवार और मातादीन के त्यागने के बाद भी वह अपने दालान के दरवाजे खोल देता है। उन पाँवों को सहलाने से इंकार करना ही होरी की मौत का कारण तैयार करने लगता है। होरी का स्वभाव भी उसकी मौत की वजह बनता है। अपनी आँखों से हीरा को गाय को जहर देते देखने के बाद भी वह अपने बेटे की झूठी कसम खा लेता है। पुनिया के बखार भरने में अपना बखार भूल जाता है। 'मरजाद' बचाने के बावजूद वह झुनिया के प्रति निर्मम नहीं बन पाता। धर्मभीरू होने के बावजूद वह 'बिरादरी के डर से हत्यारे का काम नहीं कर सकता।'[10] इसके बावजूद बिरादरी के सामने सीधा कैसे खड़ा हो सकता है? पंचायत में तावान झेलता है, डांड़ झेलता है। सारी फसल और सौ रुपए का कर्ज पंचों को सौंप देता है। 'बिरादरी का वह आतंक था कि डांड़ भरने के लिए अपने सिर पर लादकर खलिहान से अनाज ढो रहा था, मानो अपने हाथों अपनी कब्र खोद रहा हो। जमींदार, सरकार, साहूकार किसका इतना रोब था? कल बाल-बच्चे क्या खाएँगे, इसकी चिंता प्राणों को सोखे लेती थी, पर बिरादरी का भय पिशाच की भाँति सिर पर सवार आंकुश दिए जा रहा था। बिरादरी से पृथक जीवन की वह कोई कल्पना ही नहीं कर सकता था। शादी-ब्याह, मुंडन-छेदन, जन्म-मरण सब कुछ बिरादरी के हाथ में है। बिरादरी उसके जीवन में वृक्ष की भाँति जड़ जमाए हुए थी और उसकी नसें उसके रोम-रोम में बिंधी हुई थीं। बिरादरी से निकलकर उसका जीवन विशृंखल हो जाएगा-तार-तार हो जाएगा।'[11]

सारी खड़ी फसल डांड़ चढ़ जाने के बाद भी, एक जून चबेना और दूसरे जून कभी-कभार आधे पेट खाने के बाद भी, सैकड़ों का कर्ज सिर पर चढ़ जाने के बाद भी होरी अपनी आदमियत नहीं छोड़ पाता। होरी अपनी 'मरजाद' नहीं छोड़ सकता। बड़ी बात यह भी है कि यह मरजाद, बिरादरी सभी उन्हीं पंचों के इशारे पर नाचते थे, जो इंसान को कर्ज के नाम पर चूस रहे थे। लगान लेकर भी रसीद नहीं देते और बाद में उसका डर दिखाकर, 'बाकी' दिखाकर घर गहन रखवा लेते या फिर 'चिरौरी-विनती' के बाद कर्ज देकर 'बाकी' खत्म करते। शादी-ब्याह में खुद ही किसानों को उनकी 'खंडहर और खोखली' मरजाद की याद दिलाकर

जबरन खर्च करवा देते, वो भी कर्ज देकर। किसान इस षड्यंत्र को समझ पाने में नाकाम थे। सोना के ब्याह के लिए फटेहाल होरी कैसे इंतजाम करे? और न कर सके तो 'मरजाद' कैसे बचे। 'कुश कन्या होरी भी दे सकता था! इसी में उसका मंगल था, लेकिन कुल मर्यादा कैसे छोड़ दे? उसकी बहनों के विवाह में तीन-तीन सौ बाराती द्वार पर आए थे। दहेज भी अच्छा ही दिया गया था। नाच-तमाशा, बाजा-गाजा, हाथी-घोड़े सभी आए थे। आज भी बिरादरी में उसका नाम है। दस गाँव के आदमियों से उसका हेल-मेल है। कुश कन्या देकर वह किसे मुँह दिखाएगा? इससे तो मर जाना अच्छा है।'[12] लेकिन कितने दिन फटे चिथड़े में इज्जत बचाई जा सकती। सोना के विवाह में कर्ज का बोझ चढ़ाया। बाकी कर्ज में जमीन-खेत चले गए। रूपा की शादी ऐसे में कैसे होती? जमीन की बेदखली होनी है। ऐसे में 'बाप दादों की इतनी ही 'निसानी' भला कैसे बच सकती है? थके-हारे होरी को अपने से शायद दो-चार साल छोटे रामसेवक महतो से रूपा का ब्याह करने पर मजबूर होना पड़ा। इसके बदले मिले दो सौ रुपयों से भले बेदखली रुक गई और 'जैदाद' बच गई पर बहुत कुछ चला गया। 'होरी ने रुपए लिए तो उसका हाथ काँप रहा था। उसका सिर ऊपर न उठ सका, मुँह से एक शब्द न निकला, जैसे अपमान के अथाह गढ़े में गिर पड़ा है और गिरता चला जाता है। आज तीस साल तक जीवन से लड़ते रहने के बाद वह परास्त हुआ है और ऐसा परास्त हुआ है कि मानो उसको नगर के द्वार पर खड़ा कर दिया गया है और जो आता है, उसके मुँह पर थूक देता है। वह चिल्ला-चिल्लाकर कह रहा है—भाइयो, मैं दया का पात्र हूँ। मैंने नहीं जाना जेठ की लू कैसी होती है! और माघ की वर्षा कैसी होती है! इस देह को चीरकर देखो, इसमें कितना प्राण रह गया है, कितना जख्मों से चूर, कितना ठोकरों से कुचला हुआ? उससे पूछो, कभी तूने विश्राम के दर्शन किए, कभी तू छाँह में बैठा? उस पर यह अपमान! और वह अब भी जीता है, कायर, लोभी, अधम। उसका सारा विश्वास जो अगाध होकर स्थूल और अंधा हो गया था। मानो टूक-टूक उड़ गया है।[13] अंत समय तक होरी 'मरजाद' बचाने के लिए जिस जमीन के लिए 'खटता' रहा। वह भले ही दूसरों की निगाह में बच गई हो, पर होरी खुद 'बिक' चुका था। इस हाल में भी अमीरों की तरह उसका अस्तित्व दूसरों की निगाह में बने रहने में न था, खुद की निगाह में था, और वहाँ वह गिर चुका था। रूपा का विवाह भले हो गया, पर होरी खुद 'अनाथ' हो गया, क्योंकि उसकी अपनी निगाह में सबसे बड़ी थाती खो चुकी थी। अंतिम बार गोबर के जाते वक्त नहीं रहा जाता और जो अपराध उसकी आत्मा को मथ रहा था, उसे वह रोते हुए स्वीकारता है, 'बेटा, मैंने इस जमीन के मोह से पाप की गठरी सिर लादी। न जाने भगवान मुझे उसका क्या दंड देंगे।[14]

होरी की यह आदमियत उसके अंत को उससे मिला देती है। गुजारे भर की खेती में अगर वह सिर्फ गुजारा करता तो संभव है कि होरी न मरता पर वह न कर सका। गोबर कहता है, 'जिसे पेट की रोटी मयस्सर नहीं उसके लिए इज्जत मरजाद सब ढोंग है। औरों की तरह तुमने भी दूसरों का गला दबाया होता, उनकी जमा मारी होती तो तुम भी भले आदमी होते। तुमने कभी नीति को नहीं छोड़ा, यह उसी का दंड है। तुम्हारी जगह मैं होता तो या तो जेहल में होता या फाँसी पर गया होता।'[15] होरी ही नहीं यह दशा हर किसान की थी। 'मानो उनके प्राणों की जगह वेदना ही बैठी उन सबको नचा रही हो।'

सब हो जाने के बाद भी वह इंसानियत होरी में बनी हुई है। गोबर परदेश में है। सोना

अपने घर में खुश है। रूपा अपने घर में है, पर 'रामसेवक के पैसे अदा करने हैं' यह चिंता होरी को भी है, धनिया और गोबर को भी। जितनी जल्दी दे सके तो शायद कुछ बोझ घटे सिर से। मंगल के लिए गाय भी लेनी है। जो गाय उपन्यास के पहले पन्ने से होरी अपने आँगन के लिए चाहता है। उसी की साध होरी के दबे मन में एक बार फिर रूप लेती है, पर अबकी अपने लिए नहीं, अपनी 'मरजाद' के लिए नहीं। अबकी मंगल के दूध पीने के लिए गाय चाहिए। आठ आने रोज पर 'होरी महतो' किसान से 'मजूर' बन जाता है। दिन-भर लू में काम करने के बाद भी रात को बारह-एक बजे तक सुतली कातता। धनिया को चिंता है, पर वह उसे नहीं रोक पाती और उसके साथ सुतली कातती। 'गाय तो लेनी ही है। रामसेवक के रुपए भी अदा करने हैं।'[16] पर होरी न चल सका। 'महाजन' और 'मरजाद' के बीच जिंदगीभर पिसता एक किसान अपनी मामूली-सी साध लिए मर जाता है। 'धनिया ने मौत की सूरत देखी थी।' इतनी गरीबी के बाद भी जिस आधार पर उसका जीवन टिका था। वह खिसका जा रहा था। सारा गाँव जुटा था। खाट पर पड़ा होरी कुछ बोल नहीं पा रहा था। अपने परिवार को सुखी देखने की उसकी अधूरी रह चुकी आकांक्षा उसके हृदय को चीर रही थी। 'उसकी आँखों से बहते आँसू बतला रहे थे कि मोह का बंधन तोड़ना कितना कठिन हो रहा है। जो कुछ अपने से नहीं बन पड़ा, उसी के दु:ख का नाम तो मोह है। पाले हुए कर्त्तव्य और निपटाए हुए कामों का क्या मोह! मोह तो उन अनाथों को छोड़े जाने में है, जिनके साथ हम अपना कर्त्तव्य न निभा सके। उन अधूरे मंसूबों में है, जिन्हें हम पूरा न कर सके।'[17] यह अपने जीवन का या अपना नहीं, बल्कि अपनों का मोह था। होरी कुछ न कर सका था अपने परिवार के लिए। इसलिए वह मर्मांतक पीड़ा से गुजर रहा था। होरी का देवत्व उसे धराशायी कर चुका था। धनिया मिटती हुई परछाई को पकड़ने को दौड़ रही थी। आँखों से आँसू झर रहे थे और वह भाग-भागकर भूने आम का पना बनाने और भूसी रगड़ने में जुटी थी। 'धनिया ने मौत को देखा था' वह उसकी आहट पहचान गई थी, पर वह इस तरह 'होरी' को मौत के मुँह में कैसे जाने दे सकती थी। होरी ने 'धनिया को दीन आँखों से देखा, दोनों कोनों से आँसू की दो बूँदें लुढ़क पड़ीं, क्षीण स्वर में बोला–'मेरा कहा-सुना माफ करना धनिया! अब जाता हूँ। गाय की लालसा मन में ही रह गई। अब तो यहाँ के रुपए क्रिया-करम में जाएँगे, रो मत धनिया। अब कब तक जिलाएगी? सब दुर्दशा तो हो गई। अब मरने दे।'[18]

होरी के अंतिम समय के ये शब्द एक औसत दर्जे के किसान के मजूर बनने के बीच की सारी तकलीफ को बयां कर देते हैं। क्या चाहता था होरी? महज दोनों जून की रोटी और एक गाय ताकि वह अपना इहलोक और परलोक बना सके। इसके लिए सिर्फ सीधा होना जरूरी नहीं था, पर टेढ़ा होकर भी वह क्या कर लेता। अगर उसकी आदमियत न होती, तो भी व्यवस्था उसे जीने न देती। पाँच साल बाद पागलखाने से लौटा हीरा जब कहता है कि भैया तुम दुबले हो गए हो, तो होरी कहता है कि 'मोटे वह होते हैं, जिन्हें न रिन का सोच है न इज्जत का। इस जमाने में मोटा होना बेहयाई होती है। सौ को दुबला करके तब एक मोटा होता है।'[19] इसके बावजूद वह ज़िंदा रह सकता था, पर उसकी इंसानियत ने उसे जीने न दिया। 'इनका देवत्व ही इनकी दुर्दशा का कारण है। काश ये आदमी ज्यादा और देवता कम होते तो ठुकराये न जाते।'[20] बाप के मन की साध रूपा के मन में भी हरी थी। इसीलिए ससुराल से वह अपने घर के लिए गाय भिजवाती है, पर गाय के बेलारी गाँव पहुँचने से पहले ही होरी की मृत्यु हो जाती है। संभव है

कि होरी अगर जिंदा रहता, तो वह गाय वापस कर देता और मान लो ले भी लेता तो उसके पैसे देने की चिंता कुछ दिन बाद उसे मार ही डालती। कुल मिलाकर होरी को मरना ही था। हिंदी साहित्य के आलोचक होरी की मौत में 'हीरोइज्म' तलाशते हैं और उसे न पाने की घोषणा करते हैं। यह बहुत ही हास्यास्पद प्रयास है कि उसकी मृत्यु का एक 'हीरो' होने या न होने की दृष्टि से पोस्टमार्टम करना। होरी पहले पन्ने पर एक गरीब साधारण, सम्मानित किसान से अंत में अंदर और बाहर से टूटे हुए भूखे मजदूर की स्थिति में पहुँचकर मर जाता है। मरने की यही प्रक्रिया होरी या होरी जैसे लाखों किसानों की त्रासदी है। अगर होरी न मरता तो शायद पाठकों को इस विभीषिका का अंदाजा ही नहीं हो पाता, जो किसानों को कर्ज की चक्की में पीसता ही नहीं बल्कि उनकी जान भी ले लेता है। गाँव के ही पटवारी, साहूकार, महाजन चाचा, ताऊ कहकर पालागन पाने वाले लोग अपने ही पड़ोसी की इस तरह सूद के हथियार से 'हत्या' कर देते हैं। इसे ही प्रेमचंद 'महाजनी सभ्यता' कहते हैं, जिसका वे ताउम्र अपनी कलम से प्रतिकार करते रहे।

प्रेमचंद ने 'मृत्यु' के वर्णन का अपने लेखन में बहुत प्रभावशाली ढंग से इस्तेमाल किया है। यह केवल उनकी कलम का कौशल नहीं, बल्कि युग यथार्थता की आवश्यकता है। 'गोदान' के 'होरी' की मृत्यु तयशुदा थी। वर्णन के अनुसार शायद पैंतालीस-पचास की उमर में ही होरी की मौत हो जाती है। होरी की मरणासन्न आर्थिक स्थिति उसे मृत्युशैया पर पहुँचा देती है। भले ही उसकी मौत के कारण 'आर्थिक' रहे हों, पर उसका आधार सामाजिक ही रहा था। होरी जैसे सीधे-सादे किसानों का तत्कालीन सामाजिक व्यवस्था भेड़ियों की तरह शिकार कर रही थी। कर्ज और सूद के 'इंजेक्शन' चुभो-चुभोकर उनके शरीर से खून निकाला जा रहा था। एक जून चबेने पर और दूसरे जून आधा पेट जौ की रोटी खाने वाला किसान भला कितना खून रखता, जो इस मकड़जाल के सामने लंबी उमर जी पाता। होरी की मृत्यु के जरिए प्रेमचंद ने 'महाजनी सभ्यता' के सबसे बड़े दंश को उभारा, जो कि उन जैसे साहित्यकार के ही बस की बात थी। उनका लेखकीय कौशल महज यथार्थ को उभारने में ही नहीं, होरी जैसे किसानों की नई पीढ़ी को गोबर जैसा होने का संदेश भी देना था कि अगर यह व्यवस्था न भंग की गई या इसे न तोड़ा गया तो न जाने कितने किसान मजूर बनकर लू में अपनी जान गँवाते रहेंगे। यह प्रेमचंद की प्रतिबद्धता ही है कि होरी की मृत्यु उन्हें अमर कर देती है।

संदर्भ

1. प्रेमचंद और उनका युग, डॉ॰ रामविलास शर्मा, राजकमल प्रकाशन, पृ॰ 97
2. गोदान, मुंशी प्रेमचंद, सुमित्र प्रकाशन, पृ॰ 7
3. गोदान, मुंशी प्रेमचंद, पृ॰ 5
4. वही, पृ॰ 20
5. वही, पृ॰ 31
6. वही, पृ॰ 99
7. वही, पृ॰ 159
8. वही, पृ॰ 6
9. वही, पृ॰ 5
10. वही, पृ॰ 109

11. वही, पृ॰ 111
12. वही, पृ॰ 218
13. वही, पृ॰ 304
14. वही, पृ॰ 305
15. वही, पृ॰ 305
16. वही, पृ॰ 306
17. वही, पृ॰ 309
18. वही, पृ॰ 309
19. वही, पृ॰ 308
20. वही, पृ॰ 265

3ए/163/2 **आवास विकास**
हंसपुरम्, नौबस्ता
कानपुर 208021 **उ॰प्र॰**
मो॰ 09415000808

डॉ॰ अशोक चक्रधर के काव्य में प्रगतिशीलता

खुशबू जादौन
बी॰एड॰, एम॰फिल॰
प्रो॰ आदित्य प्रचंडिया (निर्देशक)

'प्रगति' का साधारण अर्थ है–उन्नति करना या आगे बढ़ना, किंतु 'प्रगतिशील' का प्रगति शब्द साधारण प्रगति या उन्नति का बोधक न होकर एक विशेष ढंग से, एक विशिष्ट दिशा में आगे बढ़ने या उन्नति करने के अर्थ में प्रयुक्त होता है।[1]

जब इस 'प्रगति' शब्द में 'शीलतता' प्रत्यय जुड़ जाता है, तो इसके द्वारा निर्मित 'प्रगतिशीलता' शब्द से एक विशेष प्रवृत्ति का बोध होता है। अत: 'प्रगतिशीलता' का तात्पर्य है–आगे की ओर ले जानेवाली मानसिकता या प्रवृत्ति-विशेष। इसे रेखांकित करते हुए प्रेमचंद ने कहा है, 'वह सब-कुछ, जो हमें निष्क्रियता, अकर्मण्यता, अंधविश्वास की ओर ले जाता है, हेय है; वह सब-कुछ, जो हममें समीक्षा की मनोवृत्ति लाता है, जो हमें प्रियतम रूढ़ियों को भी बुद्धि की कसौटी पर कसने के लिए प्रोत्साहित करता है, जो हमें कर्मण्य बनाता है और हममें संगठन की शक्ति लाता है, उसी को हम प्रगतिशील समझते हैं।'[2]

गति जीवन का पर्याय है और अगति मृत्यु का। गति 'प्र' उपसर्ग के योग से निर्मित होकर जिस शब्द के रूप में प्रस्तुत होती है, उस प्रगति का सामान्य अर्थ है–आगे बढ़ना। जब यही प्रगति साहित्य के संदर्भ में प्रस्तुत होती है, तब वह उस साहित्य-सर्जना की अवबोधक बनकर आती है, जो जीवन को निर्माणात्मक गति प्रदान करती है।[3]

डॉ॰ अशोक चक्रधर एक प्रगतिशील कवि हैं। उनकी कविताओं और विचारधारा में नज़र आनेवाली प्रगतिशीलता के बारे में कविवर प्रदीप चौबे ने कहा है–'यहाँ यह जान लेना युक्तिसंगत है कि अशोक जी की मुहिम आम आदमी को 'श्वास' के खिलाफ खड़ा करने की नहीं, बल्कि अपने पाँवों पर खड़ा करने की और उसे भी श्वास बनाने की, देखने की है और यही समाज के प्रति असली प्रतिबद्धता है, प्रगतिशीलता है। सब संपन्न हों, संतुष्ट हों, उन्नत हों, यही कोशिश, यही ध्वनि उनकी कविता का सामाजिक आधार है।[4]

युगीन साहित्यकार का समाज से सीधा संबंध होता है, वह अपनी परिस्थितियों को नकार नहीं सकता, बल्कि उन परिस्थितियों के असंगत तत्त्वों से संघर्ष करता है। प्रगतिशील साहित्य हमेशा जनता के हित की वकालत करता है। इसलिए वह तटस्थ होकर रह ही नहीं सकता। उसे जनता के साथ खड़ा होना ही पड़ता है। रचनाकार में इतनी ताकत होती है कि वह ज़माने की चाल और दिशा को बदल सकता है।

डॉ॰ अशोक चक्रधर एक ऐसे रचनाकार हैं, जो राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर घटित

होने वाली समस्त घटनाओं से प्रभावित होते हैं। वे हर विसंगति पर प्रहार करके अपने विचारों के माध्यम से केवल उस समस्या को प्रस्तुत ही नहीं करते, वरन् समाधान के बिंदु पर ले जाकर छोड़ते हैं।

जिस समय हिंदुस्तान की आजादी की घोषणा हुई, उस समय रात के बारह बजे थे। इस ऐतिहासिक तथ्य को कवि ने बहुत ही सलीके के साथ व्यक्त किया है–

बद से बदतर हाल हैं, बीते इतने साल
अब रह-रहकर सालता, मुझको यही सवाल।
आजादी हमको मिली, जब थी आधी रात
हुआ सवेरा ही नहीं, क्या अचरज की बात।[5]

राजनीतिक परिवेश निरंतर कलुषित होता जा रहा है। नेताओं की कथनी और करनी में पर्याप्त अंतर है। इन विडंबनाओं पर डॉ॰ अशोक चक्रधर अपनी लेखनी के माध्यम से सफलतापूर्वक प्रहार किया है। स्वतंत्रता से पूर्व जनता के दुख-दर्द को दूर करने का आश्वासन जिन नेताओं ने दिया, आज वे नेता ही जनता के दुख का निमित्त बन गए हैं। अपनी कविता 'भोले-भाले' में आज के राजनेताओं के बारे में डॉ॰ अशोक चक्रधर ने कहा है–

उजली धवल खादी में
मन के काले हैं
ऊपर से भोले हैं
अंदर से भाले हैं।[6]

डॉ॰ अशोक चक्रधर ने आधुनिक समाज में व्याप्त भ्रष्टाचार के प्रति लोगों को जागरूक किया है। 'भ्रष्टाचार महोत्सव' शीर्षक से लिखी गई कविता में कवि ने इसी बात को स्वीकार किया है। एक स्थान पर वे कहते हैं कि जिस प्रकार गीता में भगवान श्रीकृष्ण ने अपना विराट् स्वरूप दिखाकर सबको अचंभित कर दिया था, ये भ्रष्टाचारी भी आजकल ऐसे ही विराट् रूप दिखाकर समाज को अचंभित करते हैं–

जैसे गीता में
भगवान श्रीकृष्ण ने
अपना विराट् स्वरूप दिखाया
और महत्त्व बताया था
उतना पवित्र पावन तो नहीं
पर कुछ-कुछ
वैसा ही था नज़ारा
विराट भ्रष्ट नेताजी ने
मेघ-मंह स्वर में उच्चारा–
ये सब भ्रष्टाचारी मेरा ही स्वरूप हैं
मैं एक हूँ, लेकिन मेरे करोड़ो रूप हैं।[7]

डॉ॰ अशोक चक्रधर ने समाज में व्याप कुरीतियों और बुराइयों को समाप्त करके एक स्वस्थ समाज का निर्माण करने का प्रयत्न किया है। समाज के भीतर धार्मिक उन्माद के बीज

बोने वाले इन सांप्रदायिक शैतानों पर प्रहार करते हुए कहा है–

दंगे हमारे यहाँ
समारोहपूर्वक मनाए जाते हैं
रोशनी के लिए
घर जलाए जाते हैं
बेरोज़गारों को काम मिल जाता है
नागरिकों को लूट का
सस्ता माल मिल जाता है।[8]

छोटे बच्चे भगवान का रूप होते हैं। जाति, धर्म और भेद-भाव की बातों का उन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है। डॉ॰ अशोक चक्रधर ने अपनी पुस्तक 'चुटपुटकुले' में बच्चों के मनोविज्ञान को आधार बनाकर अनेक श्रेष्ठ कविताओं की रचना की है–

कभी-कभी बच्चे
बातें करते हैं बुनियादी
स्नेहा की एक बात ने मेरी नींद भुला दी।
चौरासी के दंगों में
जब कॉलोनी में
मचा था हाहाकार
स्नेहा ने पूछा–पापा,
हम हिंदू हैं या सरदार?[9]

कवि का मानना है कि जब पक्षियों तक को मंदिर और मस्ज़िद पर बैठने में कोई तकलीफ़ नहीं है, तो मनुष्य अपने आसपास छोटे-छोटे दायरे बनाकर क्यों जी रहा है? डॉ॰ अशोक चक्रधर ने इस विचार को इस प्रकार प्रस्तुत किया है–

चिड़िया बैठी गुरुद्वारे पर
गिरिजा, मंदिर मस्ज़िद पर
लेकिन क्यों जमकर बैठे हैं
अड़े हुए हम अपनी ज़िद पर।[10]

डॉ॰ अशोक चक्रधर एक संवेदनशील रचनाकार हैं। उन्होंने अपनी कविताओं में कल्पनाशीलता के माध्यम से संवेदना, भावना और कल्पना के अद्‌भुत चित्र प्रस्तुत किए हैं। एक उदाहरण देखिए–

वो इन हाथों से
किसी मकान का
नक्शा बना सकता था
हाथों में बंदूक थामकर
देश को सुरक्षा दिला सकता था।
इन हाथों से
'ह' से 'हाथ' लिखकर

बच्चों को पढ़ा सकता था।[11]

डॉ॰ अशोक चक्रधर ने एक समय-विशेष पर बेरोज़गारी की स्थिति को स्वयं भी झेला है। इसलिए जब अपनी कविता में उस बेरोज़गार युवक के माध्यम से वे निम्नांकित पंक्तियाँ कहते हैं, तो लगता है कि बेरोज़गार युवक नहीं, स्वयं डॉ॰ अशोक चक्रधर का हृदय बोल रहा है–

ले जा, ले जा
ये फालतू हैं, बेकार हैं
मैं उन्हें बताऊँगा कि काट दिए
किसलिए? इसलिए कि
मैंने झेला है, भूख और ग़रीबी का
एक लंबा सिलसिला
पंद्रह साल हो गए
इन हाथों को
कोई काम ही नहीं मिला।[12]

डॉ॰ अशोक चक्रधर ने अपनी कविताओं और अपने जीवन में भी व्यक्तिगत रूप से हमेशा महिलाओं का आदर किया है। महिलाओं के प्रति उनकी सद्भावना का यह स्वर उनकी कविताओं में भरपूर मात्रा में दिखाई देता है। इसलिए 'कहानी' शीर्षक से लिखी अपनी कविता में, अपनी पत्नी पर शक करके फौजी जब वापिस लौट जाता है, तो उसके माध्यम से संदेश देते हुए डॉ॰ अशोक चक्रधर ने हिंदुस्तान की भोली-भाली स्त्री के चारित्रिक रूप को इस प्रकार प्रकट किया है–

कभी संयोग से
किसी गली में, सड़क पर
मौहल्ले या बाजार में
वो फौजी आपको मिले
तो उसे असलियत बता देना
उसे समझा देना।[13]

लौट जा, लौट जा
उसका बहुत ऊँचा चरित्र है
लौट जा मूरख
उसकी आस्था तो
गंगा से भी ज़्यादा पवित्र है।[14]

डॉ॰ अशोक चक्रधर ने समाज के वर्तमान स्वरूप को पहले देखा, परखा और समझा है, तत्पश्चात् उसके कारणों पर अपनी लेखनी का कौशल दिखायाा है। रिश्वत हमारे समाज में अमर बेल की भाँति फैलती जा रही है, जिसकी वजह से ईमानदारी का वृक्ष सूखता जा रहा है। इन्हीं विचारों की पुष्टि डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल के इस कथन से होती है–'रिश्वत हमारे देश के लिए अभिशाप बनकर उपस्थित हुई है। इससे अभिशप्त समाज का अंग-अंग भ्रष्टाचार के कोढ़

से गल रहा है। सरकारी विभाग ही क्यों, हर कार्यालय, घर, यहाँ तक कि शिक्षण-संस्थान भी इसके इंद्रजाल में अपने को नंगा करते हुए सौभाग्यशाली समझ रहे हैं। अब तो ऐसा प्रतीत होता है कि इसके सहयोग के बिना दो पग भी आगे बढ़ना असंभव हो गया है।'[15] रिश्वत के इस बढ़ते प्रभाव को डॉ॰ अशोक चक्रधर ने अपनी कविता 'नन्ही सच्चाई' में इस प्रकार प्रस्तुत किया है–

ये बात मैंने आपको इसलिए बताई
कि आजकल
छोटी मछली पकड़ने के लिए
बड़ा चारा करना पड़ता है सप्लाई।
पाँच हज़ार की नौकरी के लिए
पचास हज़ार का चारा
दस हज़ार की नौकरी के लिए
एक लाख का चारा।
लाखों के टेंडर के लिए चाहिए
करोड़ों का चारा
यानी गधों के लिए चाहिए
घोड़ों का चारा।[16]

महँगाई के कारण आम आदमी की स्थिति काफ़ी ख़राब है। वह अपनी आमदनी का दायरा जितना अधिक बढ़ाता है, महँगाई उसकी तुलना में और भी अधिक बढ़ जाती है। आम आदमी के इस मनोविज्ञान को डॉ॰ अशोक चक्रधर ने इस प्रकार प्रस्तुत किया है–

लाचार है आदमी
महँगाई के आगे
कीमतें
कसकर पकड़े हुए हैं
चीज़ों के पीछे
कैसे भागें?[17]

प्रकृति में प्रतिक्षण परिवर्तन होता रहता है। आधुनिक समाज इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है। परिवर्तन की यह अंधी दौड़ इन दिनों आधुनिकता के नाम पर चल रही है। कहीं इसकी गति ऊर्ध्वगामी है, तो कही अधोगामी। आधुनिकता के नाम पर समाज में अनेक विकृतियाँ प्रवेश कर रही हैं। डॉ॰ अशोक चक्रधर ने अपनी कविताओं के माध्यम से समाज की स्थिति को इस प्रकार व्यक्त किया है–

ए॰सी॰ और कूलर में
खुलती नहीं हैं खिड़कियाँ
जलाऊ लकड़ी का संकट है
इसलिए
जलाई जाती हैं लड़कियाँ।[18]

अपनी कल्पनाशीलता के माध्यम से दहेज की कुरीति पर प्रहार करते हुए डॉ॰ अशोक

चक्रधर ने कहा है कि आजकल ऐसी भी दुकानें खुलने लगी हैं, जहाँ पर बहुओं को जलाने के अनेक तरीके सुझाए जाते हैं–

आपको तो बस
फीस देनी है
फार्म भरना है
बहू का फोटो चिपकाना है
और अगर बाद में
दूसरा ब्याह भी रचाना है
तो सौदा कीजिए
उसको भी जलवाना है
तो एडवांस दीजिए।[19]

हमारे समाज में आज भी लड़की के स्थान पर लड़के को अधिक महत्त्व दिया जाता है। गाँवों और कस्बों में आज भी ऐसे दृश्य दिखाई पड़ते हैं। डॉ॰ अशोक चक्रधर ने इस स्थिति का वर्णन करते हुए लिखा है–

क्या भर दी इस भाल पर, एक छोटी-सी माँग
जीवनभर पूरी करो, माँगें ऊटपटांग।
बिटिया करे पुकार जब, नहीं दौड़ते आप
पत्थर दिल है आपका, कैसे हैं, माँ-बाप।[20]

डॉ॰ अशोक चक्रधर ने अपने साहित्य की भाषा के रूप में खड़ीबोली का चयन किया है, लेकिन ब्रजक्षेत्र का मूल निवासी होने के कारण उनकी रचनाओं में ब्रजभाषा का स्वाभाविक माधुर्य भी विद्यमान है। उन्होंने अपनी रचनाओं में अँग्रेजी, उर्दू, बंगला, पंजाबी, ब्रजभाषा और अन्य अनेक भाषाओं का यथास्थान प्रयोग किया है। उन्होंने अपने कथ्य के भाव को चरमोत्कर्ष तक पहुँचाने के लिए नवीन शब्दों का निर्माण भी किया है। उनकी एक कविता 'हम तो करेंगे' में उनकी इस नवीन शब्द-सृष्टि की प्रस्तुति इस प्रकार हुई है–

गुनह करेंगे
पुनह करेंगे
वजह नहीं
बेवजह करेंगे
कल से ही लो
कलह करेंगे।[21]

अत: कहा जा सकता है कि डॉ॰ अशोक चक्रधर ऐसे कवि हैं, जिन्हें उनके प्रशंसकों, श्रोताओं और पाठकों ने समान आदर प्रदान किया है। वे अपने श्रोताओं में जितने लोकप्रिय हैं, उतने ही लोकप्रिय पाठकों में भी हैं। उनका काव्य प्रगतिशीलता की कसौटी पर खरा उतरा है, जो पाठकों व श्रोताओं में नवीन विचारों का संचार करता है। कविता की इस उत्कृष्टता के कारण ही प्रगतिशील काव्य में डॉ॰ अशोक चक्रधर का कोई सानी नहीं है।

संदर्भ

1. शोधार्णव, सं॰ डॉ॰ रामस्वरूप खरे, अक्टूबर-दिसंबर 2013, पृ॰ 57
2. बृहत् हिंदी कोश, डॉ॰ हरदेव बाहरी, ज्ञानमंडल लि॰, वाराणसी, पृ॰ 834
3. हिंदी साहित्य का आधुनिककाल, डॉ॰ हरिचरण शर्मा, मलिक एंड कंपनी, जयपुर, प्रथम संस्करण, पृ॰ 110
4. डॉ॰ अशोक चक्रधर की व्यंग्य-चेतना, डॉ॰ प्रवीण शुक्ल, पृ॰ 146
5. चुटपुटकुले, डॉ॰ अशोक चक्रधर, पृ॰ 82
6. भोले-भाले, डॉ॰ अशोक चक्रधर, पृ॰ 144
7. तमाशा, डॉ॰ अशोक चक्रधर, पृ॰ 72-73
8. भोले भाले, डॉ॰ अशोक चक्रधर, पृ॰ 164
9. चुटपुटकुल, डॉ॰ अशोक चक्रधर, पृ॰ 5
10. हँसो और मर जाओ, पृ॰ 122
11. भोले भाले, डॉ॰ अशोक चक्रधर, पृ॰ 29-30
12. बग्गा का मग्गा, डॉ॰ अशोक चक्रधर, पृ॰ 41
13. ए जी सुनिए, डॉ॰ अशोक चक्रधर, पृ॰ 42
14. बोल गप्पे, डॉ॰ अशोक चक्रधर, पृ॰ 16
15. डॉ॰ अशोक चक्रधर की व्यंग्य-चेतना, डॉ॰ प्रवीण शुक्ल, पृ॰ 182
16. चुटपुटकुले, डॉ॰ अशोक चक्रधर, पृ॰ 11
17. बग्गा का मग्गा, डॉ॰ अशोक चक्रधर, पृ॰ 309
18. हँसो और मर जाओ, डॉ॰ अशोक चक्रधर, पृ॰ 309
19. तमाशा, डॉ॰ अशोक चक्रधर, पृ॰ 32-33
20. खिड़कियाँ, डॉ॰ अशोक चक्रधर, पृ॰ 116
21. ए जी सुनिए, डॉ॰ अशोक चक्रधर, पृ॰ 75

बी-410 **ट्रांस यमुना कालोनी, रामबाग**
आगरा (उ॰प्र॰)

वाल्मीकि रामायण एवं रामकाव्य-परंपरा में साकेत का मूल्यांकन

नीलमकुमारी
शोधछात्रा (हिंदी विभाग)
महर्षि दयानंद विश्वविद्यालय, रोहतक

भारतीय साहित्य भक्ति-भावना से परिपूर्ण है। कहीं शैवभक्ति के दर्शन होते हैं तो कहीं वैष्णव भक्ति के। कई काव्य कृष्णभक्ति से परिपूर्ण हैं तो रामभक्ति काव्य का भी अभाव नहीं है। जब भारत गुलामी की जंजीरों में जकड़ा हुआ था, उस समय भारतीय अपने धर्म, संस्कृति, परंपराओं और आस्था पर निरंतर हो रहे आघात झेल रहे थे। काम-धंधे चौपट हो रहे थे। समाज का धार्मिक, सामाजिक, चारित्रिक और नैतिक पतन हो रहा था। मुगलों की इस्लाम के प्रचार-प्रसार की लालसा ने लोगों में अनिश्चितता, कुंठा और असुरक्षा की भावना को जन्म दिया। प्रजा जहाँ शोषण का शिकार हो रही थी, वहीं दो संस्कृतियों का स्वाभाविक समन्वय भी हो रहा था। यह भारतीय परंपरा है कि जब व्यक्ति दुविधाग्रस्त हो जाता है और जब उसे कोई मार्ग नहीं सूझता तो वह स्वयं को भाग्य और भगवान को समर्पित कर देता है। परंतु भारत में भक्ति-आंदोलन का यह मुख्य कारण नहीं है, बल्कि रामानुजाचार्य, मध्वाचार्य, विष्णु स्वामी, निंबार्क, रामानंद, चैतन्य महाप्रभु और बल्लभाचार्य सरीखे समाज के हितैषी युगपुरुषों की जनकल्याण की भावना ही मुख्य रूप से भक्ति-आंदोलन का मुख्य कारण थी, जिसका केंद्र सर्वप्रथम दक्षिणी भारत बना।

उत्तरी भारत में भक्ति का बिगुल फूँकने वाले स्वामी रामानंद थे, जिन्होंने रामभक्ति की निर्मल धारा को भारतीय समाज और साहित्य में प्रवाहित किया। रामानंद जी से भक्ति का मंत्र कबीर ने लिया और राम के निर्गुण और ज्ञानात्मक स्वरूप का प्रतिपादन किया। यथा–

कस्तूरी कुंडल बसै, मृग ढूँढै बन माँहि।
ऐसे घटि-घटि राम हैं, दुनिया देखे नाँहि।

परंतु यदि कोई राम-प्रधान काव्य है तो वह है आदिकाव्य बाल्मीकि रामायण। इसमें महर्षि वाल्मीकि ने राम को देव या अवतार न मानकर साधारण मानव के रूप में चित्रित किया है। राम पुरुषोत्तम हैं, जाति और समाज के लिए आदर्श हैं। वह आदर्श पुत्र, आदर्श पति, आदर्श राजा, आदर्श भाई और आदर्श वीर हैं। वह सहनशीलता, आज्ञा-पालन, भ्रातृस्नेह के चरम शिखर पर हैं। वाल्मीकि रामायण में अवतारवाद का नितांत अभाव है, परंतु देवताओं को अवश्य महत्त्व दिया गया है, जिनमें कार्तिकेय, कुबेर, उमा व लक्ष्मी आदि प्रमुख हैं। इंद्र को सर्वश्रेष्ठ स्थान दिया गया है।

इस महाकाव्य में कहीं भी न तो राम को विष्णु का अवतार बनाया गया है और न ही विष्णु और राम में कोई संबंध स्थापित किया गया है। तत्पश्चात् वायुपुराण और अध्यात्मपुराण में राम के अवतार रूप की कल्पना है। चौदहवीं शताब्दी में रामानंद ने दास्यभक्ति के माध्यम से अपनी भावनाएँ व्यक्त कीं, परंतु यदि रामकाव्य धारा पर व्यापक दृष्टिपात किया जाए तो गोस्वामी तुलसीदास का स्थान सर्वप्रमुख है, जिन्होंने अपने प्रसिद्ध ग्रंथ रामचरितमानस द्वारा रामभक्ति को जन-जन तक पहुँचाया। उन्होंने श्रीराम के आदर्श रूप की स्थापना की।

श्रीराम को मर्यादा पुरुषोत्तम, आदर्श पुत्र, आदर्श भ्राता, आदर्श पति और आदर्श प्रजापालक राजा के रूप में ऐसे प्रतिष्ठित किया कि वह रूप कालजयी बन गया।

तुलसीदास ने सेव्य-सेवक की भावना को श्रेष्ठतम बताया। उनकी रचनाओं में राम की पूर्ण कलाओं के दर्शन मिलते हैं। उन्होंने ब्रह्म की सगुण-सत्ता को ही स्वीकारा है। वे कहते हैं कि निर्गुण और सगुण का समन्वय होना चाहिए–

सगुनहि अगुनहि नहिं कछु भेदा।
उभय हरहिं भव-संभव खेदा।

तुलसी के अनुसार राम मनुष्य भी हैं, ईश्वर और ब्रह्म के प्रतीक भी। वे शील और गुणों की खान हैं, किंतु गीता के अनुसार–

यदा-यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजम्यहम्।

अर्थात जब-जब धर्म की हानि होती है, तब-तब धर्म की पुनः स्थापना हेतु भगवान राम-कृष्णादि रूप में अवतार लेते हैं।

ज्ञान के उदय से अज्ञान रूपी अंधकार नष्ट हो जाता है। मोक्षप्राप्ति का साधन ज्ञान भी है और भक्ति भी, परंतु भारतीय समाज में भक्ति का अधिक महत्त्व है। इसीलिए तुलसीकृत मानस में भक्ति और राम-नाम-स्मरण पर ही अधिक बल दिया गया है। राम को सत्य का और रावण को असत्य का प्रतीक बनाकर असत्य पर सत्य की विजय के शाश्वत नियम को सिद्ध किया गया है।

इसी काव्य में उन्होंने अनेक पारिवारिक और व्यक्तिगत जीवन के, राष्ट्र और समाज के आदर्श प्रस्तुत किए हैं। इसी प्रकार विनय पत्रिका में रामभक्ति का महत्त्वपूर्ण रूप प्रस्तुत किया है। यह रूप भक्ति-जगत में सर्वाधिक प्रशंसनीय है। डॉ॰ बलदेव प्रसाद मिश्र लिखते हैं–'विनय में एक प्रकार की प्रबंधात्मकता तो है ही, परंतु प्रधानतः उसे प्रगीत-मुक्तक रचना कहा जाना चाहिए क्योंकि उसके प्रत्येक पद अपने में पूर्ण एवं स्वतंत्र हैं तथा प्रत्येक में कवि के अंतर्जीवन का ही दिग्दर्शन है।'[1]

डॉ॰ रामचंद्र मिश्र के मत में–'विनयपत्रिका तुलसी का विनयकाव्य है, जिसमें उनके संप्रदाय की भक्ति-भावना, जो दास्यभक्ति पर आधारित है, साकार हो उठी है। इसके फलस्वरूप राम के प्रति उनकी अनन्य निष्ठा और पूज्य भावनाओं का प्रस्फुटन भी हुआ है।'[2]

रामकाव्य-परंपरा में तुलसीदास के बाद केशवदास का स्थान आता है। यद्यपि उनकी भक्ति तुलसी की तरह नहीं थी तो भी उनकी भक्ति-भावना उनकी रचना 'रामचंद्रिका' में स्पष्ट हो जाती है। इस रचना में केशवदास ने मंगलाचरण, वंदना, स्तुति और विरुद नामक स्रोतों को

माध्यम बनाया है। उदाहरण देखिए–

केशव आप सदा सह्यौ दुख,
पै दासन देखि सके न दुखारे।
जाको भयो जेहि भाँति जहाँ दुख,
त्यों ही तहाँ ते हि भाँति सम्हारे।।
मारि पै वारि वारि आवहि कहा,
कबहूँ नहि काहू के दोष विचारे।
बूड़त हौं महा मोह-समुद्र में,
राखत काहे न राखन हारे।

रहीम भी इसी कोटि में आते हैं। आचार्य रामचंद्र शुक्ल इनके विषय में लिखते हैं–'उनमें मार्मिकता है। उनके भीतर एक अच्छा हृदय झाँक रहा है। जीवन की सच्ची परिस्थितियों के मार्मिक स्थलों की परीक्षा जिस कवि में होगी वही जनता का प्यारा कवि होगा। रहीम की रचनाओं में इस भावना का परिलक्षण सदैव होता है।'

अग्रदास और नाभादास भी इसी परंपरा के अंतर्गत आते हैं। इन्होंने हितोपदेश, उपाख्यान, बावनी, ध्यानमंजरी तथा रामध्यान मंजरी आदि ग्रंथ लिखे हैं। सेनापति भी इसी परंपरा में आते हैं। डॉ॰ राजेश्वरप्रसाद चतुर्वेदी जी लिखते हैं–'सेनापति भक्ति के कवि थे। चौथी तरंग रामायण वर्णन तथा पाँचवीं तरंग रामरसायन वर्णन में उन्होंने स्पष्ट ही रघुनाथ जी की खड़ाऊँ की वंदना की है तथा पूर्ण पुरुष बतलाया है।'[3]

डॉ॰ हनुमानदास के अनुसार–'भक्तिकालीन कवियों में सेनापति की श्लेषात्मक रचनाएँ बड़ी ही सरस तथा भावात्मक हैं। उनमें कलापक्ष के साथ-साथ भक्तिपक्ष की भी प्रबलता है।'[4]

सहजराम भी रामकाव्य-परंपरा के अंतर्गत ही आते हैं। उन्होंने अपने ग्रंथ 'रघुवंश दीपक' में भक्ति को विभिन्न प्रकार से प्रस्तुत किया है। कवि ने अनेक स्थानों पर देवस्तुति भी की है।

इस प्रकार संवत् 1700 तक रामकाव्य परंपरा क्रमिक रूप से पतन की ओर अग्रसर हुई और रीतिकाव्य ने तो भक्तिकाल के अस्तित्व को परिवर्तित कर दिया।

इसके बाद द्विवेदीयुग में रामचरित उपाध्याय और मैथिलीशरण गुप्त ने इस परंपरा को पुनः आगे बढ़ाया। रामचरित उपाध्याय ने अपने ग्रंथ 'रामचरित चिंतामणि' में राम को ईश्वर के रूप में अवतरित किया। डॉ॰ प्रतिपाल सिंह लिखते हैं–'वे मर्यादा पुरुषोत्तम हैं। उन्होंने असुरों को मारने की प्रतिज्ञा की और अपने भाई को भी सचेत किया। धर्मरक्षार्थ सब कुछ करना चाहिए। वे माता-पिता के आज्ञाकारी कौटुंबक एवं सामाजिक संबंध का निर्वाह करने वाले हैं।'[5]

परंतु जब रामकाव्य-परंपरा के संबंध में श्री मैथिलीशरण गुप्त के 'साकेत' का विवेचन किया जाए तो हमें विश्वबंधुत्व में निहित राम का ईश्वरत्व दिखाई देता है। गुप्त जी सब प्राणियों को आत्मवत् देखने का संदेश देते हैं। यथा–

राम, तुम मानव हो? ईश्वर नहीं हो क्या?
विश्व में रमे हुए नहीं, सभी कहीं हो क्या?
तब मैं निरीश्वर हूँ, ईश्वर क्षमा करे,

तुम न रमो तो मन तुममें रमा करे।

गुप्त जी के राम ने सोद्देश्य अवतार लिया है। साकेत से एक उदाहरण देखिए–

भव में नव वैभव प्राप्त कराने आया।
नर की ईश्वरता प्राप्त कराने आया।
संदेश यहाँ मैं नहीं स्वर्ग का लाया।
मैं भूतल को ही स्वर्ग बनाने आया।

साकेत की रचना का मुख्य उद्देश्य है–भारतवासियों को राष्ट्रीयता का मंत्र देना तथा देशहित में सर्वस्व न्यौछावर करने के लिए तत्पर करना।

'साकेत' एक उत्कृष्ट रचना है, जिसमें भावुकता तथा कल्पना का सम्मिश्रण है। यह अन्य रामकाव्य ग्रंथों से थोड़ा हटकर है, क्योंकि किसी में राम के वन-गमन, दशरथ के विलाप, कैकेयी के षड्यंत्र व बाद में पश्चाताप का, तो कौशल्या के पुत्र-वियोग की पीड़ा का वर्णन है और कहीं भरत व शत्रुघ्न के मिलाप का वर्णन है, परंतु वहीं साकेत में लक्ष्मण की पत्नी 'ऊर्मिला' की विरह-व्यथा को भलीभाँति चित्रित किया गया है, जिस पर किसी कवि का ध्यान ही नहीं गया था। संपूर्ण नवम सर्ग ऊर्मिला की विरह-वेदना को व्यक्त करता है। इसी सर्ग के कारण 'साकेत' करुणरस-प्रधान काव्य बन गया है। गुप्त जी स्वयं लिखते हैं–

'करुणे, क्यों रोती है? 'उत्तर' में और अधिक तू रोई।
'मेरी विभूति है जो, उसको 'भवभूति' क्यों कहे कोई।'[6]

गुप्त जी ने साकेत में करुणरस का भलीभाँति परिपाक किया है । भवभूति अपने काव्य 'उत्तररामचरित' में करुणरस को ही सर्वप्रधान और एकमात्र रस मानते हैं तथा अन्य रसों को इसी रस के विकार जैसे भाँप, बुलबुले, तरंगादि जल के ही विकार हैं, कहते हैं–

एको रसः करुण एव निमित्तभेदाद्
भिन्नः पृथक् पृथगिवाश्रयते विवर्तान,
आवर्त-बुद्-बुद तरंगमयान्विकारान्
अम्भो यथा सल्लिमेव तु तत्समस्तम्'[7]

गुप्त जी ने काव्यभाव से ओतप्रोत भवभूति कृत उत्तररामचरित सदृश काव्य की रचना की और यह सिद्ध करने की कोशिश की है कि विरह-भाव तो करुणा की विभूति है न कि संसार की। इसलिए भवभूति को ही विरह-वेदना का अंतिम कवि क्यों माना जाए? उनके कहने का भाव है कि यद्यपि भवभूति ने विरह का व्यापक अंकन किया है तथापि ऐसा कैसे मान लिया जाए कि अन्य कोई कवि इस विषय में लिख ही नहीं सकता। गुप्त जी ने काव्य के आरंभ में ही यह स्वीकारा है कि काव्य सोद्देश्य एवं श्रमसाध्य होता है तथापि श्रीराम के विषय में लिखना उनके लिए आनंददायक है। वे लिखते हैं कि–

राम तुम्हारा चरित, स्वयं ही काव्य है।
कोई कवि बन जाय, सहज संभाव्य है।

साकेत का संक्षित कथानक इस प्रकार है। कथा का प्रारंभ लक्ष्मण और उर्मिला के प्रेमालाप से होता है। तत्पश्चात् कैकेयी और मंथरा का वार्तालाप होता है। जबकि राम के

राज्याभिषेक की तैयारियाँ प्रारंभ हो गई हैं। लक्ष्मण ऊर्मिला के समक्ष भरत की अनुपस्थिति पर पश्चात्ताप व्यक्त करते हैं। दशरथ कैकेयी की कुटिलता में फँसकर राम को वनवास देते हैं। लक्ष्मण माता-पिता पर क्रुद्ध होते हैं। परंतु राम आज्ञा प्राप्त करके वनगमन को तैयार होते हैं। सीता और लक्ष्मण भी उनके साथ चलते हैं, लेकिन ऊर्मिला घर रह जाती है। मार्ग में प्रजा विरोध करती है परंतु राम उन्हें समझाकर चित्रकूट चले जाते हैं। तत्पश्चात् ऊर्मिला की विरह-वेदना, दशरथ की मृत्यु, माताओं का रुदन, प्रजा का दुखित होना तथा भरत का ननिहाल से बुलाया जाना आदि घटनाएँ वर्णित हैं। दशरथ का दाह-संस्कार करने के बाद भरत माता कैकेयी और बंधु-बांधवों सहित चित्रकूट पहुँचते हैं। माता कैकेयी अपने किए पर पश्चात्ताप करती है। सीता की आज्ञा से ऊर्मिला और लक्ष्मण का क्षणिक मिलन होता है। राम के वापिस आने के लिए मना करने पर भरत उनकी पादुका लेकर साकेत लौट जाते हैं। उर्मिला घर लौटकर विरह-व्यथित हो जाती है। शत्रुघ्न के सहयोग से भरत राज्य-व्यवस्था सँभालते हैं। वनिकों द्वारा भरत को राम का समाचार ज्ञात होता है, वहीं हनुमान के द्वारा लक्ष्मण के शक्ति लगने से मूर्छित होने का समाचार मिलता है। भरत सेना को रण के लिए सजाते हैं, परंतु वशिष्ठ के कहने पर रुक जाते हैं। इसके पश्चात् मेघनाद-वध, रावण-वध, सीता की प्राप्ति और सभी के साकेत-आगमन का वर्णन है। अंत में लक्ष्मण और ऊर्मिला का मिलन हो जाता है।

इस काव्य में राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न, कैकेयी, ऊर्मिला, सीता और मांडवी विशेष पात्र हैं।

यद्यपि गुप्त जी ने प्रयास किया है कि महाकाव्य के नायक और नायिका के रूप में लक्ष्मण और ऊर्मिला को प्रतिष्ठित किया जाए, परंतु अनायास ही गुप्त जी के आराध्य राम इसके नायक बन गए हैं। भरत, लक्ष्मण आदि उनके अनुगामी हैं। परंतु कुछ विद्वान ऊर्मिला को ही 'साकेत' की नायिका मानते हैं, क्योंकि एक तो लगभग सभी सर्गों में उनका वर्णन कहीं-न-कहीं आया है। दूसरे नवम सर्ग में तो सिवाय उर्मिला के कोई है ही नहीं। उन्हें करुणा की साक्षात मूर्ति चित्रित किया गया है।

वास्तविकता तो यह है कि 'ऊर्मिला' को नायिका के रूप में प्रतिष्ठित करके गुप्त जी ने एक साहित्यिक क्रांति ला दी है, क्योंकि रामकाव्य-परंपरा में किसी साहित्यकार ने इस ओर ध्यान ही नहीं दिया था। स्वयं आदिकवि वाल्मीकि ने क्रौंच मिथुन के क्रंदन को सुनकर–

मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगम: शाश्वती समा:।
यत्क्रौंचमिथुनादेकमवधी कामम्मोहिता।

कहकर अनुष्टुपवृत्त में आदिकविता को प्रकट किया। परंतु वे भी 'उर्मिला' विरह को भूल गए। इससे स्पष्ट भी होता है कि गुप्त जी ने सप्रयास नारी के चरित्र को उदात्त करने की सफल कोशिश की है। षड्यंत्रकारिणी कैकेयी के चरित्र को भी उज्ज्वल करने हेतु उन्होंने राम के मुख से कहलवा ही दिया था कि–

धन्य है उस लाल की माई
जिसने जना हो भरत-सा भाई।

इस प्रकार साकेत के माध्यम से गुप्त जी ने राष्ट्रीय आंदोलन को बल दिया। उदाहरण देखिए–

जन्मभूमि, ले प्रणति और प्रस्थान दे।
हमको गौरव, गर्व तथा निज मान दे।[8]
भारत लक्ष्मी पड़ी राक्षसों के बंधन में,
सिंधु पार वह बिलख रही है व्याकुल मन में।[9]

उन्होंने नारी का गौरव बढ़ाया, राम के अवतारी रूप को मानवता प्रदान की। राष्ट्र के अनेक भागों में बँटे होने पर उन्होंने 'साकेत' में चिंता जताई और दुर्बलता का कारण बताया।

अंत में हम इतना कह सकते हैं कि गुप्त जी का साकेत एक उत्कृष्ट महाकाव्य है, जिसमें न केवल पारिवारिक आदर्श, पुत्र का आदर्श, सांस्कृतिक व सामाजिक आदर्श और नैतिक आदर्शों को स्थापित किया गया है अपितु पिता का स्थान, माता का स्थान, भाइयों का स्थान, पति-पत्नी संबंध को सुनिश्चित किया गया है। 'साकेत' साक्षी है नारी की भारतीय सोच का, जो पति-वियोग में दु:खी होती है।

मैथिलीशरण जी भारतीय संस्कृति के व्याख्याता एवं पोषक हैं। यही उनकी सबसे बड़ी विशेषता है। 'साकेत' का सांस्कृतिक पृष्ठाधार अत्यंत पुष्ट है-क्योंकि एक तो यह प्रबंधकाव्य है, दूसरे इसके चरितनायक ही भगवान राम हैं, जो भारतीय संस्कृति के गौरवशाली संस्थापक हैं। वस्तुत: 'साकेत' में राम-रावण का युद्ध न रहकर आर्य और कोणप-दो संस्कृतियों का युद्ध बन जाता है और राम की विजय को कवि आर्य संस्कृति की विजय मानता है–'आर्य-सभ्यता हुई प्रतिष्ठित, आर्य धर्म आश्वस्त हुआ।

प्रस्तुत काव्य में सीता भी राम की भार्या-रूप में नहीं, वरन् आर्य अथवा भारत लक्ष्मी के रूप में आई है–'भारत-लक्ष्मी पड़ी राक्षसों के बंधन में।'

अत: उनका उद्धार राम-पत्नी का उद्धार न होकर, भारतीय संस्कृति का उद्धार है। तात्पर्य यह है कि आर्यत्व अथवा भारतीय संस्कृति की प्रतिष्ठा ही 'साकेत' की सांस्कृतिक उद्देश्य है। इस प्रकार 'साकेत' सभी भारतीय परंपराओं का निर्वाह करता हुआ राष्ट्रीय एकता का संदेश देता है ।

संदर्भ

1. डॉ॰ बलदेव मिश्र, मानस माधुरी, पृ॰ 275
2. हिंदी पद-परंपरा तथा तुलसीदास, पृ॰ 225
3. रीतिकालीन कविता तथा श्रृंगाररस का विवेचन, पृ॰ 328
4. डॉ॰ हनुमानदास, आराधना : उद्भव और विकास, पृ॰ 174
5. डॉ॰ प्रतिपाल सिंह, बीसवीं शताब्दी के महाकाव्य, पृ॰ 929
6. मैथिलीशरण गुप्त, साकेत, नवम सर्ग, पृ॰ 133
7. भवभूति, उत्तररामचरितम्, पृ॰ 271, श्लोक सं॰ 47
8. मैथिलीशरण गुप्त, साकेत, पंचम सर्ग, पृ॰ 62
9. मैथिलीशरण गुप्त, साकेत, द्वादश सर्ग, पृ॰ 220
10. हिंदी साहित्य कोश, भाग 2, पृ॰ 622

द्वारा डॉ॰ हरिशरण वर्मा

710 **जनता कालोनी, रोहतक (हरियाणा)**

मैत्रेयी पुष्पा के कथासाहित्य में स्त्री की अर्थ-चेतना

संजीतादेवी

आधुनिक युग में बदली हुई परिस्थितियों में स्त्री पर्याप्त रूप से आत्मनिर्भर बनी हुई है। उसे भी पुरुषों की भाँति घर-बाहर की जिम्मेदारी उठानी पड़ रही है। स्त्रियों में शिक्षा के प्रसार के साथ कामकाजी महिलाओं की वृद्धि हुई है। एकाकी परिवार का समाज में आवागमन तथा पारिवारिक रख-रखाव की वृद्धि ने स्त्री को नौकरी करने के लिए विवश किया है। आज महिलाएँ घर तक सीमित नहीं हैं। घर से बाहर तक अपना परचम लहरा रही हैं। जिससे उनके आत्मविश्वास कार्यक्षमता और मानसिक स्तर में वृद्धि होती जा रही है।

स्वतंत्रता से पहले निम्नवर्ग की बहुत सी स्त्रियाँ उद्योगों द्वारा जीविका अर्जित करती थीं, लेकिन मध्यम और उच्चवर्ग की स्त्रियों द्वारा कोई आर्थिक कार्य करना अनैतिकता के रूप में देखा जाता था। 'स्वतंत्रता के पश्चात बड़ी संख्या में उच्चवर्ग और मध्यमवर्ग की स्त्रियों ने शिक्षा प्राप्त करके आर्थिक क्षेत्र की ओर बढ़ना आरंभ कर दिया है। आज शिक्षा, स्वास्थ्य, उद्योगों और कार्यालयों में स्त्रियों की संख्या निरंतर बढ़ाई जा रही है।' [1]

मैत्रेयी पुष्पा ने अपने कथा-साहित्य में ग्रामीण एवं शहरी स्त्री पात्रों की आर्थिकी दर्शायी है। मैत्रेयी पुष्पा के ग्रामीण पात्र गरीब परिवेश से हैं। इस गरीबी से बाहर निकलने के लिए मैत्रेयी की पात्र कठिन-से-कठिन परिश्रम करती है। चाहे वह 'इदन्नमम' की 'मंदा' हो या 'सफर के बीच' की 'अम्मा', 'ललमिनिया' की 'मौहरो' हो या 'बहेलिए' की 'गिरजा', 'अल्माकबूतरी' की सभी स्त्री पात्र, 'गोमा हँसती है' की 'गोमा', 'अगनपाखी' की 'भुवन, मोहिनी व उसकी माँ', 'उज़्दारी' की 'शांति', 'सिस्टर' की 'डारोथी डिसूजा' आदि सभी स्त्री पात्र अपनी आर्थिक स्थिति को आगे बढ़ाने के साथ अपने घर-परिवार का पालन पोषण भी करती हैं।

'बहेलिए' कहानी में गिरजा की माँ पति के मर जाने पर अपने बच्चों का लालन-पोषण करने के लिए दिन-रात मेहनत करती है–

'जबसे उसने होश सँभाला तो माँ को हर वक्त घर के काम में खटते देखा था। चौका-चूल्हे से लेकर ढोर-बछेउओं की सानी-पानी तक... कभी मक्का का खेत रखाते-रखाते दिन काट देती। बुआई के दिनों में पुरानी धोती की झोली गले में डालकर चाचा के हल के साथ भागती हुई करवाती।'[2]

मैत्रेयी पुष्पा की स्त्री पात्र पुरुष के साथ कंधे से कंधा मिलाकर कार्य करती है। 'सिस्टर' कहानी में डोरोथी डिसूजा की माता अल्पकाल में ही चल बसी तबसे ही उसने अपनी और बीमार पिता की संपूर्ण जिम्मेदारी को अपने कंधों पर उठा लिया। इसके लिए उसने अपने डॉक्टर बनने के सपने को अधूरा छोड़ते हुए नर्स की नौकरी कर ली।

इस प्रकार 'झूलनाट' की अम्मा भी अपनी गृहस्थी स्वयं चला रही है। दोनों बेटों के होते हुए भी खेत में क्या बोना है। कितना बोना है, फसल कब काटनी है, इस सबकी देख-रेख करती है, जिसके विषय में बालकिशन कहता है–'अम्मा चिरगाँव गई होगी। वह न जाती, तो कौन जाता? क्वार का महिना-बुवाई का समय खाद-बीज के जतन न करेगी तो खाएँगे क्या?'[3]

'इदन्नमम' की 'मंदा' संपूर्ण गाँववालों को अभिलाख राजा साहब जैसे दुष्ट प्रवृत्ति वाले व्यक्ति से बचाती और गाँव के सभी सदस्यों को अर्थ उपार्जन का नया साधन देती है और उन्हें शोषण से मुक्त कराती है। 'हमें तो लगता है, मंदा इस गाँव की नहीं इस क्षेत्र की भूमिसुता है।'[4]

'सफर के बीच' कहानी में गजराज की माँ अपनी कमजोर आर्थिकी से बाहर निकलने के लिए हरदम प्रयासरत रहती है और बच्चों की भावना को गरीबी में भी आर्थिक सुरक्षा देने का प्रयास करती है–'वे तो अम्मा ही थीं, जो आर्थिक विपन्नता से दबी गृहस्थी को अपने हस्तकला कौशल के सहारे जबरन खींचने का प्रयास कर रही थीं। अम्मा ने उसे ऐसी दमघोटू स्थिति में कभी नहीं रहने दिया। नई कक्षा के दाखिले के समय अक्सर ऐसा कठिन अवसर आ पड़ता। फीस और किताबों की दोहरी मार एक पल को अम्मा को भी लाचार कर देती।'[5]

'नारी स्वतंत्रता के कारण वह पढ़ने-लिखने और नौकरी करने लगी। ऐसी नारी पत्नी के रूप में पुरुष के लिए बहुत लाभदायक होती है। वह घरेलू रूप से बर्तन धोने, खाना बनाने से लेकर बच्चे पालने तक के सारे काम करती है और महीने के अंत में स्वचालित मशीन की तरह निश्चित रकम भी लाकर देती है।'[6]

'मुस्कराती औरतें' कहानी में कुसुम अपनी बेटी रेणू को कामकाजी स्त्रियों की फोटो दिखाकर उसके अंदर आर्थिक चेतना जाग्रत करना चाहती है।

'गौर से देख ये औरते वे है, जो अपनी पाँवों पर खड़ी है। ये स्त्रियाँ पढ़-लिखकर घर से निकलीं, नौकरी की, आर्थिकी स्वतंत्रता पैदा कर ली। स्त्रियों के लिए आर्थिक पराधीनता बेड़ियों का काम करती है। तू समझ रही है न? उन औरतों को देख जो कामकाजी महिला होने के लिए, नौकरी पेशा बनने के लिए विवाह बंधन तोड़ गईं या उन्हें देख जिन्होंने अपना कैरियर पहले अर्जित किया उसके बाद विवाह।'[7]

नारी शिक्षा ने नारी को अपने माननीय अधिकारों के प्रति जाग्रत बनाया है। इसलिए विभिन्न व्यवसायों का पर्दापण करके आत्मनिर्भरता भी प्राप्त की है। समकालीन कथा-साहित्य में नारी की व्यवसायिक आत्मनिर्भरता की पर्याप्त चर्चा हुई है। नारी ने आर्थिक स्वावलंबिता के लिए शिक्षा में प्रवेश किया। नारी की शैक्षिक जागरूकता उसके लिए आर्थिक आत्मनिर्भरता का स्रोत बनी। शिक्षित नारी और आत्मनिर्भर नारी ने परिवार से बाहर कदम रखा। पुराने मूल्यों के स्थान पर नए मूल्यों की स्वीकृति दी। इसके लिए उसे विरोध भी करना पड़ा। दोहरे दायित्व को निभाते हुए परिवार में पत्नी, माँ और बहन के रूप में व्यक्तित्व का परिचय दिया। बढ़ती हुई महँगाई, बढ़ती परिवार की आवश्यकता, धन बटोरने की लालसा तथा समाज में पहचान बनाने की इच्छा ने बदलते हुए समाज के साथ आत्मनिर्भर बनाया। इस संदर्भ में किरण कुमारी का कहना है कि

'सरकार महिलाओं को व्यावसायिक प्रशिक्षण देने के लिए भी भारत में 218 महिला औद्योगिक प्रशिक्षण संस्थान है। इसके अलावा 582 महिला संस्थाएँ सामान्य शिक्षण संस्थान और निजी औद्योगिक प्रशिक्षण संस्थान भी है। इसे राज्य सरकार ने अपनी देख-रेख में लिया हुआ है।

महिलाओं के आर्थिक व सामाजिक उत्थान के लिए स्वयं शिक्षा योजना चल रही है। इसका मुख्य उद्देश्य महिलाओं का चहुमुखी विकास करके स्थानीय नियोजन में महिलाओं को शामिल करना है। महिलाओं के अल्पशिक्षण में बढ़ोत्तरी ग्रामीण महिलाओं की संस्थागत बचत की भावना को जाग्रत करना है तथा आर्थिक संस्थानों पर उनके नियंत्रण को बढ़ावा देना है। इस दिशा में ग्रामीण महिलाओं के लिए 'स्वशक्ति' नामक केंद्र आयोजित किया गया है।'[8]

मैत्रेयी पुष्पा की 'रास' कहानी की 'जैमंती' घरेलू कार्य करके अपना जीवन-यापन करती है। वह माँ के ऊपर बोझ नहीं बनती।

'किसान जिजमानों की टहल ही उसका जीवन है। जन्म, मुंडन कनछेदन और ब्याह कारजों के बुलाए चलाए की खातिर जैमंती की पुकार पड़ी रहती है। ...पांत पंगतों के वास्ते मनो-कुंटलों आटा मांडना नादभर बेसन घोलना, साग-सब्जी छालना-काटना और हजारों की तादाज में दोने-पत्तल बनाना। बदले में पड़ोसा-त्याहारी, अनाज-कपड़ा दिन-रात खरी रहती।'[9]

मैत्रेयी पुष्पा की पात्र न केवल नौकरी करके, बल्कि घरेलू कार्यों से भी अपने परिवार का पालन पोषण कर रही है।

'गोमा हँसती है' की पात्रों को घर के कामों के साथ-साथ खेतों में कितना बीज डालना है, किस खेत में कौन-सी फसल अच्छी उगेगी, आदि का भी अच्छा ज्ञान है।

'गोमा के घर खेतों की दाऊजी वाले पाँच बीघा में सरसों बोना न भूलना अपने सात बीघा में गेंहू दो बीघा बोहड़ी में तो, अबकी बार मसूर डालना अच्छे भाव बिकेगी।'[10]

कानून एवं संपत्ति के अधिकार के विषय में मैत्रेयी पुष्पा की सभी पात्र चाहे ग्रामीण हों या शहरी शिक्षित हों या अशिक्षित अपने हक की कानूनी जानकारियाँ रखती हैं। उसके लिए संघर्ष भी करती हैं।

'अगनपाखी' उपन्यास में 'भुवनमोहिनी' कम पढ़ी-लिखी स्त्री है, जिसके द्वारा लेखिका ने यह स्पष्ट करने का प्रयास किया है कि स्त्रियाँ अपने हक के लिए अपने अधिकार के लिए सजग हो उठी हैं। पति की मृत्यु के बाद जेठ कुँवर अजयसिंह ने संपत्ति के लिए भुवन मोहिनी को मृत घोषित कर दिया है। भवन मोहिनी को जब यह पता चलाता है, तो वह अदालत में अर्जी डालती है–

'मैं भुवन मोहिनी पत्नी स्व॰ विजयसिंह वल्द स्व॰ दुरजयसिंह निवासी ग्राम विराटा जिला झाँसी यह दावा करती है कि अपने पति के साथ मुझे भी मृतक दिखाया गया है–कचहरी से अर्ज है कि अपने पति की जायदाद का हक मुझे सौंपा जाए। मैं कुँवर अजयसिंह की हकदारी पर सख्त एतराज करती हूँ।'[11]

1956 हिंदू उत्तराधिकार अधिनियम के पश्चात संपत्ति के अधिकार कानून में संशोधन किया गया और लड़की को भी माता-पिता की संपत्ति का वारिश माना गया, परंतु अधिकाशंत: आज भी लड़कियों को उसके पिता की संपत्ति में से कोई हक नहीं मिलता। सब-कुछ बेटों का होता है। मैत्रेयी की कहानी 'रिश्ते का नक्सा' में माँ की मृत्यु के पश्चात गाँव वाले उसकी जमीन मुफ्त में लेना चाहते हैं। 'मैत्रेयी' की पात्रा सचेत हो गई है, अब वह उस परंपरा का विरोध करती दिखाई पड़ रही है।

'मैं अपनी घरवाली जगह को अब किसी दूसरे गाँव के आदमी को बेचूँगी, देख लेना

और मौका देखकर खेत की बिक्री कर डालूँगी। इस गाँव का कोई आदमी मेरी जगह-जमीन को छू तक नहीं सकता।'[12]

इस प्रकार मैत्रेयी पुष्पा के कथासाहित्य में स्त्री की अर्थ-चेतना का विस्तार गाँव के छोर से लेकर महानगरों तक फैला हुआ है। जीवन के सभी पहलुओं में स्त्री-पात्र पुरुष की तरह आर्थिक क्षेत्र में बराबर की हिस्सेदारी बना रही हैं। परिणामस्वरूप समाज के संबंधों में, रीतिरिवाजों में, पारिवारिक व्यवहारों आदि में प्रत्येक ओर से परिवर्तन जारी है। इस चेतना ने पूरी तरह स्त्री को आत्मनिर्भर और आत्मसम्मान से भर दिया है। दूसरी ओर रूढ़ परंपराओं और शोषण के प्रति विद्रोही तेवर दिखाई पड़ रहे हैं।

संदर्भ

1. नारी शिक्षा एवं सशक्तिकरण, चितरंजन ओझा
2. बहेलिए (चिन्हार), मैत्रेयी पुष्पा, पृ॰ 35
3. झूलानट, मैत्रेयी पुष्पा, पृ॰ 16
4. इदन्नमम, मैत्रेयीपुष्पा, पृ॰ 305
5. चिन्हार सफर के बीच, मैत्रेयी पुष्पा, पृ॰ 13
6. खरगोश के सींग, प्रभाकर माचवे, नीलम प्रकाशन, इलाहबाद
7. पियरी का सपना, मुस्कराती औरतें, मैत्रेयी पुष्पा, पृ॰ 13
8. नारी शिक्षा एवं सशक्तिकरण, संपादक चितरंजन ओझा
9. गोमा हँसती है, रास, मैत्रेयी पुष्पा, पृ॰ 147
10. गोमा हँसती है, मैत्रेयी पुष्पा, पृ॰ 186
11. अगनपाखी, मैत्रेयी पुष्पा, पृ॰ 104
12. पियरी का सपना, मैत्रेयी पुष्पा, पृ॰ 27-28

सुपुत्री श्री यशवीर सिंह
म॰नं॰ 35**, मौ॰ शिवपुरी**
लक्सर (हरिद्वार) उत्तराखंड 247663

बीसवीं सदी की महिला-कहानीकारों का सामाजिक चिंतन

डॉ॰ शशिप्रभा
प्रवक्ता, हिंदी-विभाग
वर्धमान पी॰जी॰ कालेज, बिजनौर

पुरुष और नारी सृष्टि के निर्माण और संचालन के दो मूलभूत तत्त्व हैं। पर पुरुष मनुष्य है, मानव है। नारी केवल नारी है, नर की प्रतिछाया नारी। मानुषी और मानवी उसे प्रायः नहीं कहा गया। यही असमानता हर कहीं पुरुष के खिलाफ आक्रोश, असंतोष, अकुलाहट और विद्रोह को जन्म देती है।

बीसवीं सदी जहाँ एक ओर अनेक परिवर्तनों के लिए जानी जाती है, वहीं लेखन में भी। और फिर भी महिला-लेखन बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। बीसवीं सदी की महिला-लेखिकाओं द्वारा लिखी गई हिंदी-कहानियाँ अपना अलग महत्त्व रखती हैं। बीसवीं सदी की कहानियों में आदर्श की दीवार कहीं टूटती है या यह कह सकते हैं कि वह यथार्थ के अधिक निकट है। 20वीं सदी की महिला-कहानीकारों का जो चिंतन है, उसमें कहीं भी ऐसा नहीं लगता कि वे किसी बात को छिपाना चाहती हैं, वे जो कहना चाहती हैं उसे खुलकर बयान कर देती हैं। यानि आवरण के लिए कोई जगह नहीं। रूढ़ियाँ-परंपराएँ सब टूट रही हैं। बीसवीं सदी की महिला-कहानीकार अपनी बात बड़ी बेवाकी से कह देती हैं। उनके चिंतन का फलक इतना बड़ा है कि जीवन का कोई भी पक्ष उनसे शायद ही छूटा है। विषय चाहे सामाजिक हो, राजनीतिक हो, आर्थिक हो या कोई अन्य। समाज में व्याप्त बेटे और बेटी के बीच के अंतर को भी हमारी लेखिकाओं ने अपनी कहानियों का विषय बनाया है। इतना ही नहीं, समाज में फैले अंधविश्वास, भारत-विभाजन, राजनीति आदि सभी विषयों पर हिंदी-लेखिकाओं ने खुलकर अपनी कलम चलाई है। सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह है कि बीसवीं सदी की कहानियों में नई नारी के तेवर दिखाई पड़ते हैं तो इस अर्थ में कि उनका आचरण परंपरा-अनुमोदित भारतीय आचरण नहीं है। पुरुष समुदाय को वह हमेशा मुँहतोड़ जवाब देती है। वे संघर्ष करती हैं और अपने विद्रोही कृत्यों का उत्तरदायित्व लेने के लिए हमेशा तत्पर रहती हैं। हम बीसवीं सदी की महिला-लेखिकाओं की कहानियों को इसी संदर्भ में देखने का प्रयास करेंगे।

हिंदी-कहानी का प्रारंभ करने वालों में से एक न केवल महिला कहानीकार थी, बल्कि बंगाली महिला थी। उनके द्वारा लिखी गई कहानी 'दुलाई वाली' हिंदी की पहली कहानी मानी जाती है। जो सन् 1907 में सरस्वती में प्रकाशित हुई थी, और उस समय की बहुत ही चर्चित

कहानी मानी जाती है। बंग महिला के बाद नाम आते हैं शिवरानी देवी, सुभद्राकुमारी चौहान, होमवती देवी आदि, जिन्होंने नारी-समस्याओं को ही अपनी कहानी का विषय बनाया। कमला चौधरी, जिनकी कहानियों में साहित्यिक पकड़ और सूझ-बूझ अधिक थी। उषादेवी मित्रा जो मधुर कल्पना काव्यमयी भाषा के लिए प्रसिद्ध हैं। श्रीमती सोनरिक्सा की कहानियाँ नई पीढ़ी में बड़ी रुचि के साथ पढ़ी जाती हैं। मुख्यत: स्वतंत्रता के बाद हिंदी महिला-कहानीकारों में बदलाव बहुत तीव्र गति से हुआ है, जिनमें अनेक नाम प्रमुख हैं।

मन्नू भंडारी का नाम आज हिंदी-कहानीकारों में काफी महत्त्वपूर्ण है। उन्होंने अपनी कहानियों का विषय महानगर से लेकर कस्बों और गाँव तक की महिलाओं को बनाया है। इनका मानना है कि महानगरों में रहने वाली महिलाएँ अपने मूलभूत अधिकारों के प्रति सचेत हैं। कस्बों में रहने वाली महिलाएँ रूढ़वादी हैं और गाँव में रहने वाली महिलाओं की दशा तो बहुत शोचनीय है। नए वैचारिक धरातल पर नारी की बदलती हुई दृष्टि और बदलते प्रतिमानों के आधार पर निर्मित जीवनमूल्यों को मन्नू भंडारी ने अपनी कहानियों में बड़ी बेवाकी से अभिव्यक्ति दी है। उनकी कहानियों में नारी अपने परंपरागत रूप से हटकर समाज की विषम परिस्थितियों में अपने स्वतंत्र अस्तित्व की स्थापना के लिए निरंतर संघर्षरत दिखाई देती है। 'ऊँचाई' कहानी की शिवानी उस दृढ़ मानसिक धरातल पर दिखाई देती है, जहाँ सुखी, संतुष्ट दांपत्य पाकर भी वह अपने पूर्वप्रेमी अतुल के समक्ष देह-समर्पण में संकोच नहीं करती, अपितु बेबाकी के साथ पति के सम्मुख इन तथ्यों को स्वीकार करते हुए तनिक भी ग्लानि का अनुभव नहीं करती। 'क्षय' की घुटी एक मध्यवर्गीय क्षयग्रस्त पिता की सबसे बड़ी पुत्री है। आर्थिक विषमताएँ निरंतर बढ़ते पिता के रोग की स्थिति के बीच उसका संवेदनशील मन जब तब त्रास पाता है किंतु वह निरंतर संघर्षरत रहकर जीवन-यथार्थ एवं उसकी भयावहता से घबराकर पलायन की बात नहीं सोचती। वह अभावों में संघर्षों से जूझती हुई स्वावलंबी युवती के रूप में हमारे सम्मुख आती है।

'रानी माँ का चबूतरा' की गुलाबी ईमानदारी, कर्मठता एवं स्वावलंबन को अपना आदर्श मानती है और किसी भी स्थिति में दूसरों की सहायता स्वीकार नहीं करती। अपने स्वाभिमान की रक्षा के लिए मजदूरी पर जाते हुए अपने बच्चों को कोठरी में बंद करना स्वीकार करती है, लेकिन बस्ती वालों की दया नहीं। स्वाभिमानी गुलाबी अपने अस्तित्व की स्थापना के लिए संघर्ष में टूटती नहीं अपितु पूरे मनोबल के साथ आर्थिक संघर्षों से जूझती है। अपने बच्चों के लिए वह अपनी जान की भी परवाह नहीं करती और स्वयं भूखे रहकर उनके भविष्य को सँवारने के लिए एक-एक पैसा जमा करती रहती है। यहाँ तक कि एक दिन वह बेहोश हो जाती है और जो उसके आसपास रहने वाले उसकी कठोरता को लेकर उस पर तंज करते रहते थे, आज वही पड़ोसी उसका अपने बच्चों के प्रति प्रेम देखकर आश्चर्यचकित रह जाते हैं–

काकी ने अँगिया के बंद ढीले किए तो अँगिया में से कागज की एक पुड़िया सरककर जमीन पर गिर गई।

काका ने कहा–देखूँ क्या है?

काकी ने पुड़िया पकड़ा दी। काका ने दीए के प्रकाश में पुड़िया को खोला तो देखा, काँच की दो छोटी-छोटी हरी चूड़ियाँ और 'शिशु सुरक्षा केंद्र' की पाँच रुपये की रसीद थी।'[1]

'दीवार', 'बच्चे और बरसात', 'ईसा के घर इंसान', 'नारी की दृष्टि', 'नारी की बात'

आदि अनेक कहानियों में मन्नू भंडारी ने नारी के बदलते तेवरों को उद्घाटित किया है। स्वतंत्र अस्तित्व की स्थापना के लिए अग्रसर नारी अपने शोषण, उत्पीड़न और बाधाओं के प्रति विद्रोही हो उठी है। अस्तित्व स्थापना के सामने अवरोध स्वरूप, संस्कारों एवं परंपराओं को तोड़ती हुई नारी को मन्नू भंडारी ने पूरी संवेदना के साथ रूपायित किया है। उषा प्रियंवदा की कहानियाँ एक विशेष प्रकार का मानसिक तथा परिवेशगत वातावरण रचती हैं, जिसमें उदासी, अकेलापन और बाहर या दूसरे से जुड़ पाने की एक अभिशप्त स्थिति अंकित हो जाती है। वह प्रायः उच्च-शिक्षाप्राप्त कामकाजी आधुनिक स्त्री की नियति बन जाती है। खास तौर पर एक ऐसी स्त्री, जो स्वतंत्र निजी और तनिक लीक से हटकर जीना चाहती है। यद्यपि उनकी सर्वाधिक चर्चित कहानी वापसी एक भिन्न प्रकार की कहानी है। उसमें एक सेवानिवृत्त व्यक्ति का अभिशप्त रूप अंकित किया गया है। वह वापस उसी दुनिया (परिवार) में नहीं जा सकता, जहाँ वह जाना चाहता है या जा सकता है। आधुनिक पारिवारिक संरचना की एक अनिवार्य नियति है। जैसे–कैसी विडंबना है कि जो व्यक्ति परिवार के लिए परिवार से अलग रहता है, वही परिवार उसे आजीवन अपने से अलग कर देता है और भेज देता है, उसे उसी दुनिया में जहाँ से वह आया है। वापसी के लिए परिवार में उसके लिए कोई स्थान नहीं है। उसकी इसी बेबसी को उषा प्रियंवदा ने कितनी सशक्त अभिव्यक्ति दी है–

'मैंने सोचा था कि वर्षों तुम सबसे अलग रहने के बाद अवकाश पाकर परिवार के साथ रहूँगा। खैर परसों जाना है। तुम भी चलोगी?'

'मैं?'

पत्नी ने सकपकाकर कहा, 'मैं चलूँगी तो यहाँ का क्या होगा? इतनी बड़ी गृहस्थी फिर सयानी लड़की....।'

बात बीच में ही काटकर गजाधर बाबू ने हताश स्वर में कहा, 'ठीक है, तुम यहीं रहो। मैंने तो ऐसे ही कह दिया था और गहरे मौन में डूब गए।'[2]

चित्रा मुद्गल की कहानियों में विषय की विविधता दृष्टिगोचर होती है। चित्रा जी का मानना है कि जब लेखक रचनारत होता है तो वह अपने दौर के आदमी में से ही एक हो उठता है। 'वस्तुतः कहानी ईंट-गारे में चिना हुआ लेखक का आत्मसाक्षात्कार जब भी पाठक के गुमराह या कुंद हुए विवेक पर प्रहार करता है तो उस पाठक का छद्म स्वयं उसकी चेतना द्वारा निर्वस्त्र हो उसे आत्मस्वीकारोक्ति के कटघरे में ला खड़ा करता है और वह रचना अविस्मरणीय हो सदैव-सदैव के लिए पाठक के मानस-पटल पर अंकित हो उठती है।'[3]

अस्सी और बानवे के दौरान इनकी बहुचर्चित कहानियाँ रहीं–'अपनी वापसी', 'मामला आगे बढ़ेगा अभी', 'भूख', 'लेन', 'जगदंबा बाबू आ रहे हैं', 'जिनावर', 'प्रेतयोनि', 'बाघ'। इनकी कहानियाँ मानवीय रिश्तों की कहानियाँ हैं। 'भूख' कहानी के विषय में डॉ॰ कृष्णदत्त पालीवाल जी का कथन है–'भूख' यातना अमानवीयकरण और शोषणजन्य हत्या की एक ऐसी चीख है, जो हमें भीतर तक हिला देती है।'[4]

'भूख' चित्राजी की हिंदी की प्रतिनिधि कहानी मानी जाती है, जिसे पढ़कर जैनेंद्र जी जैसे लेखक बधाई देने के लिए मुद्गल जी के निवास-स्थान पर पहुँच जाते हैं। 'दरअसल, घंटे डेढ़ घंटे पहले 'भारतीय भाषा परिषद् की पत्रिका 'संदर्भ भारती' में प्रकाशित तुम्हारी कहानी

'भूख' पढ़कर हृदय इस सीमा तक उद्दिग्न हो उठा कि घर पर भेंट हेतु आए सुरेश ऋतुपर्ण को प्रतीक्षा करने के लिए कहकर तत्काल मुद्गुल के दफ्तर जा पहुँचा, घर का पता पूछ उनसे थ्री व्हीलर कर देने के लिए कहा तो उन्होंने संग गाड़ी भेज दी। मुद्गल का अनुरोध रहा है कि आपकी बधाई चित्रा तक पहुँचा दूँगा, मगर मैं ऐसा नहीं कर पाया।'[5]

चित्राजी की कहानी 'प्रेतयोनि' में समाज में व्याप्त विसंगति को रेखांकित किया गया है कि हमारे समाज में बेटे के सात खून माफ किए जा सकते हैं, लेकिन निर्दोष बेटी के साथ लोकापवाद की आड़ में किस सीमा तक अमानवीय हुआ जा सकता है, इसका अनुमान माँ के आँचल में विशेष दर्जा पाने वाले पुत्रों को होना सर्वथा असंभव है। एक माँ किस प्रकार अपनी बेटी को मरने का श्राप दे रही है–'तू न मरी उन डेढ़ सौ सवारियों के साथ कुलच्छिन' जाते-जाते अम्मा सराप रही थी दाँत पीसती।

प्रेम, वात्सल्य, शुभेच्छा झूठे शब्द हैं। अपनी-अपनी कुंठाओं का पर्याय। वे जो जीवन के नाम पर जीना उसे सौंपना चाहते वह पग-पग पर उनकी शर्तों के तैयारशुदा फंदों में स्वयं को कसना नहीं होगा। यह नजरबंदी सिर्फ हफ्ते भर के लिए नहीं। एक लंबा गिरवीं जीवन ऐसी ही नज़रबंदी की चीथती सँकरी सुरंग में बंदी होकर बिताना होगा उसे, बिता सकेगा वह? [6]

एक बेटी के मन में उठने वाले असंख्य भावों को अभिभव्यक्त करती यह रचना किस प्रकार पाठकों के अंतर्मन को हिला जाती है और सोचने के लिए विवश करती है कि कब तक हम मात्र दर्शक बनकर खड़े रहेंगे?

अपनी वापसी कहानी में चित्रा जी ने एक ऐसी महिला की पीड़ा को अभिव्यक्ति दी है, जो उम्र के उस दौर में, जहाँ वह अपनी जिम्मेदारी तो भली प्रकार निभा चुकी है लेकिन फिर भी अंदर का खालीपन उसे कचोटता है, जहाँ उसे अपने अस्तित्व का ही संकट नजर आता है। चित्राजी ने उसकी इस पीड़ा, टीस और अकेलेपन को कितनी ख़ूबसूरती से अभिव्यक्त किया है–

'वे क्यों नहीं उसे अपने में शामिल करते? बच्चे तो बच्चे हैं किंतु हरीश....कितने स्वार्थी हैं। वे बड़ी चतुराई से उसकी दुनिया में दाखिल हो, उसका जीवंत हिस्सा हो लेते हैं....नितांत अकेला अप्रासंगिक बनाकर छोड़ देते हैं।' [7]

नासिरा शर्मा हिंदी की जानी-मानी कहानीकार हैं। नासिरा ने अपनी कहानियों के माध्यम से नारी की पीड़ा तथा संघर्ष को अभिव्यक्ति दी है। नासिरा इराक, पाकिस्तान और अफगानिस्तान के साहित्यिक तथा राजनीतिक परिवेश से भली-भाँति परिचित हैं। ये पत्रकारिता से भी जुड़ी हैं। इन्हें अनेक पुरस्कार और सम्मान प्राप्त हुए हैं। भारतीय समाज की नस-नस से परिचित नासिरा ने अपने पात्रों को जीवंतता प्रदान की है। नासिरा की अनेक कहानियाँ नारी की जीवनशक्ति को प्रस्तुत करती हैं। नासिरा शर्मा की कहानी 'पाँचवाँ बेटा' हिंदू-मुस्लिम एकता पर आधारित है। अमतुल की सहेली की मृत्यु हो गई तो उसका बेटा बहुत छोटा था। उन्होंने अपने बेटे का अधिकार काटकर सुलाखी को दूध पिलाया था और सुलाखी ने भी बड़ा होकर उसके दूध का कर्ज चुकाने में कोई कोताही नहीं की। जहाँ अमतुल के चारों पुत्र माँ को मनीआर्डर भेजकर अपने कर्त्तव्य की इतिश्री समझ लेते हैं, वहीं सुलाखी अमतुल को कभी अकेलेपन का अहसास नहीं होने देता। अमतुल के गुस्से की भी कोई परवा नहीं करता, तभी तो मोहर्रम के समय इमामबाड़े की छत को सुलाखी के ठीक करने पर अमतुल उसे डाँटती है तो उसकी पोती उससे कहती है–

'आपका गुस्सा रहमान पर है या सुलाखी पर?' पोती ने पटके तह करते हुए पूछा।

'दोनों पर।'

'यानी कि एक की नेकी और दूसरे की लापरवाही को आँकने का आपके पास एक ही पैमाना है।'[8]

मृदुला गर्ग हिंदी महिला-कहानीकारों में सशक्त हस्ताक्षर हैं। उन्होंने अनेक कहानियाँ लिखी हैं। इनकी कहानियों में नारी को एक शक्ति के रूप में चित्रित किया गया है। इसके साथ ही नारी के अंतर्मन में झाँककर उसके अछूते रहस्यों को उद्घाटित किया है। साथ ही नए विषय भी उठाए हैं। आज की राजनीति पर करारा व्यंग्य करती हुई उनकी कहानी 'टोपी' कितनी सार्थक है! किस प्रकार हमारे राजनेता गांधी टोपी पहनकर अपने स्वार्थ की पूर्ति करते हैं और दावा करते हैं समाजसेवा का।

कृष्णा सोबती का नाम हिंदी महिला-कहानीकारों में बहुत महत्त्वपूर्ण है। हिंदी साहित्य में इनका योगदान उस युग से है, जिसे नई कहानी के युग के नाम से जाना जाता है। इन्होंने अपनी कहानियों के माध्यम से भाव, विचार के स्तर पर जीवन-यथार्थ के नए पहलुओं को उद्घाटित किया है।

सोबती जी की कहानियों में वस्तु का संयोजन एवं विकास इस प्रकार होता है कि वह पाठकों के दिलो-दिमाग में उतरकर उनकी मानवीय संवेदनाओं और अनुभूतियों को और गहरा कर देती हैं। भावना और यथार्थ का स्वाभाविक और विश्वसनीय स्वर उनकी कहानियों की विशेषता है। सोबती जी ने अनेक कहानियों की रचना की है। 'सिक्का बदल गया' सोबती जी की प्रसिद्ध कहानी है। सन 1947 में भारत-विभाजन के समय को धर्म के आधार पर विभाजित कर दिए जाने के अँग्रेज़ी षड्यंत्र के फलस्वरूप हिंदू और मुसलमानों के बीच जो अविश्वास और पारस्परिक संघर्ष की खूनी घटना हुई थी, उसी पृष्ठभूमि पर यह कहानी आधारित है। सदियों से साथ रहे लोग किस प्रकार स्वार्थ और जातीय एवं राजनीतिक सत्तात्मक उन्माद में अमानवीय हो जाते हैं, उसका कितना सजीव चित्रण यहाँ किया गया है–

'शेरा शाहनी का स्वर पहचानता है। वह न पहचानेगा। अपनी माँ जैना के मरने के बाद वह शाहनी के पास ही पलकर बड़ा हुआ है। उसने पास पड़ा गँडासा 'शटले' के ढेर के नीचे सरका दिया। हाथ में हुक्का पकड़कर बोला, ऐ हे सैना सैना। शाहनी की आवाज उसे कैसे हिला गयी है। अभी तो वह सोच रहा था कि उस शाहनी की ऊँची हवेली की अँधेरी कोठरी में सोने-चाँदी की संदूकचियाँ उठाकर–कि तभी शेरे-शेरे। शेरा गुस्से से भर उठा। किस पर निकाले अपना क्रोध? शाहनी पर।'[9]

उषादेवी मित्रा प्रसिद्ध कहानी-लेखिका हैं। उनकी कहानियों में नारीहृदय की कोमलता, स्नेह की मौन वेदना और आत्मसंयम विशेष रूप से लक्षित होते हैं। आरंभ में उषाजी बंगला में लिखा करती थीं, लेकिन मैथिलीशरण जी के साकेत की ऊर्मिला के चरित्र ने इनको इतना प्रभावित किया कि इन्होंने हिंदी में लेखन आरंभ कर दिया। इन्होंने अनेक कहानियों की रचना की है।

महादेवी वर्मा के साहित्य-सृजन से कौन अपरिचित है। मुख्यत: महादेवीजी ने काव्य-रचना की है। आप हिंदी की श्रेष्ठ कवयित्री हैं। साथ ही आपने गद्य-लेखन में भी महारथ

हासिल की है। आपके रेखाचित्र (स्मृति की रेखाएँ और अतीत के चलचित्र) नाम से प्रकाशित हो चुके हैं। ये संस्मरणात्मक कहानी-संग्रह के नाम से अभिहित किए जा सकते हैं। आपकी इन संस्मरणात्मक कहानियों में भावपूर्ण यथार्थ अंकित है, जो पाठकों के हृदय की सुप्त करुणा को जाग्रत कर उनकी सहानुभूति का माध्यम बन जाता है।

मृदुला सिन्हा का नाम भी कहानी-लेखन में महत्त्वपूर्ण माना जाता है। आपने भारतीय परिवेश में महिलाओं के समक्ष उपस्थित सामाजिक, आर्थिक एवं मनौवैज्ञानिक ज्वलंत समस्याओं को अपने लेखन का विषय बनाया है। आपने अनेक कहानियों की रचना की है। सहस्र पूतों वाली कहानी में लेखिका ने ऐसी नारी के जीवन को चित्रित किया है, जिसने अपना संपूर्ण जीवन सेवा में अर्पित कर दिया और बिना एक संतान के भी जिसे बदले में सहस्रों पुत्रों की माँ होने का गौरव प्राप्त हुआ। उसकी अंतिम-यात्रा में सहस्रों पुत्रों ने अपनी श्रद्धांजलि अर्पित की। यह कहानी हमारे समाज के लिए एक उदाहरण है, जहाँ आज हम अपने रिश्तों को भी नहीं सँभाल पाते, वहाँ पार्वती जैसी महिलाएँ किस प्रकार सहस्रों पुत्रों वाली बन जाती है।

हिंदी महिला-कहानीकारों की कहानियों का अध्ययन करने के पश्चात् ऐसा प्रतीत होता है कि युग के बदलते संदर्भों की दृष्टि से नारी-संवेदना को केंद्र में रखा गया है। वास्तव में ये थीम स्त्री-स्वतंत्रता तथा संघर्ष से जुड़ती है तथा नारी के ईद-गिर्द घूमती है। मुक्ति, अस्मिता, आइडेंटिटी की तलाश के साथ पारिवारिक विघटन जैसी समस्याओं तथा स्थितियों को विभिन्न दृष्टिकोण से प्रस्तुत करती है। विद्रोह, त्याग, विश्वास, समर्पण और समझौता जैसी शाश्वत भावनाएँ इन कहानियों की विशेषताएँ हैं। ये कहानियाँ नारी-छवि पर समाज तथा कहानी द्वारा थोपे गए दोहरे-तिहारे चेहरों के मुखौटे उतारते हुए नई सामाजिक स्थितियों में अपनी नई भूमिका और घर-बाहर के नए संबंधों पर प्रकाश डालती हैं।

संदर्भ

1. कहानी सौरभ, डॉ॰ एल॰एन॰ शर्मा, पृ॰ 100
2. अभिनव कहानी संकलन, डॉ॰ मीना अग्रवाल, पृ॰ 133
3. चर्चित कहानियाँ, चित्रा मुद्गल, पृ॰ 6
4. चर्चित कहानियाँ, चित्रा मुद्गल, पृ॰ 7
5. चर्चित कहानियाँ, चित्रा मुद्गल, पृ॰ 7
6. चर्चित कहानियाँ, चित्रा मुद्गल, पृ॰ 64
7. चर्चित कहानियाँ, चित्रा मुद्गल, पृ॰ 27
8. कहानी-संकलन, डॉ॰ आर॰एस॰ शर्मा, पृ॰ 85
9. कालजयी हिंदी-कहानियाँ, डॉ॰ शुभा माहेश्वरी, पृ॰ 91

विज्ञान पत्रकारिता की अवधारणा और अवसर

डॉ॰ अरुणकुमार भगत
एसोसिएट प्रोफेसर
माखनलाल चतुर्वेदी राष्ट्रीय पत्रकारिता एवं संचार विश्वविद्यालय
नोएडा कैंपस

यह सूचना प्रौद्योगिकी का युग है। अत्याधुनिक आविष्कार के कारण प्रकाश की गति से सूचनाओं का संप्रेषण संभव है। आज मीडिया की महत्ता केवल तीव्र गति से सूचनाओं के संप्रेषण के कारण ही नहीं है, अपितु सूचनाओं की विविधता और लोकरुचि-लोकहित के परिष्कृत परिवर्तित स्वरूप के कारण भी है। जिस व्यक्ति के पास जितनी सूचनाएँ होती हैं, वह व्यक्ति समाज में उतना ही प्रतिष्ठित होता है और आदर पाता है। सूचनाओं के आधार पर समाज में सुसंस्कृत कहलाना और मान-सम्मान पाना कोई नई बात नहीं है। अनादिकाल से यह प्रक्रिया चली आ रही है। पुराने ज़माने में समाज के नीति-निर्धारक, राजा-महाराजा और अभिजात्य वर्ग के लोगों का सूचनाओं पर एकाधिकार होता था। यह सदी है कि समाज के ऐसे लोगों का कृत्य सामाजिक और सार्वजनिक महत्त्व की सूचनाएँ बनता है, किंतु अब जन-जन को उसे जानने और टिप्पणी करने का मार्ग सर्वसुलभ है।

सूचना और संवाद-संप्रेषण जनजीवन का अभिन्न अंग है। मनुष्य में अपने परिवेश को जानने की सहज प्रवृत्ति है। यह प्रवृत्ति व्यक्ति के हित, रुचि, स्वार्थ और समाज में बेहतर दिखने के कारण उत्पन्न होती है। एक हद तक कहा जा सकता है कि व्यक्ति की महत्त्वाकांक्षा उसे जिज्ञासु बनाती है। जिज्ञासु व्यक्ति के जीवन की जिजीविषा की सार्थकता ज्ञान की चाह के कारण है जिससे व्यक्ति अपना हित साधता है। मनुष्य की जिज्ञासा की पूर्ति सूचनाओं से होती है। समझ विकसित करने के लिए सूचनाओं की नितांत आवश्यकता होती है। वैसी तथ्यपरक, नवीन और असाधारण सूचनाएँ जिसमें अधिकतम लोगों की अधिकतम रुचि हो, उसे 'समाचार' कहा जाता है। यह संसार के विभिन्न माध्यमों से जन-समूह तक पहुँचता है।

जिस प्रकार भावना, संवेदना, अनुभव और समझ को हस्तांतरित अथवा अभिव्यक्त करने के लिए भाषा की आवश्यकता लोगों ने महसूस की होगी, उसी प्रकार उस अभिव्यक्ति को, जिसमें लोकहित और लोकरुचि हो, जनसमूह तक पहुँचाने की इच्छा-आकांक्षा लोगों के मन में उफान ले रही होगी, जो हज़ारों-हज़ार वर्ष बाद भले ही औपचारिक रूप में पत्रकारिता की शक्ल में सामने आई, किंतु अनौपचारिक रूप से यह प्राचीनकाल से चली आ रही है। लोगों में संवाद अथवा सूचना-संप्रेषण की अवधारणा शायद तब आई, जब जनसामान्य में ईश्वर की अवधारणा का भी विकास नहीं हुआ था। अतएव यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगा कि पत्रकारिता की

अवधारणा ईश्वर की अवधारणा से भी प्राचीन है। इस परिप्रेक्ष्य में इसकी महत्ता भी स्वयंसिद्ध है।

जन-जीवन में हमारे इर्द-गिर्द सूचनाओं और संवादों का अंबार लगा हुआ रहता है। जानकारियाँ अनेक रूप-रंगों में हमारे सामने आती रहती हैं, किंतु सभी सूचनाओं और जानकारियों को समाचार की श्रेणी में नहीं रखा जा सकता है। हमारे चारों ओर अफवाहें भी बहुतायत में फैली रहती हैं। कई बार इसमें से खबरों को चुनना कठिन हो जाता है। अब सवाल उठता है कि आखिर वे कौन-कौनसे आधार हैं, जिसकी कसौटी पर हम सूचनाओं और जानकारियों को कसने के बाद उसे समाचार की श्रेणी में रखते हैं? समाचार की परिभाषा क्या है? उसकी महत्ता किस प्रकार प्रभावित होती है?

पश्चिमी संचार-विशेषज्ञ प्रो॰ चिल्टन बुश ने समाचार को परिभाषित करते हुए लिखा है कि 'समाचार वह उत्तेजक सूचना है, जिससे कोई व्यक्ति संतोष अथवा उत्तेजना प्राप्त करता है।' श्री जे॰जे॰ सिलडर के अनुसार, 'पर्याप्त संख्या में मनुष्य जिसे जानना चाहे वह समाचार है, शर्त यह है कि वह सुरुचि तथा प्रतिष्ठा के नियमों का उल्लंघन न करे'। संचार-विशेषज्ञ विलियम एल॰ रिवर्स का मानना है कि 'घटनाओं-तथ्यों और विचारों की ऐसी सामाजिक रिपोर्ट समाचार है, जिसमें पर्याप्त लोगों की रुचि हो'। इसी तथ्य को प्रो॰ विलियम जी॰ ब्लेयर ने दूसरे शब्दों में अभिव्यक्त किया है। उनके अनुसार, 'अनेक व्यक्तियों की अभिरुचि जिस सामाजिक बात में हो, वह समाचार है। सर्वश्रेष्ठ समाचार वह है, जिसमें बहुसंख्यकों की अधिकतम रुचि हो।' पश्चिम के एक अन्य संचार-विशेषज्ञ टर्नर कॉलेज का मानना है कि 'वह सभी कुछ, जिससे आप कल तक अनभिज्ञ थे, समाचार है।'

उपर्युक्त परिभाषाओं के आलोक में यह निष्कर्ष निकलता है कि नवीनता, सामयिकता, असाधारणता और विशिष्टता से संपृक्त ऐसी सूचना, जानकारी अथवा घटनात्मक विवरण समाचार है, जिसमें लोकहित और लोकरुचि हो। सभी समाचार सूचनाएँ हैं, किंतु सभी सूचनाएँ समाचार नहीं हैं। जाहिर है समाचार बनने के लिए नवीनता, सामयिकता, असाधारणता, विशिष्टता, परिवर्तन, सामाजिक मूल्यों और मर्यादाओं का उल्लंघन, अवमूल्यन इत्यादि कसौटी की अनिवार्यता होती है, किंतु इसमें जब तक लोकहित और लोकरुचि का विनियोग नहीं होता, तब तक वह समाचार नहीं बनेगा।

विज्ञान-पत्रकारिता की अवधारणा

वह पत्रकारिता जिसमें वैज्ञानिक खोज, अनुसंधान और आविष्कार के साथ-साथ प्रौद्योगिकी के समाचार हों, वह विज्ञान-पत्रकारिता कहलाती है। लेखन की विविध विधाओं समाचार, फीचर, लेख, स्तंभ, विश्लेषण, रिपोर्ताज, समीक्षा आदि के रूप में विज्ञानविषयक जानकारी उपलब्ध कराई जाती है। विज्ञान-पत्रकारिता के नाम पर वैज्ञानिकों के वक्तव्यों और भाषणों को प्रकाशित-प्रसारित किया जा रहा है, जो अनुचित है। वस्तुतः विज्ञान-पत्रकारिता विज्ञान को नवीनतम खोज, विकास और वैज्ञानिक प्रगति से जुड़े तथ्यों को जनजीवन तक पहुँचाने का एक माध्यम है।

पत्र-पत्रिकाओं में विज्ञान-संबंधी खबरों से लोकशिक्षण के साथ-साथ पाठकों में वैज्ञानिक दृष्टिकोण का विकास होता है। नवीनतम शोध जीवन की दशा-दिशा को प्रभावित करता

है। इससे मानव के विवेक का विस्तार होता है। इस प्रकार लोकशिक्षण द्वारा विज्ञान पत्रकारिता अपने उद्देश्य की सार्थकता पाती है। जनसामान्य में व्याप्त अंधविश्वास, रूढ़िवादी परंपराएँ, वैचारिक और वैज्ञानिक पिछड़ापन जैसी मान्यताओं को ध्वस्त करना विज्ञान-पत्रकारिता का लक्ष्य होना चाहिए। इससे समाज में प्रगतिशीलता का संचार होता है। इससे लोगों में वैज्ञानिक चेतना आती है। भारतीय जनमानस तो इस मामले में काफी पिछड़ा है। अतएव इस अर्थ में विज्ञान-पत्रकारिता का उद्देश्य यहाँ बढ़ जाता है। कई बार धार्मिक मान्यताएँ लोकजागृति पैदा करने में बाधक होती हैं। इसलिए ऐसी परिस्थितियों में विज्ञान-पत्रकारिता का कुशलतापूर्वक उपयोग अपेक्षित हो जाता है। सूचना प्रौद्योगिकी के चामत्कारिक विकास के कारण हमें हज़ारों-हज़ार किलोमीटर की ख़बरें क्षणभर में मिल जाती हैं। अब हम वैज्ञानिक समाचारों का लिखित विवरण ही प्राप्त नहीं करते, अपितु विभिन्न चैनलों और दूरदर्शन के माध्यम से उसका साक्ष्य भी दृष्टिगोचर होता है।

अमेरिका की नेशनल साइंस राइटर्स एसोसिएशन के अनुसार, 'विज्ञान समाचार में वह सब सम्मिलित है, जो प्रकृति (सत्य) के बारे में वैज्ञानिक खोजते हैं। यह ग्रहों, परमाणुओं, मानव-शरीर या मस्तिष्क की कोई भी खोज हो सकती है। इसमें वे तरीके (टैक्नोलॉजी) भी शामिल हैं, जिनसे इस खोजे गए ज्ञान का व्यावहारिक उपयोग होता है।'[1]

विज्ञान-पत्रकारिता वह माध्यम है, जिसके द्वारा शिक्षित प्रबुद्धवर्ग देश के अर्धशिक्षित, अशिक्षित तथा कम प्रबुद्ध जनों के लिए सूचना स्रोत उपलब्ध कराया जा सकता है। यह कार्य विज्ञान-पत्रकार के मत्थे आता है। वह स्वयं लेख लिखकर विभिन्न क्षेत्रों में लगे वैज्ञानिकों को लिखने के लिए प्रेरित करके उनसे साक्षात्कार करके अन्य भाषाओं के उपयोगी तथ्यों का अनुवाद करके किसी पत्र या पत्रिका द्वारा प्रकाश में लाता है।[2]

विज्ञान के क्षेत्र में की गई कोई भी खोज, अनुसंधान और आविष्कार विज्ञान समाचार है। खोज की शुरुआत भी विज्ञान समाचार है, अनुसंधान की प्रगति भी विज्ञान समाचार है, भले ही उसके परिणाम न आए हों। अंतरिक्ष में भेजने हेतु तैयार किए जा रहे या तैयार किए गए उपग्रह विज्ञान समाचार हैं। उनका प्रक्षेपण और नियंत्रण तथा उनका प्रयोग भी विज्ञान समाचार है। किसी नई चिकित्सा-पद्धति या नई दवा का विकास भी विज्ञान समाचार है। फसलों की नई किस्मों की खोज, नए बीजों का विकास, परमाणु संयंत्र, सागर-खनन, औद्योगिक उत्पादन-प्रणालियाँ, प्रयोगशालाओं का विकास, आणविक या अंतरिक्ष दुर्घटना आदि सभी विज्ञान समाचार हैं।[3]

विज्ञान-पत्रकारिता के अंतर्गत प्रौद्योगिकी, स्वास्थ्य, पर्यावरण, सूचना प्रौद्योगिकी, जैव प्रौद्योगिकी, अंतरिक्ष, खगोलिकी, आयुर्विज्ञान इत्यादि आते हैं। वर्तमान संदर्भ में विज्ञान-पत्रकारिता का आयाम व्यापक हो गया है, किंतु एक सर्वेक्षण के अनुसार अँग्रेजी अखबारों में 4.3 प्रतिशत तथा हिंदी अखबारों में मात्र 2.5 प्रतिशत स्थान विज्ञान समाचारों को मिला। इससे यह प्रमाणित होता है कि विज्ञानविषयक समाचारों को अपेक्षाकृत कम महत्त्व दिया जाता है। पत्र-पत्रिकाओं के संपादक विज्ञान समाचार को शायद ही कभी प्रथम पृष्ठ पर प्रमुखता से स्थान देते हैं। समाचार-पत्रों के कार्यालय में विज्ञान संवाददाताओं का सर्वथा अभाव रहता है। ऐसे में पाठकों की रुचि का परिष्कार कर उसमें विज्ञान समाचारों को पढ़ने के प्रति ललक पैदा करने की आवश्यकता है। ऐसे विज्ञान लेखकों की आवश्यकता है, जो विज्ञान जैसे गंभीर विषय को रोचकता के साथ और लालित्यपूर्ण तरीके से प्रस्तुत करें।

विज्ञान-पत्रकारिता में अवसर

यह ठीक है कि भारत में विज्ञान कवरेज अपेक्षाकृत काफी कम है, किंतु इसकी संभावनाओं का आकाश काफी विस्तृत और व्यापक है। विज्ञान की लोकप्रियता की दिशा में अभी काफी कुछ किया जाना शेष है। जनसामान्य के बीच विज्ञान की खबरों के प्रचार-प्रसार को बढ़ाया जा सकता है। भारत में विज्ञान पत्रकारिता के प्रशिक्षण की दृष्टि से काफी कुछ किया जाना बाकी है। एन॰सी॰एस॰टी॰सी॰ द्वारा सात अँग्रेजी पत्रिकाओं में विज्ञान समाचार के कवरेज से संबंधित कराए गए एक सर्वेक्षण के अनुसार केवल तीन प्रतिशत स्थान विज्ञान समाचारों को मिलता है। ऐसे में विज्ञानविषयक लेखकों के प्रशिक्षण के साथ-साथ उसके लिए रोजगार के अवसर, पुरस्कार फैलोशिप इत्यादि को बढ़ाकर विज्ञान-लेखन की लोकप्रियता बढ़ाई जा सकती है। विज्ञान पत्रकारों का यह दायित्व है कि वह विज्ञान संबंधी समाचारों के लिए सहज और सरल भाषा का प्रयोग करें। दूसरी ओर आम लोगों का भी दायित्व है कि वह विज्ञान-संबंधी जीवनोपयोगी खबरों को महत्त्व दें, इससे लोगों में वैज्ञानिक चेतना का विस्तार होगा।

वैज्ञानिकों और विज्ञान पत्रकारों के बीच संवाद को बढ़ाकर ही विज्ञान को लोकप्रिय बनाया जा सकता है। पत्रकारों का मानना है कि वैज्ञानिक जो कार्य करते हैं, जिन गूढ़ रहस्यों की गुत्थियों को सुलझाते हैं, उसी प्रक्रिया थोड़ी जटिल होती है। आम पाठकों की रुचि उसमें अपेक्षाकृत कम होती है। आम पाठकों को तो राजनीति, सेक्स, अपराध, सिनेमा और फैशन से संबंधित खबरों में रुचि होती है। दूसरी ओर वैज्ञानिकों का आरोप है कि विज्ञान की खबरों को पत्रकार महत्त्व नहीं देते। उसकी रोचक प्रस्तुति में वे असफल रहते हैं। इसलिए विज्ञान समाचार की लोकप्रियता अपेक्षाकृत कम है। इस संदर्भ में संतोष की बात यह है कि वैज्ञानिक और विज्ञान पत्रकारों के बीच संवाद बढ़ा है। विज्ञान की खबरों को चटपटे और मसालेदार बनाकर प्रस्तुत करने के बजाय उसकी प्रमाणिकता और विश्वसनीयता बढ़ी है। प्रिंट मीडिया के साथ-साथ इलैक्ट्रॉनिक मीडिया में भी विज्ञान समाचार को महत्त्व मिलने लगा है।

विज्ञान पत्रकारों का दायित्व है कि वे विज्ञान के शुक्ल और कृष्ण दोनों पक्षों से जन-जीवन को अवगत कराएँ। तथ्यों की पूरी छान-बीन के बिना पत्रकारिता करना विज्ञान पत्रकारिता की आत्महत्या साबित होगी। यह ठीक है कि विज्ञान लेखन में अनुवाद की महत्त्वपूर्ण भूमिका है, किंतु विज्ञान समाचार को लिखते समय हिंदी की प्रकृति और प्रवृत्ति पर भी ध्यान देने की आवश्यकता है। ऐसी अपेक्षा की जाती है कि विज्ञान समाचार की भाषा हिंदी जनमानस के अनुरूप हो।

पत्रकारों के संबंध में कहा जाता है कि पत्रकार जन्मजात होते हैं अर्थात् उसमें पत्रकारिता की प्राकृतिक क्षमता होती है जबकि आजकल विज्ञान और तकनीक के इस युग में पत्रकारिता की क्षमता का पल्लवन और पुष्पन किया जा सकता है। पत्रकारिता के लिए आवश्यक तकनीकी क्षमता का विकास किया जा सकता है। भारत में विज्ञान पत्रकारिता के प्रशिक्षण की पर्याप्त संभावनाएँ हैं। 'भारतीय राष्ट्रीय वैज्ञानिक प्रलेख पोषण केंद्र, नई दिल्ली, पं॰ गोविंदवल्लभ पंत कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, पंतनगर (उत्तराखंड), चंद्रशेखर आजाद कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, कानपुर, भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान नई दिल्ली सहित देश के अनेक कृषि विश्वविद्यालयों में विज्ञान-पत्रकारिता का प्रशिक्षण दिया जा रहा है। माखनलाल चतुर्वेदी राष्ट्रीय

पत्रकारिता एवं संचार विश्वविद्यालय भोपाल, जामिया मिलिया इस्लामिया विश्वविद्यालय दिल्ली, मदुरै कामराज विश्वविद्यालय मदुरै, पांडिचेरी विश्वविद्यालय पांडिचेरी इत्यादि में विज्ञान-पत्रकारिता का डिप्लोमा पाठ्यक्रम चल रहा है।

विज्ञान-पत्रकारिता में रोजगार के पर्याप्त अवसर हैं। मुद्रित माध्यम हो या इलैक्ट्रॉनिक हर जगह विज्ञान रिपोर्टिंग की संभावनाएँ हैं। भारत में पर्याप्त विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी संस्थान हैं, जहाँ विज्ञान की पृष्ठभूमि के जनसंपर्क अधिकारी नियुक्त किए जाते हैं।

अंतरिक्ष अनुसंधान को व्यवस्थित रूप देने के उद्देश्य से भारत में 1972 ई॰ में 'अंतरिक्ष आयोग' का गठन किया। बंगलौर में भारतीय अंतरिक्ष अनुसंधान-संस्थान के स्थापित हो जाने के बाद इस क्षेत्र में बहुत प्रगति हुई है। 'आर्यभट्ट', 'भास्कर', 'रोहिणी' इसी संस्थान की देन हैं। त्रिवेंद्रम में 'विक्रम साराभाई अंतरिक्ष केंद्र' स्थापित हुआ। इससे प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण उपलब्धियाँ हो रही हैं। अहमदाबाद में 'फिजिकल रिसर्च लैबोरेटरी' के बन जाने से हैदराबाद में 'नेशनल रिमोट सेंसिंग एजेंसी' हो जाने से देहरादून में 'इंडियन इंस्टीट्यूट ऑफ रिमोट सेंसिंग' स्थापित हो जाने से और मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र आदि में कई संस्थान खुल जाने से वैज्ञानिक प्रौद्योगिकीय उन्नयन में काफी तीव्रता आई है।[4]

'द टाटा इंस्टीट्यूट ऑफ फंडामेंटल रिसर्च' (बंबई) न्यूक्लियर फिजिक्स में सराहनीय कार्य कर रहा है। इसी प्रकार 'द इंदिरा गांधी सेंटर फॉर एटोमिक रिसर्च' का महत्त्वपूर्ण योगदान है। 1984 ई॰ में इंदौर में 'द सेंटर फॉर एडवांस्ड टेक्नालॉजी' की स्थापना की गई। 'द एटोमिक इनर्जी रेगुलेटरी बोर्ड और क्राइसि मैनेजमेंट ग्रुप' (1987 ई॰) से न्युक्लियर रिसर्च को पर्याप्त सहायता मिल रही है।

भारत की विभिन्न भाषाओं में 300 से अधिक विज्ञान-पत्रिकाएँ छपती हैं। इनमें से अधिकतर गैर-सरकारी हैं तो कुछ सरकारी भी। इसके अतिरिक्त हजारों की संख्या में समाचार-पत्र छपते हैं, जिनमें विज्ञान लेखकों/ पत्रकारों की आवश्यकता होती है। विज्ञान से संबंधित अनेक शोध-पत्रिकाएँ भी छपती हैं, जिनमें विज्ञान-पत्रकारों के लिए रोजगार की पर्याप्त संभावनाएँ होती हैं। विज्ञानविषयक पुस्तकें भी बड़ी संख्या में छपती हैं, जिसमें प्रकशन संस्थानों को विज्ञान की पृष्ठभूमि वाले पत्रकारों / संपादकों की आवश्यकता पड़ती है।

दूरदर्शन और आकाशवाणी के साथ-साथ अनेक प्राइवेट न्यूज चैनलों में विज्ञान रिपोर्टिंग की पर्याप्त संभावना है। विज्ञान-लेखकों के लिए स्वतंत्र पत्रकारिता में भी रोजगार की संभावनाएँ हैं। देश में अनेक ऐसे विज्ञान पत्रकार हैं, जो विज्ञानविषयक लेख, फीचर, कालम आदि लिखकर जीवन-यापन करते हैं।

विज्ञान-पत्रकारिता को बढ़ावा देने के लिए अनेक राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय पुरस्कार दिए जाते हैं। राष्ट्रीय विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी संचार परिषद् द्वारा विभिन्न क्षेत्रों एवं आयुवर्गों में छह पुरस्कार दिए जाते हैं। अंतर्राष्ट्रीय कलिंग पुरस्कार के साथ-साथ संयुक्त राष्ट्रसंघ के खाद्य एवं कृषि संगठन द्वारा श्रेष्ठ प्रकाशित-प्रसारित लेखों के लिए पुरस्कार दिए जाते हैं। वैज्ञानिक एवं औद्योगिक अनुसंधान परिषद् द्वारा हिंदी विज्ञान-लेखन पुरस्कार, अंतरिक्ष विभाग द्वारा विक्रम साराभाई पुरस्कार, विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी विभाग द्वारा हिंदी विज्ञान पुस्तकों पर पुरस्कार, वन अनुसंधान संस्थान देहरादून द्वारा हिंदी लेखन के लिए पुरस्कार, परमाणु ऊर्जा विभाग द्वारा हिंदी

पुस्तकों के लिए भाभा पुरस्कार, पर्यावरण विभाग द्वारा हिंदी लेखन पुरस्कार, भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद् द्वारा डॉ॰ राजेंद्रप्रसाद पुरस्कार दिए जाते हैं। इसके अतिरिक्त सरिता, मुक्ता लोकप्रिय विज्ञान लेखन पुरस्कार विज्ञान परिषद् प्रयाग द्वारा डॉ॰ गोरखप्रसाद पुरस्कार और हिंदी विज्ञान साहित्य परिषद् मुंबई द्वारा अखिल भारतीय हिंदी विज्ञान लेखन प्रतियोगिता पुरस्कार दिए जाते हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि विज्ञान लेखन को प्रोत्साहित करने के लिए न केवल सरकारी बल्कि स्वयंसेवी संगठनों द्वारा भी अनेक योजनाएँ क्रियान्वित हो रही हैं।

संदर्भ

1. डॉ॰ मनोज पटौरिया : विज्ञान-पत्रकारिता, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली संस्करण 2007, पृ॰ 62
2. डॉ॰ रामगोपाल मिश्र : विज्ञान-पत्रकारिता के मूल सिद्धांत, तक्षशिला प्रकाशन, संस्करण 2006, पृ॰ 22
3. डॉ॰ मनोज पटौरिया : विज्ञान-पत्रकारिता, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली संस्करण 2007, पृ॰ 63
4. डॉ॰ सीताराम झा 'श्याम' : स्तरीय निबंध, पी॰के॰ रिसर्च सेंटर, पटना संस्करण 1994, पृ॰ 86
5. वही, पृ॰ 86

भारत में महिला सशक्तीकरण एक समाजशास्त्रीय अवलोकन

डॉ॰ मंजु चौधरी
समाज विज्ञान विभाग
रानी भाग्यवती महिला महाविद्यालय, बिजनौर (उ॰प्र॰)

यत्र नार्यस्तु पूज्यते रमन्ते तत्र देवता[1]

मनुस्मृति के इस श्लोक से यह प्रतीत होता है कि देवताओं के रमण का काल संभवतया नारी के इतिहास का स्वर्णिम काल रहा होगा। मनुस्मृति के परवर्ती काल में नारी की यह स्थिति दृष्टिगोचर नहीं होती है। परवर्ती ऐतिहासिक वर्णनों से यह स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है कि वैदिक काल के पश्चात् मानव-समाज में ऐसी सांस्कृतिक संस्थाओं और सामाजिक मूल्यों का विकास हुआ, जिन्होंने नारी के अस्तित्व एवं प्रस्थिति पर अनेक प्रश्नचिह्न लगा दिए। इस प्रकार नारी को देवी का स्वरूप समझने वाले पितृसत्तात्मक समाज ने घर की चारदीवारी के अंदर व बाहर धर्म, संस्कारों एवं प्रतिष्ठा के नाम पर ऐसे बंधन लगाए हैं, जिन्हें पूर्णरूपेण तोड़कर स्वयं को सशक्तीकृत करना उसके लिए अभी तक संभव नहीं हुआ है।[2]

सशक्तीकरण एक बहुआयामी अवधारणा है, जो व्यक्ति अथवा व्यक्तियों के समूह को इस योग्य बनाने का प्रयास करता है कि वे जीवन के प्रत्येक क्षेत्र/ कार्यों में पूर्ण अस्मिता तथा शक्तियों को प्राप्त कर सकें। यदि किसी भी समाज में स्त्री-पुरुष असमानता के बीज विद्यमान हैं तो यह उस समाज के समग्र विकास के लिए कैसे यथोचित है?[3]

किसी भी राष्ट्र या समाज के समग्र एवं संतुलित विकास के लिए महिलावर्ग का राष्ट्र की मुख्य धारा से जुड़ा होना परमावश्यक है। देश की आधी आबादी की पूर्ण सक्रियता एवं सहभागिता ही संबंधित समाज के समूचे विकास की पूर्व शर्त है। इस तथ्य को स्पष्ट करते हुए अमेरिकी विद्वान टॉक विल का कथन है कि अमेरिकी महिलाओं की सर्वोपरिता ही अमेरिकी लोकतंत्र की सुदृढ़ता एवं समृद्धि का प्रमुख आधार है।[4]

अमर्त्य सेन ने अपनी पुस्तक 'Indian Economic Development and Social Opportunity' में लिखा है 'महिला सशक्तीकरण से न केवल महिलाओं के जीवन में निश्चित रूप से सकारात्मक असर पड़ेगा बल्कि पुरुषों और बच्चों को भी इससे लाभ मिलेगा। इसलिए राष्ट्र का सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक विकास, शासन की गुणवत्ता एवं महिलाओं की सक्षमता दोनों पर निर्भर करता है।'[5]

प्रारंभिक काल में भारतीय समाज में स्त्रियों को अनेक अधिकार प्राप्त थे। वैदिककाल

तथा उत्तर वैदिककाल के पश्चात् समाज की मौलिक अवस्थाओं का स्थान रूढ़ियों ने ले लिया, इसका परिणाम यह हुआ कि स्त्रियों का सम्मान और उनके अधिकार कम होते चले गए। पुरुषप्रधान समाज स्त्रियों के अधिकारों का हनन करता गया और कभी सांस्कृतिक मूल्यों और कभी परंपराओं के नाम पर स्त्री का शोषण होता चला गया और इन सबके परिणामस्वरूप स्त्रियों की परिस्थिति दिन-प्रतिदिन बद से बदतर होती चली गई।[6] रूढ़ियों एवं परंपराओं को धर्म के ज्ञाताओं एवं स्मृतिकारों का सहयोग मिलने से स्त्रियाँ धीरे-धीरे पराधीन, असहाय और निर्बल हो गईं तथा समाज में स्त्री की परिस्थिति पुरुष की तुलना में द्वितीयक हो गई। पुरुष ने स्त्री के पारिवारिक अधिकार सीमित कर दिए और स्वयं का प्रभुत्व स्थापित कर लिया।[7]

मध्यकाल में भारतीय समाज में स्त्रियों की परिस्थिति सर्वाधिक शोचनीय रही। विदेशी आक्रमणजन्य असुरक्षा ने बाल-विवाह, सती-प्रथा, जौहर व पर्दा-प्रथा जैसी तमाम कुरीतियों को जन्म दिया। वैदिकयुग की 'स्वतंत्र' एवं 'स्वछंद' नारी गृहकार्य में कैद होकर रह गई। रही-सही कसर 'ढोल गँवार शूद्र पशु नारी, ये सब ताड़न के अधिकारी' जैसे विशेषणों का प्रयोग करते हुए तुलसीदास जैसे मनस्वियों ने पूरी कर दी। किंतु धीरे-धीरे समय के साथ बदलाव आया और समाज में स्त्रियों की परिस्थिति में पुनः सुधार प्रारंभ होने लगा है। महिलाओं को समाज में सम्मानजनक स्थान दिलाने हेतु सामाजिक व वैधानिक दोनों ही स्तरों पर समाजसुधारकों व महिला आंदोलनों ने गंभीर प्रयास किए।

महात्मा गांधी ने हिंद स्वराज्य में लिखा 'जब तक आधी मानवता के आँखों में आँसू हैं, मानवता पूर्ण नहीं कही जा सकती।'[8] इसी के साथ स्वतंत्रता व समानता पर आधारित लोकतांत्रिक मूल्यों की बयार ने भी महिलाओं को घर की दहलीज से निकालकर विश्वपटल पर स्थापित कर दिया। नीतिनियामक स्तर पर यह भी महसूस किया गया कि बिना आधी आबादी की भागीदारी के किसी भी लोकहितकारी कार्यक्रम की शत-प्रतिशत सफलता सुनिश्चित नहीं है।

साहित्यिक स्तर पर छायावादीयुग के जयशंकर प्रसाद ने उद्घोषित किया–'नारी तुम केवल श्रद्धा हो, विश्वास रजत नग पग तल में। पीयूष-स्रोत-सी बहा करो, जीवन के सुंदर समतल में।'[9]

महिला सशक्तीकरण के तमाम अभियानों और आंदोलनों का ही परिणाम था कि 20वीं सदी के उत्तरार्द्ध में सिरिमावो भंडारनायके, गोल्डा मायर, माग्रेट थेचर, इंदिरा गांधी एवं बेनजीर भुट्टो जैसी वैश्विक विभूतियाँ देखी गईं; किंतु तस्वीर का दूसरा पहलू भी है। कुछ अपवादों को छोड़कर सत्ता और समाज में बढ़ती भागीदारी सामंतवादी पितृसत्तामक मानसिकता व पुरुषोचित अहम् को रास नहीं आई। महिलाओं के विरुद्ध दिन-प्रतिदिन बढ़ते अपराध के आँकड़े इसकी पुष्टि करते हैं। वर्तमान में स्थिति इतनी चिंताजनक है कि बरबस ही होठों से शब्द निकल पड़ते हैं–

अबला जीवन हाय तुम्हारी यही कहानी,
आँचल में है दूध और आँखों में पानी।

संयुक्त राष्ट्रसंघ की एक रिपोर्ट के अनुसार, भारतीय महिलाओं की पोषण, साक्षरता व लिंगानुपात तीनों में ही अत्यंत शोचनीय परिस्थिति है। वैश्वीकरण के इस युग में भी कन्या-जन्म

अधिकांश घरों में उल्लास नहीं जगाता है, इसी के परिणामस्वरूप राष्ट्रीय लिंगानुपात 943 व उसमें में भी 0-6 आयुवर्ग का लिंगानुपात 927 से घटकर 2011 की जनणना में मात्र 919 का ही रह गया है। इसी प्रकार 74.4 प्रतिशत राष्ट्रीय साक्षरता में पुरुषों की 82.14 प्रतिशत के मुकाबले महिला साक्षरता मात्र 65.46 प्रतिशत है।

भारत में महिलाओं की परिस्थिति : एक दृष्टि

जनसंख्या (2011)	:	586469174
कुल जनसंख्या में प्रतिशत (2011)	:	48.47
लिंगानुपात (2011)	:	943
0-6 आयु वर्ग में लिंगानुपात	:	919
साक्षरता दर (2011)	:	65.46
महिला कामगार सहभागिता दर (2009-10)	:	ग्रामीण : 26.1 शहरी : 13.8
मातृत्व-मृत्युदर (प्रति 1000 जीवित जन्म)	:	212
जन्म के समय जीवन प्रत्याशा (2002-06)	:	64.2 वर्ष
शिशु मृत्युदर महिला (2010)	:	46 (प्रति हजार जीवित जन्म)
विवाह के समय औसत आयु	:	20 वर्ष
केंद्रीय मंत्रिमंडल में महिलाएँ (2012)	:	74 में से 8
सर्वोच्च न्यायालय में न्यायाधीश (2012)	:	26 में से 2
उच्च न्यायालयों में न्यायाधीश (2012)	:	634 में से 54
लोकसभा में सांसद	:	9 प्रतिशत

स्रोत प्रतियोगिता दर्पण फरवरी 2013

संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम के मानव विकास सूचकांक के अनुसार प्रत्येक एक लाख बच्चों के जन्म पर 450 माताओं की मौत हो जाती है। 0-5 आयुवर्ग की बाल मृत्युदर में भी भारत का प्रथम स्थान है। केवल 27 प्रतिशत लड़कियाँ ही माध्यमिक व उच्च शिक्षा ग्रहण कर पाती हैं। स्वतंत्रता व समानता का उद्घोष करती भारतीय संसद में मात्र 9 प्रतिशत महिलाएँ ही हैं। श्रम बाजार में जहाँ पुरुष भागीदारी 85 प्रतिशत तक है, वहीं महिला भागीदारी 36 प्रतिशत से अधिक नहीं है। अमेरिका की साप्ताहिक पत्रिका न्यूजवीक की सितंबर 2011 की रिपोर्ट के अनुसार न्याय, स्वास्थ्य, शिक्षा तथा आर्थिक, राजनीतिक पैमानों पर भारतीय महिलाओं की परिस्थिति निम्न है। (165 देशों में 141वें स्थान पर) इसी प्रकार लैंगिक असमानता सूचकांक में 138 देशों में भारत का 122वाँ स्थान है। स्थिति यही नहीं रुकती, राष्ट्रीय अपराध रिकॉर्ड ब्यूरो के अनुसार, देश में प्रत्येक 62 मिनट पर एक दहेज-हत्या व प्रत्येक 19 मिनट पर एक बलात्कार की रिपोर्ट दर्ज हो रही थी। अकेले दिल्ली में ही 2011 में छेड़छाड़ की 653 व बलात्कार की 508 घटनाएँ घटीं। राजधानी दिल्ली के हालात का अंदाजा तो 12 दिसंबर 2012 की रात दामिनी गैंगरेप से लगाया जा सकता है। जब राजधानी दिल्ली का यह हाल है तो शेष देश में महिलाओं की स्थिति का सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है।

घरेलू हिंसा के तौर पर देखा जाए तो महिलाओं की परिस्थिति कितनी बदतर है कि 2005 में संसद को घरेलू हिंसा निवारक अधिनियम पारित करना पड़ा। लेकिन यह विचारणीय बिंदु है कि क्या कानून बना देना पर्याप्त है? कानून बनने के बाद भी घरेलू हिंसा में 30 प्रतिशत वृद्धि हुई है। राष्ट्रीय पारिवारिक स्वास्थ्य की सर्वेक्षण रिपोर्ट के अनुसार 37 प्रतिशत महिलाएँ गंभीर पारिवारिक हिंसा की शिकार हैं। संयुक्त राष्ट्रसंघ की रिपोर्ट के अनुसार 2009 में वैश्विक आंतकवाद में मरने वालों की संख्या 2231 थी तो वहीं भारत में घरेलू हिंसा में मरने वाली महिलाओं की संख्या 8383 थी।

यह प्रसन्नता का विषय है कि स्वतंत्रता के पश्चात् भारत में महिलाओं की परिस्थिति में भारत सरकार द्वारा वैधानिक स्तर पर कई कानून बनाए गए एवं जनहितकारी योजनाएँ व कार्यक्रम चलाए गए। भारत का संविधान महिला सशक्तीकरण एवं सुरक्षा हेतु निम्न प्रावधान प्रदान करता है–

– सभी व्यक्तियों के लिए कानून के समक्ष समानता (अनु.14)
– धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग या स्थान के आधार पर भेदभाव पर निषेध (अनु. 15(1) महिलाओं और बच्चों के लिए अनुच्छेद 15(3) में विशेष प्रावधान
– राज्य के अधीन किसी भी पद, रोजगार या नियुक्ति से संबंधित समान अवसर (अनु. 16)
– पुरुषों और महिलाओं के लिए सुरक्षित जीविका के पर्याप्त साधन उपलब्ध कराने का अधिकार (अनु.39(ए)
– समान कार्य के लिए समान वेतन का अधिकार (अनु.39(द)
– स्थानीय निकायों में 1/3 आरक्षण का प्रावधान (अनु. 343 (द) और 343 (त)

इसके अतिरिक्त घरेलू हिंसा अधिनियम 2005, पैतृक संपत्ति में अधिकार 2005, कन्या भ्रूण-हत्या अधिनियम 2003, अनैतिक व्यापार निरोधक अधिनियम 2006, कार्यस्थल पर यौन उत्पीड़न से संरक्षण अधिनियम 2010, आपराधिक कानून विधेयक (संशोधित) 2013, सती-निवारण, बाल-विवाह, हिंदू वसीयत अधिनियम, विदेश-विवाह अधिनियमों के माध्यम से विधिक सुरक्षा संरक्षा प्रदत्त कर महिलाओं के सशक्तीकरण के क्षेत्र में गंभीर प्रयास हुए हैं।[10]

इसके परिणामस्वरूप महिलाओं की परिस्थिति में काफी परिवर्तन आया है। स्वाधीनता के पश्चात् वर्तमान में जो महिलाओं की परिस्थिति में परिवर्तन सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक क्षेत्रों में देखने को मिलते हैं उनकी कल्पना तो कोई कर ही नहीं सकता था, लेकिन एम॰एन॰ श्रीनिवास ने 'पश्चिमीकरण लौकीकरण और जातीय गतिशीलता को इन परिवर्तनों का प्रमुख कारण माना है।'[11] इसके साथ ही शिक्षा के प्रसार तथा औद्योगीकरण ने स्त्रियों को आर्थिक जीवन में प्रवेश करने के पर्याप्त अवसर दिए हैं।

यहाँ ध्यान देने योग्य बात यह है कि महिला अत्याचारों का निदान मात्र कौमार्य या यौन शुचिता जैसे परंपरागत पितृसत्तात्मक दृष्टिकोण से कदापि नहीं किया जा सकता, इसके लिए स्त्री-विमर्श व समस्या का नारीवादी विश्लेषण भी आवश्यक है, जिससे अब तक बचा जाता रहा है। उदाहरण के लिए बलात्कार व यौन-हिंसा की कार्यवाही फास्ट ट्रैक कोर्ट में शत-प्रतिशत महिला वकीलों व जज की उपस्थिति में होनी चाहिए। बलात्कार के आरोपियों को बचाने के

लिए पीड़िता के संदिग्ध चरित्र को जिरह का आधार बनाने के प्रयासों की सुप्रीम कोर्ट ने आलोचना की है। इस हेतु भारतीय दंड संहिता की धारा 376 में सुधार की पर्याप्त गुंजाइश है। एक दिन की हिरासत व अधिकतम सात वर्ष की सजा को बढ़ाकर आजीवन कारावास किया जाना चाहिए। दहेज हत्या 304 बी में भी पर्याप्त संशोधन अपेक्षित है।

इसी के साथ मानव तस्करी (एंटी ह्यूमन ट्रेफिकिंग एक्ट) के प्रावधानों को भी कठोर बनाने की आवश्यकता है। सरल प्रावधानों की आड़ में जिस प्रकार हैदराबाद जैसे शहरों से हजारों बच्चियाँ खाड़ी देशों को निर्यात की जा रही हैं, वह एक सभ्य समाज के नाम पर कलंक के सिवाय और कुछ नहीं है। इसी प्रकार आर्थिक विवशताओं के कारण मध्य प्रदेश के बाँछड़ा समुदाय की महिलाओं द्वारा सामूहिक वेश्यावृत्ति की परंपराओं का समर्थन नहीं किया जा सकता। अत: इन समस्याओं के प्रभावी निदान की जरूरत है। महिलाओं को सम्मानजनक स्थान दिलाने के उद्देश्य से लोकसभा में विगत दिनों पेश कामकाजी महिलाविषयक यौन-उत्पीड़न निरोधक अधिनियम में भी सुधार अपेक्षित है। विधेयक में प्रयुक्त 'उद्यम' शब्द असंगठित क्षेत्र की मजदूर महिलाओं व घरेलू नौकरानियों को संरक्षण नहीं देता, जबकि कम प्रतिरोधक क्षमता के कारण वही उत्पीड़न का सरलता से शिकार बनती हैं। इस हेतु 'उद्यम' के दायरे में असंगठित क्षेत्र की महिलाओं को भी लाए जाने की जरूरत है।

समाज में कन्याओं की स्वीकार्यता कितनी है? यह इंडिया टुडे की पंजाब और मध्यप्रदेश में कुओं से दर्जनों मादा भ्रूण मिलने के खुलासे से स्पष्ट है। इस हेतु गंभीर सामाजिक जागरूकता अभियान चलाने के साथ ही तमिलनाडु सरकार की Cradle Programme की सराहनीय पहल अन्य राज्यों के लिए भी एक अनुकरणीय उदाहरण है। कन्या बचाओ के इस कार्यक्रम के अंतर्गत तमिलनाडु के अस्पतालों में पालने रखवा दिए गए थे, जिन पर लिखा था "Leave your unwanted babies in the cradle and we will take care of them in the bed"[12] समाज में लिंग असमानता दूर करने के लिए आवश्यक है कि समाज अपनी मानसिकता में परिवर्तन लाए। समाज का विकास तभी ही संभव है, जब महिलावर्ग सबल एवं सशक्त हो, लेकिन भारत में तमाम प्रयासों के बावजूद अभी भी महिलावर्ग की प्रस्थिति में अपेक्षित सुधार नहीं आया है। संभवत: इसलिए महिला सशक्तीकरण वर्तमान समय की प्रबल आवश्यकता है। नीति एवं निर्णय निर्माण के प्रत्येक स्तर पर महिलाओं की समान सहभागिता ही उनका वास्तविक सशक्तीकरण है। अत: महिला सशक्तीकरण द्वारा विकास के लिए व्यक्तिगत स्तर पर जागरूकता से लेकर राजनीतिक, सामाजिक एवं आर्थिक निर्णय-प्रक्रिया में महिलाओं की अर्थपूर्ण भागीदारी अपेक्षित है। मात्र स्त्री-पुरुष समानता का नारा महिला सशक्तीकरण नहीं हो सकता है। अत: महिलाओं की परिवर्तित मानसिकता से समाज में लिंग समानता लाने के लिए यह आवश्यक है कि समाज यह समझे कि लिंग समानता के लिए आंदोलन पुरुषों के अस्तित्व व अधिकारों के विरुद्ध नहीं है बल्कि समाज के विकास के लक्ष्यों की प्राप्ति व संतुलित विकास के लिए आवश्यक है।

वही लिंग समानता के प्रयास, अनेकानेक रणनीतियों के संदर्भ में गांधीय रणनीति की यह अंतर्दृष्टि समीचीन है कि स्त्री का 'स्त्रीत्व' उसके व्यक्तित्व, भूमिका एवं शक्ति का आधार है। आत्मशक्ति के बिना सशक्तीकरण स्थायी नहीं हो सकता, आत्मविश्वास एवं आत्मनिर्णय के

बिना चयन की स्वतंत्रता वस्तुस्थिति नहीं बन सकती। साथ ही, यह भी याद है जैसा ग्राम्शी ने कहा है कि वर्चस्व की प्रक्रिया जटिल एवं अप्रत्यक्ष भी होती है। अतः इसका मुकाबला आत्मशक्ति के साथ सामूहिक शक्ति से ही किया जा सकता है।[13]

अंत में नारी सशक्तीकरण, प्रतिकूल सोच, परिस्थितियों एवं घटनाओं के बावजूद इसकी निरंतरता इस बात का प्रमाण है कि नारी समानता, विकास, शक्ति के प्रश्न सतही या आरोपित नहीं हैं बल्कि यथार्थ के धरातल की सच्चाई हैं, जिन्हें अनदेखा नहीं किया जा सकता। अनदेखा करने का अर्थ होगा धरातल के धराशायी होने की प्रक्रिया का सूत्रपात। खोखली नींव पर सुदृढ़ इमारत सुरक्षित नहीं हो सकती, इसलिए विषमता के यथार्थ का वस्तुगत आकलन, विश्लेषण एवं समाधान समय रहते अपेक्षित है। हालाँकि सरकारी प्रयासों के परिणामस्वरूप नारी समानता, विकास एवं शक्ति के संदर्भ में नवीन क्षितिज उभरते दिखाई दे रहे हैं, यद्यपि चुनौतियाँ भी कम नहीं हुई हैं। अतः गहराती बढ़ती चुनौतियों का सामना प्रभावी रचनात्मक संघर्ष द्वारा ही किया जा सकता है और यह मुकाबला केवल महिलाओं द्वारा ही नहीं, अपितु महिला-पुरुष दोनों को समूहगत स्तर पर करना होगा।

संदर्भ

1. मनुस्मृति 13.46
2. प्रियंका माथुर, महिला सशक्तीकरण, ज्योति प्रकाशन, जयपुर, 2010, पृ॰ 24
3. नरेंद्रकुमार सिंधी, (लेख), नारीवाद की सैद्धांतिक पृष्ठभूमि में महिला-विमुक्ति एवं सशक्तीकरण के व्यापक एवं भारतीय संदर्भ में विशिष्ट आयाम', उद्धृत आशा कौशिक, महिला सशक्तीकरण विमर्श एवं यथार्थ, पोइंटर पब्लिशर्स, जयपुर, 2004 पृ॰ 3
4. विलियम मैथ्यू, ग्रांड वूमेन एंड माइलेटी : द डेमोक्रेटिक फैमिली इन टाकविल द रिव्यू ऑफ पोलिटिकल साइंस विट, द यूनिवर्सिटी ऑफ नोट्डेम, इंडियाना, 1995
5. प्रतियोगिता दर्पण (सितंबर 2002) पृ॰ 374
6. नीरा देसाई, वूमेन इन मॉडर्न इंडिया, वोरा एण्ड को. मुंबई, 1957, पृ॰ 253
7. प्रज्ञा शर्मा, महिला विकास एवं सशक्तीकरण, आविष्कार पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स, जयपुर, पृ॰ 10
8. महात्मा गांधी, स्त्रियाँ और उनकी समस्याएँ, नवजीवन प्रकाश मंदिर, अहमदाबाद, 1951, पृ॰ 192
9. जयशंकर प्रसाद, कामायनी, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1989, पृ॰ 98
10. कुरुक्षेत्र वर्ष 59 अंक 10 अगस्त 2013, महिला सशक्तीकरण का आत्मावलोकन, पृ॰ 5
11. एम॰ एन॰ श्रीनिवास, सोशियल चेंज इन माडर्न इंडिया, यूनिवर्सिटी ऑफ कैलीफोर्निया बर्कले, 1966, पृ॰ 10
12. प्रतियोगिता दर्पण, फरवरी 2013, पृ॰ 1099
13. आशा कौशिक, ग्लोबलाइजेशन डेमोक्रेसी एंड कल्चर, सिचुएटिंग गांधीयन आल्टरनेटिव्ज, पोइंटर पब्लिशर्स, जयपुर, 2002, पृ॰ 117

सुरेंद्र वर्मा का कालिदास प्रासंगिक है

डॉ॰ देवेंद्र स्वामी

प्रसिद्ध और चर्चित साहित्यकार सुरेंद्र वर्मा ने अपने ही नाटक 'आठवाँ सर्ग' के संवाद 'उपहार के बिना पत्नी को प्रसन्न रखने का प्रयत्न वैसा ही है जैसे कमलपंखुरी की धार से शमी का पेड़ काटना'[1] से पंक्ति उठाकर 'काटना शमी का वृक्षः पझपंखुरी की धार से' एक नए उपन्यास का सृजन किया है। उन्होंने इस उपन्यास में गुप्तकालीन महाकवि कालिदास के जीवन-चरित्र और उसके संघर्ष की गाथा को एक नवीन शिल्प में ढालकर अभिव्यक्त किया है। शिल्प ऐसा कि जिसमें न सिर्फ नाटक, न सिर्फ उपन्यास, न सिर्फ फिल्म, बल्कि इन तीनों के ही शिल्प का सम्मिश्रण है। बात यहीं तक समाप्त नहीं होती। इसमें महाकाव्यात्मकता, महाकथात्मकता, संगीतात्मकता आदि का महासंगम किया गया है। केवल गंगा, जमुना, सरस्वती का संगम नहीं, इनसे भी अधिक धाराओं, विधाओं, शैलियों, शिल्पों का महासंगम किया गया है। ऐसा नहीं है कि सुरेंद्र वर्मा ने ऐसा पहली बार किया है, वे निरंतर नई रचना में नई भाषा, नया शिल्प, कथ्य की नई बुनावट गढ़ लेते हैं। यह उनकी सहज प्रवृत्ति है।

सवाल यह है कि क्या 'काटना शमी का वृक्षः पक्षपंखुरी की धार से' का नायक कालिदास प्रासंगिक है? तो मैं कहूँगा की वह प्रासंगिक है, सौ फीसदी प्रासंगिक है। वह आज के साँचे में पूरी तरह फिट बैठता है। स्वयं सुरेंद्र वर्मा का जीवन-चरित्र और संघर्ष आज भी वही है, जो गुप्तकाल में था। स्थितियाँ, परिस्थितियाँ, तंत्र और व्यवस्थाएँ बदलीं, किंतु रचनाकार का संघर्ष वही रहा। नायक कालिदास को जिन अवरोधों, विरोधों, बाधाओं से गुजरना पड़ा है, उनसे आज के रचनाकार को भी दो हाथ होना पड़ता है। इनमें सुदूर ग्राम से आए चाहे सुरेंद्र वर्मा हों, विष्णु प्रभाकर हों, नामवर सिंह हों, या फिर इनके स्थान पर कोई और मूर्धन्य विद्वान हो। फिर चाहे गुप्त साम्राज्य की राजधानी उज्जयिनी हो या फिर आधुनिक भारत की राजनीतिक राजधानी दिल्ली हो या माया राजधानी मुंबई हो। राजधानी में तथाकथित पूर्व विराजमान, संस्थानों, विश्वविद्यालयों के अध्यक्ष, उपाध्यक्ष हों, महानगर के स्थापित कवि, लेखक, आलोचक हों, या फिर सरकारी कार्यालयों में फायल पढ़ते, उनपर नोट लिखते अधिकारीगण हों। उन सबका नवोन्मेषशालिनी प्रतिभा से संपन्न नवोदित लेखक के साथ व्यवहार और नीति एक जैसी होती है।

नायक कालिदास सुदूर ग्राम में छटपटाता है। उसकी छटपटाहट में आज के लेखक की छटपटाहट देखी जा सकती है। वह ऋतुसंहार की नितांत मौलिक रचना करता है। उसे उज्जयिनी विश्वविद्यालय के आचार्य और अध्यक्ष, तत्कालीन प्रख्यात आलोचक, आलोकवर्धन के पास भेजता है, किंतु प्रख्यात आलोचक के पास इतना समय कहाँ कि वह एक अनभिज्ञ, ग्रामवासी

नवोदित लेखक की रचना को छुए, वह उसे रद्दी की टोकरी में फेंक देता है। कालिदास नाट्यरचना का आकांक्षी भी है। वह शाकुंतला पर नाटक लिखने की चाह रखता है। इस चाह में वह अपनी रंग-व्याकरण की समझ को अधूरा मानता है। इन दो कारणों से कवि कालिदास सभ्य संसार की विश्वात्मिका राजधानी उज्जयिनी जाने का निर्णय लेता है। वह आलोकवर्धन से मिल अपनी रचना 'ऋतुसंहार' की खोज-खबर और नाट्य-प्रदर्शन देख रंगकर्म की समझ सुदृढ़ कर लेने के उद्देश्य से राजधानी पहुँचता है। यहीं से कालिदास का पूरी प्रासंगिकता के साथ संघर्ष शुरू होता है।

कालिदास अपनी प्रेमिका, प्रेरणा और संघर्ष-पीड़ा की साक्षी मुग्धा को नंदीग्राम में ही छोड़ राजधानी आ जाता है। राजधानी में उसका झंझावातों से टकराने का दौर शुरू होता है, अर्थात् पतंगे की झंझावातों से भिड़ंत शुरू होती है। यह कलि-पतंगा अद्भुत स्वराग्नि, युवोत्साह लिए हुए है, जिसका क्षरण असंभव है। यही कवि कालिदास अन्य कवियों को अतिप्राचीन उपमाएँ छोड़कर नई उपमाएँ सृजित करने का आह्वान करता है और जो नवोदित कवि नई उपमाएँ गढ़ रहे हैं, उन्हें सहज स्वीकार करने के लिए भी कहता है। उनका यह आह्वान इतना प्रासंगिक है कि इसमें स्वयं सुरेंद्र वर्मा का आह्वान भी सुनाई देता है। फलतः यहाँ वर्मा जी ने नई उपमाएँ, नए प्रतीक गढ़े हैं, जिसमें मेमना का आतंकित होना, नवोदित लेखकों से प्रख्यात साहित्यकारों का आतंकित होना है। भैंस का मल-विसर्जन चुनौतियों के सामने चौथ कर देना या घुटने टेक देने का प्रतीक है। काग का काँव-काँव करना आलोचक का प्रतीकार्थ है। इसी प्रकार कुदक्कड़ मारकर भागने वाला बछड़ा, भैंसों का रंभाना, डकार लेना आदि से भी नए प्रतीकार्थ गढ़े गए हैं।

कालिदास का उज्जयिनी के पथ-पथ पर भटकना, आलोकवर्धन से मिलने के लिए भागदौड़ करना आज के युवा-लेखकों का दिल्ली में और युवा कलाकारों का मुंबई में संघर्ष एक साथ दर्शाता है। कालिदास की घोषणा कि 'युद्ध करूँगा मैं, सुन लो सब युद्ध करूँगा मैं' आज के युवा लेखकों (जिनमें स्वयं वर्मा जी भी हैं) की घोषणा दिखाई देती है, जो इस वाणिज्य, व्यापार बाजार और प्रकाशकों, संस्थाओं, मठों, केंद्रों के षड्यंत्रों में फँसा, किंतु पूरे वीरत्व से डटा हुआ है।

एक ओर कालिदास ने नाट्यशास्त्र, नाट्यमीमांशा, रंगदर्पण आदि रंगसंकेत सिद्धांत देने वाले ग्रथों पर प्रश्नचिह्न लगा दिया है तो दूसरी और वर्मा जी ने इसके शिल्पनिर्माण में नवीन प्रयोग कर नाटक, उपन्यास, काव्य के शास्त्रोगत तत्त्वों की सीमाओं पर प्रश्नचिह्न लगा दिया है बल्कि यूँ कहिए कि इनकी सीमाएँ तोड़कर नए विधागत शिल्प का निर्माण कर इन्हें बौना और अप्रासंगिक सिद्ध कर दिया है। यही नहीं कालिदास की भास, सौमिल्ल और समस्त संस्कृत साहित्य को दी चुनौती[2] लेखक वर्मा की पूर्व एवं समसामयिक उपन्यासकारों, नाटककारों, कवियों को एक साथ दी गई चुनौती है, क्योंकि इसमें महाकाव्यत्व के गुण, श्रेष्ठ नाटकीयता के गुण, औपन्यासिकता के गुण एक साथ विद्यमान हैं। यही नहीं, फिल्म साहित्य की चर्चा जो आजकल चली हुई है, जिसे कई बार हिंदीसाहित्य में सम्मिलित करने की बात होती है, उसके भी गुण इसमें हैं। इसीलिए यह रचना समस्त साहित्यकारों को एक साथ चुनौती है।

सुरेंद्र वर्मा ने आज के भरतमुनियों की धारणा पर भी सवाल खड़ा किया है, जो नाटक को मंचन से पहले नाटक मानने को तैयार नहीं, इस कड़ी में 'मेघदूतम्' के आँकड़े स्कंदगुप्त,

चंद्रगुप्त, ध्रुवस्वामिनी, आषाढ़ का एक दिन, सूर्य की अंतिम किरण से सूर्य की पहली किरण तक' के आँकड़े बहुत कुछ कह जाते हैं। वर्मा जी शब्दशिल्पी, भाषाशिल्पी, शिल्प के भी शिल्पी, और शिल्पियों के भी शिल्पी हैं। ध्यानाकर्षक बात तो यह है कि वे नाटक के शिल्प से उपन्यास के शिल्प में गए, उपन्यास के शिल्प से फिल्मी शिल्प में गए और फिर तीनों ही शिल्पों में यात्रा करते रहे, किंतु शिल्प की इस यात्रा में लेखक ने एक बार भी भाव, विचार या विषय को नहीं छोड़ा, न कहीं विषयांतर हुए। वे निरंतर चरमोत्कर्ष की ओर गए, रचना के आभ्यंतर ही नहीं बाह्य स्तर पर भी वे रचनाशीलता के शिखरत्व की ओर बढ़े हैं, बल्कि यूँ कहिए कि वे शिखर पर खड़े हैं। देखिए जब वे लिखते हैं कि 'दरिद्रता अभिशाप भी है और वरदान भी है वह व्यक्ति रूप में एक विशिष्ट समय तक तुम्हारा परिसंस्कार करती है, पर यह अवधि दोर्घ नहीं होनी चाहिए'।[3] यहाँ लेखक प्रेमचंद से भी आगे बढ़ जाता है, क्योंकि प्रेमचंद दरिद्रता को अभिशाप मानते हैं वरदान नहीं।

कालिदास का कलानगरी में जाना, धर्मशाला में रहना, श्वेतांग से मिलना, आलोकवर्धन से मिलने के तमाम प्रयास, नाट्य-निदेशक से मिलने में आई पूर्वनियोजन की बाधाएँ, पूर्वनियोजन के लिए भी पूर्वनियोजन की बाधाएँ, आज के उदासीन वातावरण को दिखाती हैं। कालिदास में केवल ग्रामबोध है, नगरबोध और महानगरबोध नहीं है। यह कहकर उसका अस्वीकरण'[4] किया जाना नवोदित लेखकों के प्रति अस्वीकरण की प्रतिध्वनि को दर्शाता है। कालिदास प्रख्यात आलोचक आलोकवर्धन से खिन्न हो कहता है–'वेदव्यास वाल्मीकि और अश्वघोष की पांडुलिपि ही तेरे स्पर्श के लिए योग्य है? कालिदास की पांडुलिपि छू लेगा तो कोढ़ फूट उठेगा, तेरी संवेदना पर?'[5] यह लेखक का आज के आलोचकों पर बड़ा ही प्रासंगिक प्रहार है, जो सिर्फ प्रसिद्ध लेखकों की रचना छूते हैं। अप्रसिद्ध या नवोदित लेखकों की रचनाएँ छूने की बात तो बहुत दूर है उनकी तरफ देखते भी नहीं हैं।

कालिदास उज्जयिनी में जाने के बाद अपनी पूरी जद्दोजहद से अपने नाटक का मंचन करवा लेते हैं, जिसकी पूरी कलानगरी में प्रशंसा होती है। राजकुमारी प्रियंगु मंजरी भी प्रशंसा करती है। यही प्रियंगु मंजरी आगे चलकर कालिदास से प्रेम करती है और विवाह भी करती है। इस मंचन के बाद कालिदास का मायानगरी, कलानगरी सभ्य संसार की विश्वात्मिका राजधानी में उदय होता है। यहीं से कालिदास का कला पर, संस्कृति पर संस्थानों पर कुंडली मारे बैठे साहित्यकारों और परिस्थितियों के प्रति युद्ध तीव्रतर हो जाता है। कालिदास के प्रति भी षड्यंत्र और प्रपंच तीव्रता से चलाए जाते हैं। उदाहरणत: 'आज राजधानी केवल कला-प्रपंचकों रस-षड्यंत्रों और काव्य-कूटनीतियों से पदाक्रांत हैं'[6] कालिदास का संपर्क प्रियंगु मंजरी से होता है, दोनों में मैत्रीभाव घनिष्ठता प्राप्त कर लेता है। कालिदास भी मुग्धा के प्रति अपनी भावना की प्रतिबद्धता को परिवर्तनशील मान प्रियंगु मंजरी के साथ सुख का संधान करने लग जाता है, जिसमें श्वेतांग, आलोकवर्धन नवरत्न सभा के अन्य सदस्य, आचार्य ईर्ष्या भी करने लगते हैं। ये लोग कल तक कालिदास की कोई सहायता करने को तैयार न थे, किंतु कालिदास की प्रतिभा, प्रियंगु मंजरी की मित्रता ने ऐसा अद्भुत चमत्कार किया कि यही लोग उनके पीछे-पीछे अपनी सिफारिश के लिए दौड़ रहे हैं, किसी को राजकवि का पद चाहिए तो किसी को विश्वविद्यालय के कुलपति का।

कालिदास अंतर्द्वंद्व से भी ग्रस्त दिखाई देता है। उसका अंतर्द्वंद्व प्रासंगिक है, आधुनिक

है, आज के युवा का है, जो एक साथ दो जगह प्रेम करता है। एक साथ दो प्रेमिकाएँ रखता है। वह स्वयं स्वीकार करता है कि दोनों के ही साथ विश्वास-वंचना कर रहा हूँ।'[7] वह एक (प्रियंगु) की नाभि पर विशेषक बना रहा है तो उसकी आँखों में दूसरी (मुग्धा) की नाभि का बिंब कौंध जाता है।

कालिदास अपनी प्रतिभा से, संघर्ष से प्रसिद्धि प्राप्त कर लेता है। वह अपना नया महाकाव्य 'रघुवंशम्' लिखने के लिए समस्त भारत की यात्रा पर निकलना चाहता है। वह इस यात्रा पर अपनी नंदीग्राम की प्रेमिका मुग्धा को साथ न ले जाने का निर्णय लेता है। इस निर्णय के विरुद्ध आज की मुग्धा का, प्रेमिका का, पत्नी का स्वर स्पष्ट सुना जा सकता है, जो वर्तमान नारी-विमर्श की धारणा को बलवती बनाता दिखाई देता है। देखिए, 'मेरी इच्छा-अनिच्छा पूछे बिना उसने सदा मेरे बारे में निर्णय लेने का अधिकार कैसे ले लिया?'[8] हालाँकि सुरेंद्र वर्मा ने यह कहकर कालिदास को सुरक्षित करने की कोशिश की है कि आपदग्रस्त भू-भाग पर स्त्री कितनी सुरक्षित रह सकती है, मैं नहीं जानता।' अंततोगत्वा कालिदास यात्रा पर चला जाता है।

कालिदास 'रघुवंशम्' पूरा करने के बाद यात्रा से लौटता है। प्रियंगु मंजरी का स्वयंवर होता है। वह कालिदास के गले में वरमाला डाल देती है। कालिदास उसे अपने और मुग्धा के गंधर्व विवाह के बारे में बताता है। प्रियंगु मंजरी चंद्रगुप्त, अरुंधती और कालिदास एक-एक कर मुग्धा के पास ग्राम में जाते हैं। मुग्धा पर ही संबंध को रखने और तोड़ने का निर्णय छोड़ते हैं। मुग्धा कालिदास और प्रियंगु मंजरी एक-दूसरे के और उज्जयिनी के हैं, कहकर लौट जाने को कहती है। इस सारे प्रकरण में लेखक ने बार-बार कालिदास को सुरक्षा-कवच पहनाया है। यह एक ओर नारी मुग्धा का उसके प्रेम का, समर्पण, त्याग और बलिदान का सम्मान है तो दूसरी ओर एक लेखक की दूसरे लेखक के प्रति संवदेनशीलता और रचनात्मक गरिमामयी प्रतिबद्धता भी प्रदर्शित होती है। किंतु लेखक मुग्धा को सम्मान देने में थोड़ी-सी अतिशयोक्ति कर गया। राजा और रानी का नंदीग्राम जाना अतिशयोक्तिपूर्ण जान पड़ता है।

सुरेंद्र वर्मा का सौंदर्यबोध इतना गहरा है कि कई बार कालिदास और सुरेंद्र वर्मा में अभेद की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। नारी के बाह्य और आंतरिक सौंदर्य का चित्रण, प्रकृति के उद्दीपन और आलंबनत्व का चित्रण, सूक्ष्म भावों का, मनःस्थितियों का चित्रण, भाषा और शिल्प पर पकड़ मुझे सुरेंद्र वर्मा को दूसरा कालिदास कहने पर मजबूर करती है। वास्तव में यहाँ कथावस्तु पात्र, चरित्र, घटनाएँ आदि तो माध्यम हैं, जिनके द्वारा लेखक के हृदयअंतराल में संचित जीवन-निष्कर्ष और जीवन-अनुभव प्रकट हुए हैं। क्या कोई भी साहित्यकार, आलोचक उनकी इस बात को झूठला सकता है कि 'कलात्मक महत्त्वाकांक्षा घातक होती है, प्रियजनों को संतप्त करती है'। लेखक ने आधुनिक तथ्यों, प्रसंगों को कथ्य में इस प्रकार घुला-मिला दिया है कि वह ऐतिहासिक कथाकाव्य लगने लग गया है। सही मायने में कालिदास का रचनात्मक संघर्ष, सुरेंद्र वर्मा का रचनात्मक संघर्ष और आज के युवा लेखक का संघर्ष एक समान है।

निष्कर्ष रूप में अगर प्रियंगु मंजरी के शब्द लिए जाएँ तो गलत न होगा कि 'इसका विन्यास परिष्कृत है, शिल्प कसा हुआ और मंजुल अत्यंत समृद्ध संवेदना के समरूप भाषा प्रांजल प्रखर और तत्क्षण ध्यानाक्रमणी लेकिन जो तत्त्व वस्तुतः मनोहारी है वह है—उपमाएँ नितांत मौलिक, विलक्षण, अभिव्यक्ति-समर्थ और भावविन्यास का अंतरण अविच्छिन्न भाग होने के नाते

नैसर्गिक"[9] और उपन्यास से ही शब्दों का प्रयोग करके मैं कहूँ तो सुरेंद्र वर्मा अवधारणा और निर्वाह में नि:संदेह अपने समय से आगे हैं और निश्चित रूप से यह रचना उनकी विराट प्रतिभा का फल है। अगर भारतीय काव्यशास्त्र की महाकाव्यगत धारणा को विस्तृत किया जाए और पाश्चात्य काव्य शास्त्र में लौंजाइंस द्वारा निर्दिष्ट औदात्यात्मक गुणों पर इसको परखा जाए तो यह रचना खरी उतरती नजर आएगी। इसीलिए इसे कथा-काव्याख्यान, दृश्य-महाकाव्याख्यान, महाफिल्माख्यान कहना संगत होगा। एक बात और हिंदीसाहित्य में मील का पत्थर माने जाने वाले उपन्यासों, यहाँ तक कि छायावाद की श्रेष्ठ रचना 'कामायनी' से और मोहन राकेश के नाटक 'आषाढ़ का एक दिन' से आगे की रचना है।

अंतिम बात कि जब तक इस धरा पर लेखक नाम का प्राणी रहेगा, उसका रचनात्मक संघर्ष रहेगा, तब तक यह 'काटना शमी का वृक्ष पक्षपंखुरी की धार से' प्रासंगिक रहेगा। कुल मिलाकर कहना होगा कि हिंदीसाहित्य में ऐसी रचना 'न भूतो न भविष्यति' है।

संदर्भ

1. सुरेंद्र वर्मा, आठवाँ सर्ग, पृ० 72
2. सुरेंद्र वर्मा, काटना शमी का वृक्ष: पृ० 81
3. वही, पृ० 157
4. वही, पृ० 186
5. वही, पृ० 225
6. वही, पृ० 227
7. वही, पृ० 350
8. वही, पृ० 361
9. वही, पृ० 251

एफ-1434, **लक्ष्मीबाई नगर**
नई दिल्ली 110023
मो० 09210301960

भारतीय सिनेमा के विविध आयामों से झाँकती नारी

डॉ॰ बी॰के॰ गर्ग
अध्यक्ष
हिंदी विभाग, हिंदू कॉलेज, सोनीपत

बात सन् 1971 की है। भारत और पाकिस्तान में युद्ध चल रहा था। रेडियो पर लोग कान लगाए समाचार सुना करते थे कि हमने इतने पाकिस्तानी सैनिकों को मार दिया, पाकिस्तानी सैनिकों का ऐसा समाचार सुन भारतीय जश्न मनाने लगते और भारतीय सैनिकों के शहीद होने का समाचार आने पर उनके मुँह लटक जाते। युद्ध के उसी उन्माद में पाकिस्तान की प्रसिद्ध गायिका मल्लिका-ए-तरन्नुम नूरजहाँ लंदन जाते हुए थोड़ी देर के लिए दिल्ली के एयरपोर्ट पर उतरीं। बंबई में रह रहीं स्वरसम्राज्ञी लता मंगेशकर को जब पता चला कि नूरजहाँ थोड़ी देर के लिए दिल्ली आई हैं। एयरपोर्ट पर जब दोनों आलिंगनबद्ध होकर मिलीं तो एक पत्रकार ने कहा–'काश! दोनों देशों के रहनुमा ऐसे फनकार होते तो सरहदों पर कभी जंग न होती।' फिल्मों से जुड़े नारी-कलाकारों की यह है सच्ची और पक्की दरियादिली।

अपने शीर्षक 'भारतीय सिनेमा के विविध आयामों से झाँकती नारी' पर आने से पूर्व थोड़ी-सी चर्चा भारतीय नारी की कर ली जाए तो उचित होगा। नारी, सृष्टि के अस्तित्व में आने से लेकर आज तक, देवताओं से लेकर धरती के आम आदमी तक सदैव कौतुहल और चर्चा का विषय रही है। अक्सर भारतीय समाज ने नारी को केवल देह के आधार पर परखा है, पहचाना है। हमने नारी की विशेषज्ञता, त्याग, कुशलता आदि को हमेशा हाशिए पर जगह दी है। भारतीय काव्यशास्त्र में भी नायिका-भेद करते हुए विद्वानों ने केवल सुंदर नारियों, नायिकाओं को ही महत्त्व दिया है। अतीत के साथ-साथ नारी के प्रति होने वाले अपराधों में 21वीं शताब्दी में भी कोई कमी नहीं आई है। प्रशासन भी इनके प्रति हुए अपराध-संबंधी आँकड़ों को स्वीकारने पर बगलें झाँकने लगता है। नारी का संबंध केवल रसोई और पलंग से है। सदियों से चला आ रहा यह अघोषित-सा मुहावरा अभी भी बदला नहीं है। आज भी बेटी की अपेक्षा बेटे की कटोरी में घी ज्यादा डाला जाता है। स्वामी विवेकानंद की बहन ने जब विषम परिस्थितियों में आत्महत्या कर ली तो स्वामी जी ने दु:खी होकर कहा था–भारतीय समाज की दुर्गति का मुख्य कारण भारतीय समाज का नारी-जाति के प्रति दुर्व्यवहार है। ऐसी ही नारी को सिनेमा के माध्यम से हम ढूँढने, समझने, परखने का प्रयास कर रहे हैं।

क्या नारी के बिना सिनेमा की कल्पना की जा सकती है? जी नहीं। यही कारण है कि दादा साहब फाल्के द्वारा बनाई पहली फिल्म 'राजा हरिश्चंद्र' में बेशक कोई नारी नहीं थी, नारी की भूमिका अर्थात् तारामती का किरदार रेस्टोरेंट में काम करने वाले पुरुष बावर्ची अन्ना सालुंके

ने निभाया यानि नारी के बिना सिनेमा संभव नहीं। इसी सिनेमा में नारी-संबंधी विभिन्न खट्टे-मीठे और बदलते अनुभवों को हम निम्नलिखित बिंदुओं के आधार पर देख सकते हैं।

फिल्मों में महिला कलाकारों (अभिनेत्रियों) की भूमिका

नि:संदेह, फिल्मों में पुरुष एवं नारी-पात्रों की महती भूमिका होती है। अभिनेता के साथ-साथ अभिनेत्री भी फिल्म के कथानक को गति देने, अभीष्ट को प्राप्त करने में उतनी ही महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है, जितना अभिनेता। परंतु पिछले सौ वर्षों के सिनेमा का अध्ययन करने पर हम पाते हैं कि प्रारंभ से केंद्रीय भूमिका में रहने वाली अभिनेत्री अब धीरे-धीरे हाशिए पर आते-आते केवल अंग-प्रदर्शन या आइटम साँग तक सिमटती जा रही है। 1940-50 में देविकारानी, जुवेदा, सुरैया, मीनाकुमारी, मधुबाला आदि अभिनेत्रियों का ऐसा दौर रहा है, जब वे फिल्मों में अपना वही मुकाम रखती थीं, जो नायकों का होता था।[4] लेकिन 21वीं शती आते-आते अभिनेत्रियों को केवल शो पीस तक सीमित कर दिया गया है। 'थ्री इडियट्स' में करीना कपूर और आमिर खान की भूमिकाओं में विस्तार और प्रभाव में जमीन-आसमान का अंतर है।[5] करीना का कहना है कि सारी फिल्में दो-तीन खानों और कुछ अन्य अभिनेताओं के आसपास घूमती हैं। हमें तो यह देखना होता है कि कब हमें मौका मिले कि हम अभिनेता के पीछे से निकलकर फिल्मी परदे पर दिखाई दें।

महिला-प्रधान फिल्मों का अभाव

अछूत कन्या, जीवन प्रभात, आलम-आरा, चित्रलेखा, परिणीता 1940-50 के आसपास की ऐसी फिल्में हैं, जहाँ फिल्मी कथानक में नारी मुख्य भूमिका में ही नहीं, बल्कि नारी-संबंधी समस्याओं को शिद्दत के साथ उठाया जाता था। पुरुष-समाज को परदे में रहने वाली नारी की समस्याओं और टीसों के बारे में संवेदनशील बनाने के लिए ऐसी नारी-समस्या-केंद्रित कथाओं को फिल्मों के माध्यम से उठाया जाता था। हिंदी-सिनेमा में कई चर्चित फिल्में स्त्रियों की समस्याओं को लेकर बनाई गईं। जैसे–सुजाता, दुनिया ना माने, लज्जा, दामिनी, जुबैदा, सरकारी बेगम, बवंडर, प्रेम रोग आदि, जिनमें विधवा-विवाह, अनमेल-विवाह, बाल-विवाह, पर्दाप्रथा, बलात्कार, जाति-प्रथा जैसी बुराइयों पर प्रहार किया गया। आज ऐसा तो नहीं कि सिनेमा में नारीविषयक समस्याएँ नहीं उठाई जातीं, परंतु ऐसी फिल्मों की संख्या अपवादस्वरूप ही है। 'No one can killed Jascica' 'कहानी' आदि फिल्में इसी अपवाद में आती हैं।

नारी पारिश्रमिक के रूप में भेदभाव की शिकार

निश्चय ही फिल्मों का संबंध कला से है। कलाकार का मुख्य उद्देश्य कला की ऊँचाइयों को छूना ही होता है, परंतु अर्थ की आवश्यकता तो सबको पड़ती है। आज अभिनेत्रियों को अभिनेताओं की अपेक्षा एक तिहाई से भी कम अनुपात दिया जाता है। लिंगभेद और पुरुष प्रध ान समाज का यह रूप उस समय अधिक भयावह प्रतीत होता है, जब हम देखते हैं कि पिछले 55 वर्षों से भयभीत सिनेमा में महिला मेकअप करने वाली महिलाओं को पैर नहीं टिकाने दिए। फिल्मी अभिनेताओं के साथ-साथ अभिनेत्रियों का मेकअप भी पुरुष मेकअप कलाकार ही करते आ रहे थे। भला हो चारु खुराना का, जिन्होंने कोर्ट के माध्यम से महिला मेकअप कलाकारों को

उनका अधिकार दिलाया।[6] परंतु देविकारानी, जुवेदा, शोभना, सुरैया, मीनाकुमारी, मधुबाला, वहीदा रहमान आदि के युग में पारिश्रमिक को लेकर यह भेद नहीं था। उन्हें अभिनेताओं के समान भुगतान किया जाता था। आज की अभिनेत्रियों से होने वाला भेदभाव, आज के पुरुष-प्रधान समाज के वर्चस्व को हिकारत की नज़र से देखता है।

अंग-प्रदर्शन का बोलबाला

अतीत में कभी हिंदी फिल्मों का ऐसा भी दौर रहा है कि खिले हुए दो फूलों को एक साथ दिखाकर नायक-नायिका के शारीरिक संबंध को व्यक्त किया जाता था। तड़पती हुई मछली के माध्यम से बलात्कार जैसे दुष्कर्म की पुष्टि कर दी जाती थी, परंतु आज यथार्थ के नाम पर, जिस ढंग से नारी के जिस्म की नुमाइश की जाती है, वह निंदनीय है, अस्वीकार्य है। आप इसी तथ्य से अश्लीलता का अनुमान लगा सकते हैं कि सैंसर बोर्ड ने 2001-2011 तक 256 फिल्मों को सर्टिफिकेट देने से मना कर दिया, जिसमें 78 फिल्में हिंदी की थी। आदमखोर हसीना (2002), बीबी तुम्हारी बच्चे हमारे (2003), आग है यह बदन (2004), भूख (2005), हुस्नम बेवफा सनम हरजाई (2006), बैक टू हनीमून (2009) आदि के नाम गिनाए जा सकते हैं।

ऐसा नहीं कि पहले की फिल्मों में ऐसा अंगप्रदर्शन नहीं था, परंतु ऐसा करने का फैशन नहीं था। 1942 में केदारनाथ शर्मा की फिल्म चित्रलेखा में महताब ने बाथ टव में बैक लैस का सीन दिया था। परंतु आज यह अंग-प्रदर्शन सफलता की सीढ़ी और पैसा कमाने की मशीन के रूप में प्रचलित है, जो समाज के लिए घातक है।

उपर्युक्त विवेचन-विश्लेषण के पश्चात् यह स्पष्ट हो जाता है कि 21वीं सदी में भी भारतीय हिंदी सिनेमा न तो अभिनेत्रियों को अभिनेताओं के समान सम्मान दे पाया है और न ही भुगतान। इतना ही नहीं, उसने देश की आधी आबादी अर्थात् नारी की समस्याओं को उकेरने में भी ईमानदारी नहीं दिखाई है। इस प्रकार की समस्याओं के समाधान के लिए फिल्म बनाने वालों की उदारता और भारतीय जनमानस की जागृति आवश्यक है।

संदर्भ

1. जनसत्ता 1974
2. भारतीय काव्यशास्त्र, डॉ॰ नरेश मिश्र
3. विवेकानंद : जीवन दर्शन
4. विकीपीडिया
5. थ्री इडियट्स
6. टाइम्स ऑफ इंडिया

भारतीय साहित्य में भक्तिभाव का विवेचन

बीनाकुमारी यादव
शोधछात्रा–वनस्थली विद्यापीठ
निवाई, (टोंक)

मानव–हृदय भावों का कुंज है, जिसमें अनेक भाव लतावितानों के रूप में विद्यमान रहते है। प्रेम, दया, करुणा सहानुभूति, भय, क्रोध, जुगुप्सा, ममत्वादि भावरूपी लताओं में कभी–कभी तो कोई एक ही पूरे कुंज पर अकेले ही छा जाती है और कभी–कभी सभी मिलकर हृदय–कुंज को घनीभूत बना देती हैं। स्त्री–पुरुष के परस्पर रतिभाव को सभी आचार्यों ने शृंगाररस कहा है, परंतु मानव का प्रेमभाव या रति प्रेमिका से इतर अन्य लोगों पर भी तो होता है। चींटी से लेकर ब्रह्म तक से वह प्रेम करता है। जड़–चेतन, चर–अचर, स्थावर–जंगम सभी ओर उसका प्रेमवितान फैलता है। अत: मानव–प्रेम जो प्रेमिका से अलग अन्यत्र–समवयस्कों, बड़ों, छोटों, पूज्यों, गुरुजनों तथा बह्मादि में दिखाई पड़ता है, विद्वज्जन उसे अलग–अलग संज्ञा से विभूषित करते हैं, जैसे–वात्सल्य, सख्य, स्नेह, मैत्री, श्रद्धा और भक्ति। शृंगार तो केवल दांपत्यरति के अर्थ में रूढ़ है, जो प्राय: यौवन में ही वर्णनीय होता है।[1] आचार्य मम्मट ने दांपत्येतर रति तथा गुरुविषयक, राजविषयक तथा पुत्रविषयक को 'भाव' मात्र कहा है।[2] वस्तुत: भाव के अनुभूति की चरमसीमा है–शृंगार। भोज ने तो इसे आत्मानंद का पर्यायवाची कहा है। लोक में वस्तु के प्रति रति 'लोभ' एवं मानव के प्रति रति 'प्रीति' कही जाती है। यही विशिष्ट वस्तु या व्यक्ति के प्रति रति जब सात्त्विक रूप प्राप्त करती है तब उसे 'प्रीति' या 'प्रेम' कहते हैं। प्रेमी अपने प्रिय के प्रति आकृष्ट होकर उससे आत्मीयता की भावना कर चलता है, उसमें उसका ममत्व–सा आ जाता है, उसे वह अपना तथा अपने को उसका समझने लगता है। आकर्षण की ऐसी तल्लीनता में उसको अपनाने की इच्छा बलवती हो जाती है। हृदय के किसी वस्तु, विषय अथवा व्यक्ति की और इस राग या खिंचाव को ही 'प्रेम' कहते हैं। जिस प्रेम में ज्ञान, भावना एवं कामना तीनों तत्त्व समान रूप से औत्कृष्ट्य को प्राप्त होते हैं, वही प्रेम परम सात्त्विक, दैव एवं पवित्र होता है।

बोध, वृत्ति की न्यूनता एवं भावना के प्राधान्य होने पर वह 'प्रीति' 'स्नेह' जैसे दूसरे शब्द से अभिव्यक्त होता है तथा प्रेम की पूर्ण विकसित अवस्था में प्रेमी का हृदय एक ऐसी अनुभूति में तन्मय हो जाता है कि उसे प्रिय के व्यक्तित्व के अतिरिक्त और किसी का ध्यान नहीं रहता। उसकी उपस्थिति में वह सारे दु:खों एवं सारे अभावों को भूल जाता है। उसके वियोग में प्रेमी संसार के समस्त वैभव को सारहीन एवं आकर्षणहीन अनुभव करता है तथा अपने हृदय एवं शरीर का प्रियपात्र के लिए समर्पण एवं बलिदान कर देता है। इस प्रकार प्रेम में गांभीर्य, दृढ़ता, शक्तिमत्ता, नि:स्वार्थता एवं एकतानता होती है। प्रेम स्वर्गिक वातावरण का दिव्य उच्छ्वास है। प्रेमी

प्रेमोन्मत्त दशा में जड़ एवं चेतन में भी भेद करने में असमर्थ हो जाता है, यही कारण है कि उस अवस्था में उसकी समस्त भावनाएँ प्रकृति के प्रति मानवीय प्रतीकों के रूप में व्यक्त होती हैं।[3] प्रेम कामुकता का पर्यायवाची नहीं है। वासनात्मक स्तर से भावात्मक स्तर पर आया हुआ 'राग' या 'अनुराग' ही 'प्रेम' है। वह आदान नहीं प्रदान है। वस्तुतः भवितव्यता, शांति एवं सदाचरण ही प्रेम है। यह संसार का सर्वोत्तम पदार्थ है तथा चिरंतन है। 'इस प्रकार प्रेम एक ऐसी भावात्मक अनुभूति है, जो शब्दशः वाच्य नहीं हो सकती। इसी कारण उसके स्वरूप को गूँगे के गुड़ के आस्वाद के समान अनिर्वचनीय कहा गया है।[4] श्रीमद्भागवत में प्रेम के संबंध में यह कहा गया है कि दो रसिकजनों का प्रेम दीपक के समान उसके हृदयागार को निश्चल रूप से प्रकाशित करता रहता है। यदि उसे वाणी के द्वार से बाहर निकाल दिया जाए तो वह बुझ जाता है या मंद हो जाता है।[5] अतः आश्रयतत्त्व की पात्रता एवं उसके साद्गुण्य के अनुसार ही भाव रूपी विकास की भूमिका में प्रेम का विकास होता है।[6]

प्रेम की विषयभेद से कई कोटियाँ मानी गयी है। प्रेम का ही एक रूप 'श्रद्धा' है। अपने से बड़ों के प्रति उनके किसी विशेष गुण, महनीय व्यक्तित्व, कार्य, बड़प्पन एवं वैशिष्ट्य के कारण मनुष्य में जो पूज्य बुद्धि उत्पन्न होती है, वही श्रद्धा है। अर्थात् किसी मनुष्य में जनसाधारण से विशेष गुण या शक्ति का विकास देखकर, उसके संबंध में जो एक स्थायी आनंदपद्धति हृदय में स्थापित हो जाती है, उसे 'श्रद्धा' कहते हैं। श्रद्धा महत्त्व की आनंदपूर्ण स्वीकृति के साथ-साथ पूज्यबुद्धि का संचार है।

दूसरे शब्दों में श्रद्धा का अर्थ है–वेद, स्मृति एवं आचार्यों के वचनों में सहज विश्वास। यह मानव-हृदय में स्वतः स्फुरित होती है तथा जीवमात्र की एक सहजवृत्ति है। गीता में कहा गया है–

सत्वानुरूपा सर्वस्य श्रद्धा भवति भारत।
श्रद्धामयोऽयं पुरुषो यो यच्छ्रद्धः स एव सः।[7]

विश्वास में हमारा भाव वास्तविक स्थिति पर आधारित होता है–बाह्य जगत के पदार्थों में ही ध्यान केंद्रित रहता है, परंतु श्रद्धा में हमारा भाव आत्मनिष्ठ होता है, आदर्श का विचार हमारे मन में उठता है। श्रद्धा अनेक वृत्तियों का आकार है, जो परिस्थितियों के अनुरूप व्यक्त होती रहती है। यह भी प्रेम की तरह ही रस (भाव) रूप मानी जाती है, क्योंकि इसमें आभार, आदर, कृतज्ञता, भय, विस्मय, विनय एवं आनंद की भावनाएँ निहित हैं। इस प्रकार, हमारे मन का प्रच्छन्न नैतिक आदर्श ही श्रद्धेय के व्यक्तित्व में प्रकट होता है। यह सर्वोत्कृष्ट धार्मिक भावना है। गीता में भी कहा गया है–

श्रद्धावान-भजते यो मां स मे युक्ततमो मतः।[8]

श्रद्धा एवं प्रेम की पृथक-पृथक व्याख्या के पश्चात् दोनों में अंतर इस प्रकार है कि प्रेम का प्रारंभ किसी का अच्छा लगने मात्र से होता है, परंतु श्रद्धा का पात्र कोई तभी हो सकता है, जब उसका कोई गुण या कार्य ऐसा हो जो उसे लोकसामान्य से बड़ा बना रहा हो। कभी-कभी तो प्रभु-निर्मित किसी का रूपमात्र भी प्रेम का कारण हो जाता है अर्थात् प्रेम के लिए इतना ही पर्याप्त है कि कोई मानव हमें अच्छा लगे, किंतु श्रद्धा के लिए आवश्यक है कि कोई मनुष्य किसी कार्य या शक्ति में वैशिष्ट्य के कारण हमारे सम्मान का पात्र हो। प्रेम की अपेक्षा श्रद्धा का कार्यक्षेत्र

बड़ा है। प्रेम में एकतानता एवं घनत्व है, किंतु श्रद्धा में विस्तार। श्रद्धेय के आदर्श रूप का संघटन उसके फैलाए हुए कर्मतंतु के उपादान से होता है। प्रेम में कोई मध्यस्थ नहीं, पर श्रद्धा में मध्यस्थ अपेक्षित है। प्रेम का कारण अनिर्दिष्ट एवं अज्ञात होता है। किसी बाह्य कारण सौंदर्यादि पर प्रेम आधृत नहीं है। भवभूति ने कहा है–

व्यतिषजति पदार्थानांतरः कोऽपि हेतुः। न खलु बहिरूपाधीन् प्रीतयः संश्रयन्ते।
विकसति हि पतंगस्योदये पुण्डरीकम्। द्रवति च हिमरश्मावुद्गते चन्द्रकान्तः।।[9]

वास्तविक प्रेम में त्याग की परमोत्कृष्ट सीमा रहती है, आत्मबलिदान का श्रेष्ठत्व यहीं दृष्टिगत होता है। आत्माभिमान का क्षयत्व भी यहीं पाते हैं। इसकी गति लौकिकता से अलौकिकता की ओर होती है। इसी से प्रेम का चरमविकास भक्ति है। प्रेम की अपेक्षा श्रद्धा का कारण निर्दिष्ट एवं ज्ञात होता है। इसमें दृष्टि कर्मों पर से होती हुई श्रद्धेय पर पहुँचती है, जबकि प्रीति में प्रिय पर से होती हुई उसके कर्मों आदि पर आती है। एक में व्यक्ति को कर्मों द्वारा मनोहरता प्राप्त होती है दूसरी में कर्मों को व्यक्ति द्वारा, एक में कर्म प्रधान है, दूसरे में व्यक्ति। अर्थात् दूसरे शब्दों में हम यह भी कह सकते है कि सत्पुरुष के सत्कर्म एवं सद्गुणों का भावात्मक मूल्य श्रद्धा कहलाता है। यही श्रद्धा या पूज्यबुद्धि जब आनंद-संयुक्त होती है, हम उस श्रद्धालु का सान्निध्य पाने की इच्छा करते हैं, उसके दर्शन से अपने को कृतार्थ करते हैं एवं परमानंद की अनुभूति करते हैं तो वही 'भक्ति' है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने तो कहा है कि 'श्रद्धा एवं प्रेम' के योग का नाम ही भक्ति है।[10] दूसरे शब्दों में हम यह भी कह सकते हैं कि मानव के भाव-जगत् में संवेगों का बहुत ही महत्त्व है। भावनाओं का तीव्र आवेग संवेगों के रूप में ही अभिव्यक्त होता है। मन की तीन वृत्तियाँ ज्ञान, भावना एवं क्रिया में से भावप्रधान भक्ति का प्राणतत्त्व प्रेम प्रायः संवेगों के रूप में ही प्रकट होता है। भक्ति की साधन-प्रक्रिया को हम मानसिक उपचार-सदृश भी मान सकते हैं, क्योंकि यह मानवमन की विकृतियों को धीरे-धीरे सहानुभूतिपूर्वक दूर करती है। इसका आदेश ज्ञान की भाँति मानवीय संबंध को झटके से तोड़ने के लिए नहीं बल्कि भावनापूर्वक उन संबंधों का केंद्र बदलना है।

हम भक्ति द्वारा भक्तिभाजन से विशेष घनिष्ठ संबंध स्थापित करते हैं, उसकी सत्ता में विशेष रूप से योग देना चाहते हैं। इस प्रकार भक्ति रसदशा के अधिक समीप पहुँचती है, श्रद्धा उतना नहीं।

दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि श्रद्धा का रसरूप भक्ति है, अर्थात् श्रद्धा भाव है तथा भक्ति रस। जब जीव अहंकार एवं ममता को छोड़कर चेतना के स्थूल जगत् से ऊपर उठकर श्रद्धेय का सान्निध्य पा लेता है, तभी उसे अखंड-आनंद की अनुभूति होती है और इस अखंड आनंद की ओर उन्मुख प्रेम भी नित्य आनंदस्वरूप है। भक्ति इसी उच्चतर प्रेम का विज्ञान है और उस परम प्रेमास्पद को निकट लाने का सबसे सहज साधन है।

अतः भक्ति का प्राणतत्त्व प्रेम है। भक्ति में न जाति का बंधन है, न वर्ग का, नहीं बाह्याडंबर एवं आसक्ति के साधनानुष्ठानों का ही विशेष आग्रह है।[11] जीव अपनी समस्त श्रद्धा प्रेम, विश्वास एवं आसक्ति ईश्वरार्पण कर दे, बस यही भक्ति की आवश्यक शर्त है। भक्ति स्वयं में एक मनःस्थिति है। अर्थात् भक्ति मन की एक वृत्ति या भाव है, तथा ज्ञान एवं कर्म से स्वरूपतः भिन्न है, क्योंकि भक्ति में प्रेम के शाश्वत बंधन द्वारा भक्त आदि से अंत तक अपने व्यक्तित्व को

स्वतंत्र बनाए रखता है, जबकि ज्ञानयोग में ज्ञानी को अंत में अपने अस्तित्व को परब्रह्म से मिलाकर एकाकार करना पड़ता है। ज्ञान की पराकाष्ठा अपने व्यक्तित्व के विलीन करने में ही है, किंतु ईश्वर के प्रति मन की अविच्छिन्न अनुरक्ति ही प्रेमभक्ति है। ज्ञान एवं कर्ममार्ग की उपादेयता भक्तिभाव के उदय तक ही है। भक्तिभाव के उदय होने पर भक्त अपनी समस्त इच्छाओं, वासनाओं को त्याग देता है, उसके सभी कार्य स्वत: भगवतप्रीत्यर्थ होते हैं। मानव ईश्वरीय आराधना द्वारा कर्मों के फल से सर्वथा अनासक्त रहकर नैष्कर्म्य की स्थिति प्राप्त कर ले, यही भक्ति है। महर्षि नारद अपने भक्तिसूत्रों में भक्ति को अमृतस्वरूपा एवं प्रेमरूपा कहते हैं।[12] उनके अनुसार भक्ति की अवस्था में साधक अपने चित्त में लौकिक किसी भी अत्यंत मोहक या प्रियातिप्रिय पदार्थ को स्थान नहीं दे पाता। उसकी समस्त आसक्ति मात्र प्रभु एवं उसके प्रीत्यर्थ सेवादिकर्मों में समर्पित हो जाती है।[13] महर्षि नारद एवं अन्य सभी भक्ति प्रवणाचार्यों के अनुसार पराभक्ति अनन्य भक्ति है। यही प्रेम की पराकाष्ठा है एवं भक्ति का पर्यवसान-स्थल है। महर्षि शांडिल्य के अनुसार भी पराभक्ति ईश्वर में अनुरक्ति या अनुराग है।[14]

विष्णुपुराण में भक्ति की परिभाषा करते हुए अविवेकी पुरुषों की विषयों में आस्था के समान प्रभु के प्रति अविचल प्रीति को ही भक्ति कहा गया है।[15] आचार्य रूपगोस्वामी ने कृष्णानुकूलतारूपिणी चित्तवृत्ति को 'भक्ति' संज्ञा सुधा से अभिहित किया है।[16] मनुष्य का रतिरूप आकर्षण जब नारी से हटकर अपने ही चैतन्य केंद्र में समाविष्ट हो जाता है, तब इसी मधुर परिवर्तन को भक्ति की संज्ञा दी जाती है। अत: उच्चस्तर पर पहुँचने पर बड़ों के प्रति पूज्यभाव ही भक्तिभाव सें परिणत हो जाता है। लौकिक प्रेम जब अलौकिक प्रेम का रूप धारण कर लेता है, जीवोन्मुखी प्रेम जब ईश्वरोन्मुखी प्रेम में परिणत हो जाता है, तब रागमयी भक्तिभावना का उदय होता है।[17]

निष्कर्षत: भक्ति एक मिश्रित भाव है। यह भावात्मक अनुभूति है। यह ईश्वर के स्वरूप दर्शन एवं उसके विचारमात्र से उद्भूत होने वाले संवेदनात्मक प्रभावों के प्रति भक्त के मस्तिष्क की एक मिश्रित प्रतिक्रिया है। अत: सार रूप में मानव-हृदय के ये (प्रेम, प्रीति, श्रद्धा, अनुराग, आदि) भाव 'अहसास' मात्र हैं।

संदर्भ-ग्रंथ

1. उत्तररामचरित, भवभूति प्रकाशन, रतिराम शास्त्री साहित्य भंडार, मेरठ, 1996
2. काव्यप्रकाश, मम्मट, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा
3. चिंतामणि, रामचंद्र् शुक्ल, इंडियन प्रेस प्रकाशन, इलाहाबाद
4. नारदभक्तिसूत्र, गीताप्रेस, गोरखपुर
5. श्रीमद्भगवद्गीता, गीताप्रेस, गोरखपुर
6. मधुररस स्वरूप और विकास, रामस्वार्थ चौधरी 'अभिनव', राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 1968
7. मेघदूत, कालिदास, रतिराम शास्त्री, मेरठ, 1984
8. विष्णुपुराण, संपादक श्रीराम शर्मा आचार्य, संस्कृति संस्थान, बरेली
9. शांडिल्य संहिता, सरस्वती पुस्तक भवन, 1936
10. शृंगाररस भावना और विश्लेषण, रमाशंकर जेटली, राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी, जयपुर, 1972
11. श्रीमद्भागवतपुराण, हनुमानप्रसाद पोद्दार, गीताप्रेस, गोरखपुर

12. साहित्यदर्पण, विश्वनाथ, व्याख्याकार, डॉ॰ सत्यव्रत सिंह, चोखंबा विद्या भवन, वाराणसी, 1977 ई.
13. हरिभक्तिरसामृतसिंधु, श्रीरूपगोस्वामी, अच्युत ग्रंथमाला, विद्याविलास प्रेस, वि॰ सं॰ 1988

संदर्भ

1. साहित्यदर्पण, 3/183
2. काव्यप्रकाश, 4/48 की कारिका
3. कामार्ता हि प्रकृतिकृपणाश्चेतनाचेतनेषु। मेघदूत, कालिदास।
4. नारदभक्तिसूत्र, 51,52
5. श्रीमद्भागवत, कल्याण (भक्ति अंक) पृ॰ 8
6. लोचनरोचनी, पृ॰ 377
7. श्रीमद्भगवद्गीता, अध्याय 17, श्लोक 3
8. श्रीमद्भगवद्गीता, (6-47)
9. उत्तरामचरितम्, भवभूति अंक 6, श्लोक 12
10. चिंतामणि, पृ॰ 26
11. श्रीमद्भगवद्गीता, 9/26
12. नारदभक्तिसूत्र, 2,3
13. श्रीमद्भागवतपुराण, 4/20-24
14. शांडिल्य भक्तिसूत्र-1
15. विष्णुपुराण, 1-20-19
16. भक्तिरसामृतसिंधु, 1-1-11
17. मधुररस स्वरूप और विकास, रामस्वार्थ चौधरी 'अभिनव', पृ॰ 78

द्वारा डॉ॰ मुकेश यादव
श्री विनायक हास्पिटल
एस॰ 63, ढावा कांप्लेक्स
भिवंडी (अलवर) राज॰
मो॰ 09785887575

मैत्रेयी पुष्पा के कहानी-साहित्य का सांस्कृतिक अध्ययन

सुधा महला
असिस्टेंट प्रोफेसर,
राजकीय महाविद्यालय, करनाल (हरियाणा)

मानव-जीवन के क्रिया-कलाप, आहार-व्यवहार, चिंतन-मनन, आचार-विचार आदि विशिष्ट क्रियाओं का संचालन अंतर्वृत्तियों की जिस समष्टि द्वारा होता है तथा जिसे अपनाकर वह सही अर्थों में मानव बनने की दिशा में अग्रसर होता है, उसे संस्कृति कहते हैं।

संस्कृति में परिवर्तन कालक्रमानुसार हुआ करते हैं, परंतु उसकी सत्ता सदैव अक्षुण्ण रहा करती है। संस्कृति मरती नहीं, मिटती नहीं और इसी दृष्टि से इसका अर्थ विकासशील रहा है। संस्कृति के अर्थ को लेकर विद्वानों ने पृथक्-पृथक् विचार प्रकट किए हैं।

मैथ्यू आर्नल्ड ने संस्कृति की परिभाषा इस प्रकार दी है–'जीवनगत परिपूर्णता के प्रति प्रेम तथा उस परिपूर्णता का अध्ययन। परंतु व्यक्ति समाज से अलग एकाकी रहकर उक्त परिपूर्णता को नहीं प्राप्त कर सकता। अतएव यह एक सामाजिक भाव है तथा सांस्कृतिक मनुष्य समानता के सच्चे देवदूत हैं।'[1]

डॉ॰ सर्वपल्ली के अनुसार, 'संस्कृति वह वस्तु है, जो स्वभाव, माधुर्य मानसिक निरोगता एवं आत्मिक शक्ति को जन्म देती है।'[2]

रवींद्रनाथ ठाकुर के अनुसार, 'मानसिक जीवन के स्वरूप का नाम संस्कृति है।'[3]

आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी के अनुसार, 'मनुष्य की श्रेष्ठ साधनाएँ ही संस्कृति हैं। असंयत प्रकृति का नाम ही विकृति है और संपत प्रकृति का नाम संस्कृति है।'[4]

उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर हम कह सकते हैं कि संस्कृति मानव के आचार-विचार-परिष्कार की सौंदर्यमूलक तथा मंगलविधायक प्रक्रिया है। अपने समग्र रूप में संस्कृति, सामाजिक जीवन की सभी सार्वभूत पद्धतियों का निरूपण है, जिनमें जीवन को ऊर्ध्वगति प्रदान करने वाले जीवन-मूल्य भी समाहित रहते हैं। यह अर्जित होती है। जाति या समुदाय के जीवन-चिंतन तथा व्यवहारों को प्रदर्शित करती है।

रीति-रिवाज

मानव जिस समाज में रहता है, रीति-रिवाज, रूढ़ि, परंपरा, परिवेश, संस्कृति, रहन-सहन, खान-पान, सोचने, विचार करने की प्रवृत्ति समाज पर निर्भर करती है। मैत्रेयी पुष्पा की कहानियों का परिवेश ग्रामीण है। ग्रामीण जीवन में रीति-रिवाज का बहुत महत्त्व होता है। नागरी समाज रीति-रिवाज को सहज रूप से त्याग सकता है, किंतु ग्रामीण समाज नहीं। विवाह, पर्व-त्योहार में

रीति-रिवाज का बहुत महत्त्व होता है। विवाह में मुँहदिखाई की रस्म होती है 'केतकी' कहानी में पंडित श्रीगोपाल की बहू केतकी की ब्याहकर आते ही सबसे पहले मुँहदिखाई की रस्म बुआ ने ही की थी। घूँघट उठाते ही बुआ ठगी-सी रह गई।

ललमनियाँ कहानी के मौहरो के पिता की मृत्यु हुई, घर में खाने के लिए कुछ नहीं था। भूख से बच्चे परेशान थे। माँ ने मोहरो को कहा–'बेटी चुपके-से ललमनियाँ कर आ। परोसा मिलेगा सो उसी परसाद के संग कई दिनों तक पानी पीते रहेंगे। लौटकर आई तो बापू का दाह करके लौट चुके थे लोग। मौहरो ने अम्मा को बताया, 'नहीं दिया अम्मा। घर की मालकिन ने बोला–ब्याह के घर का परोसा मौत वाले घर में नहीं जाता। तू आई क्यों बेटी?'[5] रिवाज को पूरा करने के लिए जरूरतमंद को भी भूखा मारा जाता है।

त्योहार और उत्सव

त्योहार और उत्सव मानव-जीवन का महत्त्वपूर्ण अंग है। धर्मपरायण समाज में तो इसका और भी महत्त्व होता है। धार्मिक उत्सवों में देवी-देवता, ग्रामदेवता, वीर पूजा आदि के उत्सव किए जाते हैं। भारतीय समाज में देवी-देवता, ग्रामदेवता, वीर पूजा आदि के उत्सव किए जाते हैं। भारतीय समाज में विवाह भी एक उत्सव की तरह मनाया जाता है। आज इसमें परिवर्तन दिखाई देता है। विवाह एक संस्कार है, किंतु अब यह संस्कार न होकर अपनी अमीरी का प्रदर्शन बन गया है। पद्धतियों में परिवर्तन आ रहा है। 'प्रेम भाई एंड पार्टी' कहानी में लड़के के पिता समधी को विवाह में प्रेम भाई पार्टी का आक्रेस्ट्रा पार्टी बुलाने का आग्रह करते हैं। प्रेमपूर्वक चंदन को समझाने लगते हैं, 'यार, ब्याह-बारातों के सौक-मौज है ये तो। अब बाई-पुरियों के जमाने तो गए। जहाँ देखो सनेमा वाली नचनी देख लो। नई फैसन जो ठहरी। और फिर तुम्हारे ही द्वार-दरवाजे की शोभा बँधेगी।'[6]

'सिस्टर' कहानी की डिसूजा प्रोफेसर सुरेशचंद्र के घर इंजेक्शन लगाने जाती है। सुरेशचंद्र की पत्नी डिसूजा के साथ संबंध बढ़ाने के लिए थाली में नारियल धरते हुए बोली, 'बहन जी, अपने भाई साहब को टीका कर दो। भाई दूज अभी चार दिन पहले ही निकली है, पर क्या अंतर पड़ता है, पखवाड़ा तो वही चल रहा है। हमने तो तभी सोची थी, लेकिन उस समय इनकी हालत आप तो देख ही रही थीं।[7]

भारतीय समाज उत्सव और त्योहारों के प्रति आकर्षित होता हुआ दिखाई देता है। जन्म से मृत्यु तक अनेक उत्सवों का संबंध आता है। त्योहारों का संबंध धार्मिक मान्यताओं के साथ है। प्रत्येक त्योहार किसी-न-किसी देवता के साथ संबंधित है। भारत तो अनेक धर्म, पंथ, संप्रदायों का देश है। अत: त्योहारों और उत्सवों की कोई कमी नहीं। 'छाँह' कहानी की सकीना मुस्लिम होकर भी दशहरे के आसपास जगह-जगह रामलीला, काली की सवारी, हनुमान की सवारी, चहल-पीहल, बतासो घूँघट में से माथा नपाती रही। कुतूहल भरी आँखें घुमा-घुमाकर देखती।[8]

लोक-विश्वास

समाज में प्रचलित नियम लोकविश्वास कहलाते हैं। लोकविश्वास का संबंध कर्मफल से जुड़ा होने के कारण लोग सामाजिक नियमों को तोड़ते हुए हिचकिचाते हैं। कर्मफल के आधार पर स्वर्ग या नरक की प्राप्ति होती है, यह विश्वास भारतीय समाज में पाया जाता है। आध्यात्मिक

प्रभाव के कारण आत्मा की अमरता का विश्वास होगा। पुनर्जन्म में विश्वास रखने वाला मनुष्य लोकविश्वास को तोड़ता नहीं।

मौहरों को जिजी कहती है–ललमनियाँ नाचने से लंबरदारनी अच्छा देगी तब मौहरो कहती है, 'कैसी बातें करती हो जीजी? ललमनियाँ क्या लेने-देने के लिए किया जाता है? अरे वह तो अपनी बिरज भूमि का नाच है। बस मरता हुआ नहीं देखा जाता। अम्मा क्या कमाई के लिए ललमनियाँ दिखाती थी? उसे तो अटूट पिरैम था इस नाच से।'[9] ललमनियाँ नाचना को एक शगुन मानना एक लोकविश्वास है।

लोकगीत

जन्म से लेकर मृत्यु तक मानव का संबंध गीतों के साथ होता है। गीतों के माध्यम से प्रभावी रूप में अपनी भावनाएँ रखी जा सकती है। जनमानस में पीढ़ी-दर-पीढ़ी चलते आए अज्ञात काव्य को लोकगीत की श्रेणी में रखा जाता है। मैत्रेयी पुष्पा की कहानियों में लोकगीत प्राप्त होते हैं। इन्हीं लोकगीतों ने कहानियों को ग्रामीण रंग में ढालने का कार्य किया है। 'शतरंज के खिलाड़ी' कहानी में लोकगीत मिलता है।

'दिलवर दिल में बस गया, दिल-दिल पर बलिहार। कदम इश्क में फँस गया, जीना है दुसवार। किनड़विड़ किड़विड़ घूम।'[10]

पिछड़े हुए कहानी में स्वामी शतानंद के सामने उसकी पत्नी को गाँव के लोग बुलाते हैं। तब स्वामी शतानन्द के मन की अवस्था को प्रस्तुत पंक्तियों के माध्यम से स्पष्ट किया है–

काँच बाँस का पींजरा, जा में दिया न लोय,
हंसा उड़ता ईकला, संग न जाता कोय।[11]

अंधविश्वास का चित्रण

अधिकांश लोग किसी-न-किसी अंधविश्वास के शिकार हैं। इसमें सभी प्रकार के संस्कार, अनुष्ठान, पर्वव्रत, उत्सव, प्रथाएँ-परंपराएँ आती हैं। इनका पालन मात्र अज्ञान के कारण अगर हो तो उसे अंधविश्वास कहा जाता है। भारत में जो आदिवासी और असभ्य जातियाँ हैं तथा कुछ सभ्य समझी जाने वाली जातियाँ भी अंधविश्वास पालन करते हैं। मंत्र-तंत्र, जादू-टोना, ताबीज, झाड़-फूँक, भूत-प्रेत, देवी-देवता आदि अंधविश्वास में आते हैं। 'मन नाहिं दस-बीस' कहानी में अंधविश्वास का चित्रण आया है, लाला को जहाँ कोई संतान नहीं होती है, तब वह बनारस, प्रयाग से पंडित-महंत बुलाए गए। दान-पुण्य हुए, तब कहीं जाकर एक बेटी का जन्म हुआ। खुशी की लहर चंदन की सुगंध-सी घर के कोने-कोने में व्याप्त हो गयी। बेटी नामकरण हुआ तो नाम रखा गया 'चंदना'।[12]

शकुन-अपशकुन

शकुन-अपशकुन मानने वालों में प्रमुखत: अशिक्षित, ग्रामीण, आदिवासी तथा पिछड़े वर्ग के लोग पाए जाते हैं। समाज में शकुन-अपशकुन मानने की प्रवृत्ति के कारण स्त्रियों पर अत्याचार भी होते हैं। जैसे किसी स्त्री के यदि पति या माता-पिता तथा अन्य परिवारीजन की मृत्यु हो तब उसे अपशकुनी माना जाता है 'सहचर' कहानी की छबीली के माता-पिता की कार अपजात में

मृत्यु होती है। चाचा बंसी के साथ छबीली का ब्याह कराते हैं, छबीली को बुखार आता है और डॉक्टर ने उसका पैर काटने की बात करने पर बंसी के ददा की त्यौरयाँ चढ़ गईं और कहने लगे, 'कोई-कोई जनमता ही मनहूस हो के हैं। बहू दूरभागिनी है। मताई, बाप की कैसी अनहोनी मौत भई। अत तो अपने जनम में जो महादसा हमारे बस की तो लो, कछू नहीं, बहू को मायके भेज आते हैं, इसके चाचा जानें और बहू। पाँव कटै के रहै, हमें क्या करने हैं।'[13] सास भी उसे अपशकुनी मानकर उसके चाचा के पास छबीली को छोड़ती है और अपने बेटे बंसी का दूसरा ब्याह कराने की कोशिश करती है।

चूड़ियाँ पहनना शुभ शकुन माना जाता है। औरत यदि विधवा हो जाए तो उसे चूड़ियाँ पहनने का अधिकार नहीं है। चूड़ियाँ सुहाग का प्रतीक हैं।

परंपरा

स्त्री के गले में हार केवल उसका पति पहनाए, अन्य नहीं यह परंपरा है। 'रास' कहानी में जैमंती अपने सासरे से आने के बाद माथे पर हथेली धरे धरती पर बैठी थी। अम्मा ने असगुन विचारकर टोका नहीं। किसान-जिजमानों के घर अम्मा ही तो उनकी बेटियों को बताती है– 'लाली, पीढ़ा, खाट पर बैठो। सासरे से आई बेटी धरती पर बैठनी नहीं। दोस होता है।'[14] समाज में परंपरा का पालन किया जाता है।

निष्कर्ष

अत: हम कह सकते हैं कि संस्कृति मानव के आचार-विचार परिष्कार की सौंदर्यमूलक प्रक्रिया है। संस्कृति मनुष्य को मानसिक निरोगता तथा आत्मिक शांति देती है। मैत्रेयी पुष्पा जी ने अपनी कहानियों में ग्रामीण संस्कृति का सजीव वर्णन किया है। रीति-रिवाज, त्योहार और उत्सव, लोकविश्वास, अंधविश्वास, शकुन-अपशकुन, परंपरा आदि ये संस्कृति के अंग हैं, जो मनुष्य को दिग्भ्रमित होने से रोकते हैं। उसे सन्मार्ग की ओर उन्मुख करते हैं।

संदर्भ

1. डॉ॰ बाबूराम, हिंदी निबंध का सांस्कृतिक अध्ययन, पृ॰ 91, 92
2. डॉ॰ सर्वपल्ली राधाकृष्णन्, स्वतन्त्रता और संस्कृति, पृ॰ 33
3. Ravindra Nath Tagore, Towards Universal man, P. 209
4. आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी, कालिदास की लालित्य-योजना, पृ॰ 127
5. मैत्रेयी पुष्पा, ललमनियाँ, पृ॰ 143
6. वही, गोमा हँसती है, प्रेम भाई एंड पार्टी, पृ॰ 59
7. वही, ललमनियाँ, सिस्टर, पृ॰ 25
8. वही, ललमनियाँ, छाँह, पृ॰ 110
9. वही, ललमनियाँ, ललमनियाँ, पृ॰ 139
10. वही, गोमा हँसती है, शतरंज के खिलाड़ी, पृ॰ 28
11. वही, गोमा हँसती है, बिछुड़े हुए, पृ॰ 52
12. वही, चिह्नार, मन नांहि दस-बीस, पृ॰ 53
13. वही, गोमा हँसती है : शतरंज के खिलाड़ी, पृ॰ 25
14. डॉ॰ व्यंकट किशनराव पाटिल, मैत्रेयी पुष्पा के साहित्य का समाजशास्त्रीय अध्ययन, पृ॰ 100

जीवगोस्वामी विरचित गोपालचंपू में सामाजिक परिवेश

सरिता यादव
शोध छात्रा (संस्कृत)
वनस्थली विद्यापीठ, राजस्थान

साहित्य समाज का दर्पण है। तात्कालिक सामाजिक परिवेश के अध्ययन से ही हमें उस समय के नियमों, रीति-रिवाजों तथा सामाजिक प्रणाली के विषय में ज्ञान प्राप्त होता है। मनुष्य को सामाजिक परिवेश के विषय में जानना आवश्यक है, क्योंकि समाज के ज्ञान से ही व्यक्तित्व-निर्माण के विषय का बोध होता है। भले ही व्यक्ति के जीवन की प्रथम पाठशाला उसका परिवार है, लेकिन उसके जीवन-निर्माण और व्यक्तित्व-निर्माण में समाज की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। व्यक्ति जिस तरह के समाज में रहता है, उसके आचार-विचार उसी तरह के होते हैं। इसलिए हमें अपने आसपास एक सभ्य और सुसंस्कृत समाज का निर्माण करना चाहिए। इसी तरह के सभ्य और सुसंस्कृत समाज का ज्ञान हमें जीवगोस्वामीकृत गोपालचंपू नामक रचना के अध्ययन से प्राप्त होता है, जिसमें उन्होंने एक ऐसे समाज का वर्णन किया है, जो बहुत ही उत्कृष्ट श्रेणी का है, जहाँ लोग एक-दूसरे का सम्मान करते हैं, सत्य और मधुर बोलते हैं, सभ्य और छल-कपट से दूर सरल जीवन व्यतीत करते हैं। ऐसे समाज का ज्ञान हमारे हृदय की वेदना को छू जाती है। हृदय में छिपे भावों को उद्वेलित करता है।

अत: जीवगोस्वामी ने अपने समय के समाज का वर्णन बड़े ही सटीक ढंग से किया है। उनकी इस रचना में वहाँ के समाज की आत्मा, महत्ता एवं मूलभूत दृष्टिकोणों का साक्षात्कार किया जा सकता है। ऐसी रचनाओं के समन्वित रूप को ही वाङ्मय साहित्य या काव्य की संज्ञा दी जाती है। गोपालचंपू के अध्ययन से ज्ञात होता है कि उस समय राजतंत्र की प्रथा थी। राजतंत्र अधिक लोकप्रिय था तथा राजा सम्मान का पात्र होता था। राजा क्षत्रिय होता था। वह स्वभावत: कठोर होने के कारण दुष्टों का नाशक होता था। रात्रि के शेष भाग में राजा को जगाने के लिए नगाड़े बजाए जाते थे। तदनंतर सूत, मगध एवं बंदीजनों के द्वारा विरुद आदि का पाठ होता था। राजा गुप्तचर नियुक्त करता था, जो उसे गुप्त रूप से समाचार देते थे। राजा की आज्ञा शिरोधार्य होती थी। उसका उल्लंघन नहीं होता था।

राजा के लिए सुगंधित द्रव्यों का संयोजन करने वाली एक स्त्री होती थी, जिसे सैरंध्री कहा जाता था। इसका प्रवेश अंत:पुर तक होता था। राजा की सभा में ग्रामीण लोग भी जाते थे। वहाँ स्त्रियों के लिए बैठने की विशेष व्यवस्था होती थी।

वर्ण-व्यवस्था

शरीर में स्थित भावों में दैवीय संपत्ति को खोजना या वरण करना ही वर्ण है।[1] इस प्रकार

जो लोग वर्ण से रंग की बात करते हैं अर्थात् रंग के आधार पर वर्ण की उत्पत्ति होती है, ऐसा मानते हैं अथवा किसी जाति या वर्ग-विशेष के आधार पर वर्ण की उत्पत्ति को मानने वालों का मत विखंडित हो जाता है। साथ ही शरीर-निष्ठ या आत्मनिष्ठ दैवी संपदा को खोजने में दक्ष लोगों को हम उत्तम कोटि के ब्राह्मण के रूप में रख सकते हैं। इसलिए मनु ने चारों वर्णों को ही ब्राह्मण स्वरूप माना है। जीवगोस्वामी के द्वारा परिभाषित किया गया 'वर्ण' शब्द सामाजिक समरसता, सामाजिक न्याय एवं सौहार्द को देने वाला व्यापक तत्त्व है, जिसमें कर्म एवं शुद्धाचरण की सुगंध समाहित है। गोपालचंपू में चार वर्ण का उल्लेख मिलता है—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र।[2] ब्राह्मण विशेष सम्मान के पात्र होते थे। उनकी अवज्ञा अहितकारिणी होती थी। ब्राह्मणों के लिए मांस-भोजन वर्जित था। मांसभोजी ब्राह्मण निंदा के पात्र समझे जाते थे। ब्राह्मण जीवनमात्र के कल्याण के लिए कार्य करते थे। अग्निहोत्री ब्राह्मण दोनों संध्याओं में हवनकार्य करते थे और उनके द्वारा ही पौराहित्य कर्म संपादित होता था। जिस वर्ण का जो पुरोहित होता था, वही उस वर्ण का संस्कार कराता था। दौत्य कार्य भी प्रायः ब्राह्मण ही करते थे। उस समय गुरुकुल में विद्या ग्रहण करने की पद्धति प्रचलित थी और वह विद्या ब्राह्मणों द्वारा ही प्रदान की जाती थी। प्रजा की रक्षा करना क्षत्रियों का कर्त्तव्य था। ब्राह्मण एवं क्षत्रियों को मांगलिक कार्य में प्राथमिकता दी जाती थी। वैश्य कृषि आदि का कार्य करते थे। कृषिकार्य में निपुण वैश्य राजसूय यज्ञ के अवसर पर ब्राह्मणों द्वारा स्वर्ण हल चलाते समय उनकी अदक्षता के कारण हँसी उड़ाने लगे। शूद्र सेवा का कार्य करते थे। उन्हें वेदाध्ययन का अधिकार नहीं था। वर्णाश्रम-व्यवस्था का उल्लंघन नहीं होता था।

कुल

कुल के संबंध में मंतव्य उपस्थापित करते हुए कहा गया है कि लालन-पालन एवं सुख-दुख को जो समान रूप से पृथ्वी पर लाए वह पित्राश्रित जन्म कुल कहलाता है।[3] अतः कुल एक परिवार या परिवारों की ऐसी इकाई है जिसका सूत्र परंपरा के पूर्व पुरुष से संबंधित होता है।

जाति

यद्यपि जाति की परिभाषाएँ अवस्थानुसार शास्त्रों में कई रूपों में देखने को मिलती हैं, लेकिन धर्मशास्त्रीय एवं भारतीय सांस्कृतिक दृष्टि से जाति के स्वरूप का जो निर्धारण किया है, उसका भाव यह है कि पूर्वजों के जन्म कर्म को समझकर कल्याणबुद्धि से जिनके आचार एवं जीविका का ज्ञान होता है, उसे जाति कहते हैं।[4]

गोत्र

यह गोत्र हमारा शरीर ही है, जिसे पूर्वजों ने भी प्राप्त किया था। इस कारण अपने कुल के जो श्रेष्ठ ऋषि हैं, उन्हें विद्वान लोग गोत्र कहते हैं। यह तो निश्चित है कि सभी मनुष्य ऋषिसंभूत हैं, किंतु ब्राह्मण ही प्रारंभ से लेकर आज तक ऋषि-संपत्ति का रक्षक होता आया है, इसी कारण विप्रों में गोत्र का विचार किया जाता है। ब्राह्मणों के कर्त्तव्यों में अध्ययन, याजन, सत-परिग्रह एवं शास्त्रज्ञान की रक्षा कही गई है। अन्य जो वर्ण हैं, वे वेद के अधिकारी होते हुए भी रक्षादायित्व का पालन नहीं कर सकते थे, अतः सहज रूप से अनेक गोत्र पर प्रकाश नहीं

पड़ता है। इसका अर्थ यह नहीं है कि उनके लिए गोत्र की व्यवस्था शास्त्रों में नहीं की गई है। बल्कि तात्पर्य यह है कि उनके गोत्र पर विचार करना उनके द्वारा पूजित पुरोहित के अधीन रहता है, जो विवाह इत्यादि के समय विचार में आता है।

भाषा

भाषाओं की अनेकता, अनिवार्यता एवं उपयोगिता को सम्मान देते हुए वैदिक भाषा को जीवगोस्वामीपाद ने प्रमुख स्थान दिया है। परंतु गोपालचंपू में इनका तात्पर्य व्यवहार की भाषा से है, जिसे हम लोग लौकिक संस्कृत की भाषा कहते हैं। इसी कारण भारतीय संस्कृति में जितने संस्कार हैं, उनका अनुष्ठान इसी संस्कृत भाषा में होता है।[5] इसी दैवीभाषा द्वारा अनुष्ठीय मान हमारे भारतीय संस्कार व्यक्ति में दैवी संपदा को प्रकट करते हैं और यह दैवी संपदा हमारे जीवन पद्धति का मूल्य बन जाती है।

विवाह

विवाह एक संस्कार है जिसमें वर-वधू जीवनपर्यंत साथ रहने का व्रत लेते हैं, किंतु भावात्मक एकता के अभाव में दांपत्य जीवन साररहित हो जाता है। इसीलिए श्री जीवगोस्वामीपाद ने वर-वधू की परस्पर प्रेममूलक स्वीकारोक्ति को ही परिणय विधि कहा है।[6] उस समय सवर्ण विवाह उत्तम माना जाता था और शुल्क लेकर कन्यादान निंदनीय था। विवाह से पूर्व कन्या के माता-पिता द्वारा वर एवं उनके माता-पिता के लिए वस्त्र, आभूषण आदि उपहारस्वरूप दिए जाते थे और ये उपहार दूत द्वारा भेजे जाते थे। विवाह से एक दिन पूर्व वर के शरीर में तैलयुक्त उबटन का लेप करके सुगंधित पक्वतैल का लेप करके स्नान कराया जाता था। स्नान के बाद पूर्वाभिमुख होकर बैठे हुए वर-वधू के मस्तक पर स्त्रियाँ तिलक लगाकर उन्हें आशीर्वाद देती हैं। स्त्रियाँ तैलमिश्रित जल को उनके मस्तक पर रखकर दुर्वा के अग्रभाग से सभी दिशाओं में जल का छिड़काव करती थीं। तत्पश्चात् वर-वधू ग्राम के मध्य में स्थित देवालय में लक्ष्मीनारायण की पूजा करने जाते थे। विवाह के दिन वर-वधू को स्नान कराकर जब वर मंडप में आ जाता था, तब उसकी आरती करने के पश्चात् आसन पर बैठकर वधू द्वारा वर की सात बार परिक्रमा कराकर, उसके आगे सम्मुख रूप में बैठा दिया जाता था। कन्यादान के पश्चात् वर-वधू को एक साथ बैठाकर उनके वस्त्रांचल को परस्पर बाँध दिया जाता था और उसके बाद दोनों अग्नि की परिक्रमा करते थे। तदनंतर गुरुजनों का अभिवादन कर पास में स्थित चतुष्कोणीय वेदी पर वर-वधू के बैठ जाने पर पुरुषवर्ग वहाँ से चला जाता था। विवाह के चौथे दिन वर-वधू सुंदर भोजन के पश्चात् द्यूत-क्रीड़ा करते थे। उसी समय कंकण मोथन नामक कौतुक में भी भाग लेते थे। वर एवं वधू में जो पहले कंकण ग्रंथी को खोल देता था, वही जयी होता था। राधाकृष्ण के कंकणमोचन में कृष्ण विजयी हुए।[7] विवाह के पाँचवें दिन वर अपनी वधुसहित श्वसुर के घर जाकर कुछ दिन वहाँ रहकर वधूसहित अपने घर आ जाता था। विवाह के समय घर को तोरण, मंडप, वितान आदि से सज्जित किया जाता था और ग्राम-मार्ग में दोनों ओर दीप जलाए जाते थे। विवाह के कुछ दिन पूर्व से ही स्त्रियाँ वर-वधू के घर गीत गाती थीं। विवाह के समय गालीयुक्त गीत गाती थीं।[8]

नगर का जीवन

नगर में संपन्न लोग ही अधिक रहते थे। वहाँ बड़ी-बड़ी अट्टालिकाएँ होती थीं। चौराहे के पास के भवन अधिक सुंदर होते थे। नगर में प्रवेश के लिए पुरद्वार होते थे। पुरद्वार तोरणों से सजाए जाते थे। किवाड़ों में कला का संयोग होता था तथा नगरों में पक्षियों के लिए रक्षागृह होते थे। मयूर एवं कबूतर पाले जाते थे। नगरों के चारों ओर खाई और उपवन होते थे। खाइयों में जल भरा रहता था। नगरों में देवताओं के मंदिर, रथ, घोड़े एव हाथियों की शोभा विद्यमान रहती थी।

मांगलिक कार्य एवं पदार्थ

आरती, न्योछावर, घृत तथा दर्पण का दर्शन, ब्राह्मण एवं आत्मीयजन की अर्चना, केशों में दुर्वा की स्थापना ये मांगलिक कार्य थे। गोमूत्र-स्नान, स्वस्तिवाचन, अभिषेक, दक्षिणा द्वारा ब्राह्मणों को संतुष्ट करना, पुष्पवृष्टि, मंगलगान तथा स्तुति आदि भी मांगलिक कार्य थे।[9] यात्राकाल में दीप एवं कलश का दर्शन शुभ माना जाता था एवं उस समय में गाय, देवता और ब्राह्मण का दर्शन, माला तांबूल, विलेप आदि का दान शुभप्रद होता था। इसी प्रकार मृतिका एवं गंधशिला की वंदना भी शुभ थी। हरिद्रा-कुमकुम मिश्रित चंदन द्वारा लिप्त दुर्वांकुर और नारियल ये मांगलिक पदार्थ थे। दुर्वा, जलपूर्ण कलश, तिल, मृतिका, अंगरूपक, धान्य आदि पदार्थ मांगलिक माने जाते थे। सुगंधित जल, पुष्प, दधि एवं अक्षत ये पूजा के साधन थे।

धार्मिक स्थिति

गोपालचंपू के सामाजिक परिवेश में धर्म दो तरह के होते थे–वैदिक एवं लौकिक। किंतु वैदिक धर्म ही अभीष्ट एवं सामान्य होता था। लौकिक धर्म वंश-परंपरागत अतएव अंधविश्वास पर आश्रित होते थे। धर्म का संबंध भाव से होता है और भाव का संबंध आत्मा से। जिस धर्म का संबंध आत्मा से नहीं होता, उससे कोई विशेष सिद्धि प्राप्त नहीं होती। क्योंकि वह धर्म विचारशून्य होता है।[10] परंपरागत धर्म ऐसा ही धर्म है। अतः मात्र अंगसंचालन जन्य धर्म का श्री जीवगोस्वामी ने विरोध किया है। पुत्र-प्राप्ति के लिए पुत्रेष्टियाग का आयोजन होता था तथा नारायण की अराधना के लिए द्वादशी व्रत का उल्लेख हुआ है। धर्म के लिए दान दिया जाता था और दुष्टों की दृष्टि से बचने के लिए मंत्रपाठ कराया जाता था। संस्कारों का क्रमविपर्यय नहीं होता था। यज्ञोपवीत संस्कार से पूर्व विवाह नहीं होता था। ग्वालों का मुख्य धर्म गो-सेवा ही थी। गोपों द्वारा गोवर्धन पूजा की जाती थी, जिसमें सर्वप्रथम गोवर्धनपूजा तदंतर क्रमशः गो-पूजा, अग्निपूजा एवं ब्राह्मणपूजा की जाती थी। अंत में गोपों की पूजा होती थी, जिसमें जल, वस्त्र, तिलक, अंगकलेप, माला, कुंडल आदि का आदान-प्रदान होता था। गो-पूजा में उनके सींग स्वर्ण से एवं खुर चाँदी से सजाए जाते थे। गले में हार तथा घंटियाँ पहनाई जाती थी। गो-ग्रास देने के बाद उनकी परिक्रमा की जाती थी एवं प्रणाम किया जाता था।[11]

सामाजिक आचार

प्रातः काल उठने पर बड़ों को प्रणाम किया जाता था। अत्यधिक पूज्य के लिए साष्टांग प्रणाम करते समय नम्रता का व्यवहार किया जाता था। श्रीकृष्ण एवं बलराम अपने गुरुदेव श्री

सांदीपनी मुनि की अधोमुख होकर प्रणाम करते हुए वर्णित हुए हैं।[12] गुरुजनों से बात करते समय भी नम्रता का व्यवहार किया जाता था। छोटे लोगों के प्रति उत्कंठित होते हुए भी बड़े लोग उनके आगमन पर गंभीरता का आश्रय लेकर मर्यादा की रक्षा करते थे।[13] पुत्र जैसे-जैसे बड़ा होता था, वह अपने माता-पिता से दूर-दूर रहता हुआ मर्यादा की रक्षा करता था। पिता पुत्र को उचित शिक्षा देने के लिए उसके समक्ष गंभीरता का आचरण करते हुए अपने पुत्र के समक्ष सहनशीलता रखते थे। अत: पुत्र अपने पिता के समक्ष चपलता का व्यवहार नहीं करता था। अतिथि विशेष अभिवादन का पात्र होता था। अतिथि की आगवानी करके उसे सम्मानित किया जाता और प्रार्थनापूर्वक उसको आसन पर बैठाया जाता था। बाद में आने वाले उसकी आज्ञा पाकर ही आसन ग्रहण करते थे। अतिथि को विदा करते समय कुछ दूर तक उसका अनुगमन किया जाता था। श्रीकृष्ण और बलराम के नामकरण-संस्कार के बाद जाते समय ब्रजेश द्वारा गर्गमुनि का अनुगमन होता है। उस समय अपना वर्ण, गोत्र एवं नाम बताते हुए प्रणाम किया जाता था। सभा में एक से अधिक वंदनीय जन के उपस्थित होने पर, सबकी अपेक्षा बड़े व्यक्ति को प्रणाम कर लेने पर सबका अभिवादन हो जाता था। सभा में वृद्धजन दाहिनी और बैठते थे और उनके पीछे अवस्थाक्रम में लोग बैठते थे। पत्नी पति की आज्ञा का पालन करती थी। विवाहित स्त्रियों द्वारा पति से भिन्न व्यक्ति की सेवा निंदनीय थी, अत: श्रीकृष्ण ने ब्राह्मण पत्नियों को सेवार्थ स्वीकार नहीं किया है। रमणी के लिए किसी अपरिचित पुरुष से स्वयं मिलना अनुचित माना जाता था। पति से भिन्न पुरुष को प्रणाम करते समय स्त्री मौन रहती थी। गुणी पुरुषों के लिए स्त्रियाँ सम्मान का पात्र थीं। किसी बड़े व्यक्ति के प्रति अपराध करने वाले व्यक्ति द्वारा किसी अन्य समर्थ व्यक्ति का आश्रय शक्तिप्रदर्शन माना जाता था। अज्ञानियों को दंड देना अनुचित माना जाता था। दंड एवं कृपा द्वारा अपराध नष्ट हो जाता था। होली का उत्सव ब्रजवासियों में युद्ध की तरह मनाया जाता था। इस अवसर पर स्त्री-पुरुष, बाल-वृद्ध सभी गायन, नृत्य तथा युद्ध करते हुए क्रीड़ा करते थे। उत्सव के समय गोपों द्वारा अपनी धनस्वरूपा गायें सुसज्जित की जाती थीं। उनको विचित्र धातुओं, मयूरपंख, माला आदि से सज्जित किया जाता था। उनके शरीर में तैलमिश्रित हरिद्रा का लेप किया जाता था। उत्सव के समय स्त्रियाँ नृत्य, गायन व वादन करती थीं। गोपों द्वारा प्रथम गोचरण के दिन उत्सव मनाया जाता था। बड़े व्यक्ति के पास में रहने पर अपने से छोटे के प्रति यदि कुछ कहना होता था तो धीरे से उसके कान में कहा जाता था। श्रीगर्गमुनि के साथ विद्यमान नंदजी अपने भृत्य से धीरे से कुछ कहते हैं।[14]

वेष

गोपगण हाथ में यष्टि, गोबंधन रज्जू तथा सिर पर पगड़ी धारण करते थे। हाथ में वेणु एवं सिर पर मयूरपंख भी धारण करते थे। गोप अंतरीय पहनते थे, जो नीचे तक लटका रहता था। कमर में सूक्ष्म वस्त्र बाँधा जाता था। पुरुष एवं स्त्री दोनों कंचुक पहनते थे। राधा एवं कृष्ण कंचुक पहने हुए वर्णित हुए हैं। छोटी लड़कियाँ अधोवस्त्र धारण करती थीं। उनके कानों में डोरे पहनाए जाते थे। राधा रक्तवर्ण का अधोवस्त्र एवं कान में डोरे पहने वर्णित हुई हैं। स्त्रियाँ साड़ी पहनती थीं। उनके मुख पर घूँघट रहता था। वस्त्रों पर छोटी-छोटी घंटियाँ लगी होती थी।[15]

पुरुषों के आभूषण

बाजूबंद कोहनी के ऊपर भुजा में पहना जाता था। कंगन मणिबंध में एवं मुद्रिका अँगुली में पहनी जाती थी। करधनी कमर में पहनी जाती थी। कुंडल कान में एवं हार गले में पहना जाता था। पायजेब एवं नुपूर पैरों में पहने जाते थे। काँच एवं गुंजापुंज भी भूषण का कार्य करते थे।

स्त्रियों के आभूषण

ललाटिका सिर पर धारण की जाती थी। कानों में कर्णफूल धारण किए जाते थे। मुक्ताफल नासिका में पहना जाता था। मणिबंध में कंगन, भुजाओं में अंगद एवं अँगुली में मुद्रिका धारण की जाती थी। गले में हार, कटि में मेखला, पैर में पायजेब एवं नुपूर, पैर की उँगली में बिछिया धारण की जाती थी। स्त्रियाँ केशों में रत्न गूँथती थीं।

पुष्पाभरण

पुष्पों के आभूषण भी धारण किए जाते थे। स्त्रियाँ वेणी में पुष्प गूँथती थीं, गोपबालक फल एवं नवीन पत्तों से भी अपने को अलंकृत करते थे।

प्रसाधन

स्त्रियों द्वारा केश को सुखाने के लिए धूप का प्रयोग होता था। वे ललाट पर अगरु-चंदन-रस व कस्तूरी का तिलक लगाती थीं। उनके कपोल पर कस्तूरी से मकरी का चित्र बनाया जाता था। शरीर में कुमकुम, कस्तूरी कर्पूर एवं अगरुचंदन का लेप होता था। कुमकुम का तिलक भी लगाया जाता था। स्त्रियाँ पैरों में महावर लगाती थीं।

मनोविनोद

काव्य-पाठ तथा शास्त्रार्थ मनोरंजन के साधन थे। अक्षक्रीड़ा भी होती थी। बालक कंदुक एवं कठपुतली से अपना मनोरंजन करते थे। उत्सव के समय वाद्य, गीत एवं नृत्य का प्रयोग होता था। वाद्य का प्रयोग कलाओं के अनुसार होता था।[16] जिस संगीत में वंशी का प्रयोग होता था, वही संगीत उत्तम माना जाता था। श्रेष्ठ नर्तक धनाभिलाषी नहीं होते थे। वे नृत्य को कला की दृष्टि से देखते थे। कथाश्रवण एवं अभिनय भी मनोरंजन के साधन थे।

उपर्युक्त दृष्टिकोण से स्पष्ट है कि गोपालचंपू नामक कृति में सभ्य समाज प्रचलित था, जो आज के सामाजिक परिवेश के लिए एक प्रेरणा-स्रोत है। इसलिए हमें भी अपने आसपास इसी तरह के सभ्य और सुसंस्कृत समाज का निर्माण करना चाहिए।

संदर्भ ग्रंथ

1. गोपालचंपू, जीवगोस्वामी, श्रीवनमालिदास, श्रीकृष्णानंद स्वर्गाश्रम मथुरा, 1968 (पूर्व), 1969 (उत्तर)
2. डॉ॰ गोपालचंद्र मिश्र की संस्कृत कृतियाँ : एक अध्ययन, भावना मधुकर, क्लासिक पब्लिकेशंस, जयपुर 2002
3 श्री जीवगोस्वामीकृत गोपालचंपू : एक अनुशीलन, डॉ॰ श्रीनिवास ओझा, काशी विद्यापीठ, वाराणसी 1987

संदर्भ

1. अंतः शरीरनिष्ठानां भावनानां प्रामुख्यत:
   वृणुते सम्पदं दैवी तेन वर्ण इति स्मृत:।
   –भारतीय संस्कृति षोडशकला परिचय:।
2. धन्येय चातुर्वण्येन निर्वर्ण्यमानौ। –गोपालउत्तरचंपू, पृ॰ 96
3. पालनाल्लालनाच्चैव समदु:खसुखं तु यत्।
   कौ पृथिव्यां लात्तिसमाज्जन्मं पित्राश्रितं कुलम्।
   –भारतीय संस्कृति षोडशकला परिचय:।
4. पूर्वजानां जन्मकर्म विज्ञाय हितबुद्धिभि:।
   आचार जीविका बोध: क्रियते 'जाति' शब्दत:।
   –भारतीय संस्कृति षोडशकला परिचय:।
5. यास्मिन्प्रान्ते यत्रक्षेत्रे मानवो जन्मत: सदा।
   कुल-जाति सदस्यैस्तु भाषा सा भाषते यया।
   यद्यपि क्षेत्रे प्रांतादि-भेदेन बहुधा श्रुता:।
   भाषास्तत्राषि सर्वास्ता: संस्कृतं मूलमास्त्रिता:।
   अतएव हि सर्वत्र भारते सार्वदेशिकी।
   संस्कारचार चयांसु संस्कृतं गृह्यते मृदा।
   –भारतीय संस्कृति षोडशकला परिचय:।
6. 'मिथ: स्वीकार: स्यातं परिणय विधि:.....। –गोपालपूर्वचंपू, पृ॰ 516
7. गोपालउत्तरचंपू, पृ॰ 715
8. वही, पृ॰ 695
9. स्वास्तिवाचनाभिषेचनादिना विप्रकुल प्रतोषणादिना.....तं लङ्गम बालं मङ्गलेन सङ्गमयामास।'
   –गोपालपूर्वचंपू, पृ॰ 160
10. यद्येष पन्था धर्मस्य सोऽपि नास्त्यविचारत:।
    यत्र यद्विदुिष: सिद्धिर्भवेन्नाविदुष: क्वचित्। –गोपालपूर्वचंपू, पृ॰ 419
11. गोपालपूर्वचंपू, पृ॰ 431
12. 'आवांङ्मुखतया नमस्कुर्वंतौ।' गोपालउत्तरचंपू, पृ॰ 149
13. 'किंतुत्कलिका कलितमनसोऽपि स्वस्वमर्यादा पर्यापिता लब्ध स्तंभारंभा:।' –गोपालपूर्वचंपू, पृ॰ 54
14. 'तदेवमात्मने रत्नाघमाने मुनिराजे श्री व्रजराज: स्वनियोज्यस्य कर्णे वर्णितवान् 'एवमेवं कुरू इति।'
    –गोपालपूर्वचंपू, पृ॰ 165
15. गोपालपूर्वचंपू, पृ॰ 124
16. 'भव्यानि काव्यानि तैरेव श्रामयामास।' –गोपालपूर्वचंपू, पृ॰ 74

गोविंद शर्मा के बालसाहित्य में जीवनमूल्यों की अभिव्यक्ति

नरेशकुमार
हिंदी व्याख्याता
जाहरवीर गोगा जी नेशनल कन्या महाविद्यालय
छानी बड़ी (भादरा)

जीवनमूल्यों के निर्माण का सबसे उचित समय बचपन है। बालमन कोरी स्लेट की भाँति होता है। उस पर जो कुछ लिख दो, वही हमेशा के लिए छप जाता है। हम कहें कि बच्चा ही बच्चे को अधिक समझता है, तो कुछ हद तक सही है, लेकिन जब कोई जवान या बूढ़ा आदमी बचपन को जीता है, तो बात विशिष्ट हो जाती है। जो साहित्यकार बच्चों में मूल्य-सर्जन के लिए लिखता है, उसका कार्य किन्हीं अर्थों में अधिक कठिन और कठिनाइयों से भरा होता है। एक बाल साहित्यकार का कार्य बच्चों के चरित्र का निर्माण करना होता है। साहित्यकार जहाँ-जहाँ मूल्यों का पतन देखता है, वहीं चोट करता है, किंतु बाल साहित्यकार चोट नहीं कर सकता। उसे निर्माण करना होता है। युवाओं और बालकों में हो रहा मूल्यों का पतन उसके लिए चुनौती है, यही उसके लिए प्रेरणा है।

गोविंद शर्मा की रचनाओं में जीवन-मूल्यों की अभिव्यक्ति मुख्यत: देखी जा सकती है। प्रत्येक समाज का यह कर्त्तव्य होता है कि वह अपने बच्चों को कुछ विशेष प्रकार का ज्ञान तथा कौशल प्रदान करे। साथ ही वह उनमें कुछ ऐसे गुण विकसित करे, जो उनको आदर्श नागरिक बनने में सहायता करे। जीवन-मूल्यों को जब सकारात्मक दृष्टिकोण से देखा जाता है तथा इसमें किसी विशेषण का प्रयोग नहीं करते है, तब जीवन-मूल्यों को अच्छाई का पर्याय माना जाता है।

जिस वस्तु की हमें अधिक आवश्यकता होती है, वह वस्तु हमारे लिए उतना ही मूल्य रखती है। इस रूप में जीवनमूल्य हमारी मूलभूत आवश्यकताओं से जुड़े रहते हैं, वे आवश्यकताएँ शारीरिक, मनोवैज्ञानिक और सामाजिक भी होती है। जब मूल्यों को सिर्फ शारीरिक आवश्यकताओं से जोड़ा जाता है, तो उन्हें भौतिक मूल्यों की संज्ञा दी जाती है तथा जब इनका संबंध मनोवैज्ञानिक तथा सामाजिक आवश्यकताओं की पूर्ति से होता है, तो इन जीवन-मूल्यों को सामाजिक, सांस्कृतिक, नैतिक तथा आध्यात्मिक मूल्यों की संज्ञा दी जाती है–'रजनी तैयार होकर अपने कमरे से निकली, सभी तरफ देखते हुए आदेशात्मक भाषा में बोली, 'मैं देवी माँ के मंदिर में प्रसाद चढ़ाने और पूजा करने जा रही हूँ। रसोईघर में रखे पकवान प्रसाद ही हैं। इन्हें मंदिर से वापस आकर बाँटूँगी। पहले कोई छूकर अपवित्र न करे।'[1]

वास्तव में मूल्यों का संबंध मानव-जीवन के उद्देश्य से है। मनुष्य अपने उद्देश्य की

पूर्ति के लिए विचारधारा का निर्माण करता है। यही विचारधारा जीवन मूल्य कहलाती है–'मम्मी, आपकी समस्या हल करने के लिए मैंने आपको यह कहानी सुनाई है। क्या हुआ आप मंदिर तक नहीं पहुँच सकीं तो! घर में आपकी माता यानी मेरी दादी तो हैं। बाल गणेश की तरह आप उन्हें पूजा अर्पित कर अपना व्रत पूरा क्यों नहीं कर लेतीं।'[2]

मनुष्य की व्यक्तिगत आवश्यकताओं का दायरा कहीं-न-कहीं दूसरों की आवश्यकताओं से जाकर टकराता है। इसी टकराव को रोकने के लिए सामाजिक नियमों, रिवाजों तथा मान्यताओं की आवश्यकता पड़ती है। समाज में किस कार्य को करने से समाज का हित है और किस कार्य को करने में समाज का हित नहीं है। समाज के नियमों का पालन करना, समाज में रहनेवाले लोगों के लिए अनिवार्य है–'इसी पंद्रह अगस्त की बात है। बारह वर्षीय योगी को घर में रहना पड़ा। स्वतंत्रता-दिवस समारोह में भाग लेने के लिए वह घर से बाहर न जा सका, क्योंकि किसी जरूरी काम से उसके माता-पिता, भाई-बहन दूसरे शहर चले गए थे। घर को सूना छोड़ने की बजाय उन्होंने योगी को दिनभर घर में ही रहने को कहा था। उसे स्कूल से भी छुट्टी दिलवा दी।'[3]

परंपरागत मूल्यों का संबंध प्राचीनकाल से चले आ रहे उन आदर्शों, सिद्धांतों तथा विश्वासों से है, जो बच्चे के जीवन में मार्गदर्शन करते आ रहे हैं। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि इन मूल्यों का आधार समाज की संस्कृति होती है। ये मार्गदर्शक सिद्धांत, आदर्श तथा विश्वास पीढ़ी-दर-पीढ़ी हस्तांतरित होते रहते हैं। इन्हें शाश्वत मूल्य भी कहा जाता है। इसका कारण यह है कि समाज में कितने भी परिवर्तन क्यों न हों, इन मूल्यों का महत्त्व कम नहीं होता–'रजनी को उसकी बेटी की बात ने सोचने पर मजबूर कर दिया। ठीक ही तो कह रही है यह। हम अपने जिन आदर्श व्यक्तियों और देवी-देवताओं की पूजा करते हैं, उनकी अच्छाइयों का अनुसरण भी तो करें। तभी हम भावी पीढ़ी को संस्कार और मूल्य सिखा सकेंगे।'[4]

समाज में कुछ मूल्य सार्वभौमिक व सार्वकालिक नहीं होते। प्रत्येक मानव-समाज में व्यक्तियों का ही निवास होता है, पशु-पक्षियों का नहीं। मनुष्य के अपने स्वभाव तथा आदर्श के अनुसार कुछ मानवीय मूल्य होते हैं, जो सार्वभौमिक व सार्वकालिक होते हैं। वास्तव में उन्हें मानवीय मूल्य कहते हैं। आधुनिक भारतीय समाज में जीवन-मूल्यों की बहुत आवश्यकता है। वर्तमान समय में संपूर्ण विश्व में सामाजिक, नैतिक एवं आध्यात्मिक मूल्यों का पतन हो रहा है। इसलिए बच्चों में उच्च आदर्श मूल्य स्थापित करके, उन्हें भविष्य में बेहतर नागरिक बनाया जाए।

इस प्रकार के मूल्य बालक की मनोवैज्ञानिक आवश्यकतओं से जुड़े रहते हैं। स्नेह की भूख, स्वतंत्र होने की इच्छा तथा संवेगों की अभिव्यक्ति की तलाश आदि ऐसी बातों को इस प्रकार के मूल्यों की आधारभूमि माना जा सकता है। यही मूल्य शरीर के ऊपर उठकर उसकी मानसिक तथा मनोवैज्ञानिक आवश्यकताओं की संतुष्टि में मानव की मदद करते हैं–'उस दिन बाँध की रखवाली पर कोई नहीं था। एक दस वर्ष का बालक था। वह शाम के समय बाँध की तरफ घूमने चला गया। उसने देखा, बाँध से पानी निकल रहा है। बाँध में एक छेद है। पानी उस छेद में से निकल रहा है। पहले छेद छोटा था। पानी निकलने से वह बड़ा होता जा रहा है। बालक ने बाँध की दीवार के छेद में अपनी उँगली डाल दी। पानी निकलना बंद हो गया।'[5]

जीवनमूल्य मानव-जाति को यह सिखाते हैं कि सभी मनुष्य आपस में भाई-भाई हैं। किसी भी एक व्यक्ति को धर्म, जाति, क्षेत्र या संस्कृति के आधार पर दूसरे लोगों से अलग नहीं

समझना चाहिए। भाईचारे की भावना इस मानव जाति की एकता में विश्वास करती है। आज हमारा लक्ष्य एक ऐसे समाज की स्थापना करना है, जिसे देखकर विदेशों के लोग भी हमारा अनुकरण करें।

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। सामाजिक प्राणी के रूप में जीवन बिताने के लिए उसे सामाजिक एवं नैतिक मूल्यों का निर्वाह करने की सख्त आवश्यकता है। इन मूल्यों की स्थापना के साथ ही समाज के सदस्यों द्वारा उन्हें ग्रहण करने और उनका अच्छी तरह निर्वाह करने से व्यक्तिगत तथा सामाजिक दोनों ही प्रकार के हितों का संपादन हो सकता है। समाज की व्यवस्था, उसका संगठन तथा उसकी उचित प्रगति के लिए ये मूल्य मजबूत आधार का कार्य करते हैं। प्रत्येक समाज में बालकों के इन मूल्यों के उचित विकास के लिए अच्छे प्रयत्न किए जाते हैं–'आरुणि की लगन देखकर गुरु प्रसन्न हो गए। गुरु ने आशीर्वाद दिया और कहा, 'तुम महान आज्ञापालक हो। तुम्हें शीघ्र ही चारों वेदों का ज्ञान प्राप्त होगा। तुम्हारा नाम सारे संसार में होगा।'[6]

वर्तमानयुग विज्ञान का युग है। ऐसे में प्राचीन रूढ़ियों, परंपराओं या अंधविश्वासों से चिपके रहना सामाजिक विकास के लिए उपयुक्त नहीं है। इसलिए स्वतंत्रता के बाद यह अनुभव किया गया कि लोगों के दृष्टिकोण को वैज्ञानिक बनाना बहुत आवश्यक है। वर्तमान में वैज्ञानिक दृष्टिकोण को एक सामाजिक मूल्य के रूप में स्वीकार किया गया है ताकि व्यक्ति अपनी प्राचीन मान्यताओं को छोड़कर प्रत्येक बात को वैज्ञानिक ढंग से सोच सके–'बच्चों की बात का अनुवाद सुनकर वैज्ञानिक महोदय पहले तो हैरान हुए, फिर उनका शर्म के मारे सिर झुक गया। बोले, 'बच्चो, मेरे देश ने तो ऐसी आरी की खोज की है, जो कुछ ही मिनटों में बड़े-से-बड़े पेड़ को काटकर गिरा देती है।'[7]

आज केवल राष्ट्रीय स्तर पर ही भ्रातृत्व की भावना का विकास करने के मूल्यों को स्वीकार नहीं किया जा सकता, बल्कि अंतरराष्ट्रीय स्तर पर नैतिक मूल्यों का विकास करने की जरूरत है। वर्तमान समय में कई ऐसे संवेदनशील स्थान हैं, जहाँ पर किसी भी समय छोटी-छोटी बातों को लेकर दो देशों के मध्य लड़ाई भड़क जाती है। इसलिए विश्वबंधुत्व को एक महत्त्वपूर्ण मानव मूल्य के रूप में मान्यता दी जा सकती है। अत: हमारा प्रयास है कि लोगों में विश्व परिवार की भावना का विकास हो, ताकि आवश्यकता पड़ने पर संसार के किसी भी कोने में रहने वाले लोगों की सहायता की जा सके–'चीन की विशाल दीवार का निर्माण भी इसी उद्देश्य से किया गया था। चीन की उत्तरी सीमा को बाहरी आक्रमण से सुरक्षित करने के लिए इस लंबी दीवार का निर्माण किया गया। दीवार की चौड़ाई भी बड़ी सड़क से कम नहीं है। इस पर रथ आदि दौड़ सकते हैं।'[8]

वर्तमान समय में छोटे परिवारों की स्थापना हो चुकी है। बच्चों को यह समझने की योग्यता प्रदान करनी चाहिए कि परिवार का आकार छोटा रखा जा सकता है। जनसंख्या की सीमा निर्धारित करने से राष्ट्र का जीवन उत्तम व सुविधाजनक बन सकता है और परिवार का छोटा होना परिवार के अन्य सदस्यों के जीवन स्तर में श्रेष्ठता प्रदान करता है। बच्चों के जीवन को सुलभ एवं आनंदपूर्ण बनाने के लिए जीवनमूल्यों की विशिष्ट आवश्यकता होती है। समय के बदलालव के साथ-साथ जीवन मुश्किल एवं जटिल होता जा रहा है। परिवार, समाज और राजनीतिक वातावरण प्रतिदिन बिगड़ता जा रहा है। बच्चों का जीवन भी तनावपूर्ण एवं जटिल होता जा रहा

है। इसलिए जीवन को सरल और आनंददायक बनाने के लिए इन मूल्यों की आवश्यकता इस प्रकार होती है–'वैसे बाल दिवस बहुत सालों से मनाया जा रहा है। हम जैसे बच्चों के लिए यह जन्मदिवस जैसा ही है। मिठाई, बधाई और उपहार मिलते हैं। हम गुड्डे की तरह सजे-धजे रहते हैं और आप लाड़-प्यार करते हैं।'[9]

कर्त्तव्य और सेवा-भावना भी हमारा नैतिक कर्त्तव्य और नैतिक मूल्य है। बच्चों में समानता की भावना उत्पन्न होती है। वे जाति, धर्म, भाषा, क्षेत्र तथा सामाजिक और आर्थिक असमानता के बंधनों से मुक्त रहते हैं। उन्हें यह आभास होने लगता है कि मनुष्य का जीवन एक-दूसरे व्यक्ति पर निर्भर है। कई बार बच्चा दूसरों के साथ मिलकर कार्य करता है, तो उसे सहयोग की आवश्यकता का अनुभव होता है–'अस्पताल में डॉक्टर, नर्स सब अच्छे थे। उसके मम्मी-पापा भी उसके पास रहते थे। उसके दोस्त भी उससे मिलने आते, पर उसका दिन अस्पताल में नहीं लग रहा था। उसे अपना घर, स्कूल, खेलने का खुला मैदान और पार्क की सैर सब याद आता। वह मन मसोसकर रह जाता।'[10]

धर्म-निरपेक्षता स्वतंत्रता का मुख्य सामाजिक मूल्य है। इसका तात्पर्य है कि सभी बच्चों को अपने धर्मानुसार आचरण करने की स्वतंत्रता होगी, परंतु इस बात का ध्यान रखना होगा कि बच्चों को धार्मिक विश्वास और आदर्श दूसरों के सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक जीवन में किसी भी प्रकार से बाधक नहीं होना चाहिए–'पहले इसके किनारे पक्के बनवाऊँगा। उसमें कूड़ा डालना बंद करूँगा और इसमें जो कूड़ा और पोलिथिन पड़ा है। वह सब साफ करवा दूँगा। अगले साल तक इसे पूरा पक्का बनवा दूँगा। उससे अगले साल इस पर छत्र बनवाकर इसे खुले जोहड़ से कुंड बना दूँगा। इसका पानी पशुओं के लिए, घर के पास की क्यारियों की सिंचाई और सफाई करने में इस्तेमाल करूँगा।'[11]

संदर्भ

1. गोविंद शर्मा, हीरा मिल गया, पृ॰ 88
2. वही, पृ॰ 90
3. गोविंद शर्मा, मेहनत का मंत्र, पृ॰ 11
4. गोविंद शर्मा, हीरा मिल गया, पृ॰ 91
5. गोविंद शर्मा, समझदारी से दोस्ती, पृ॰ 5
6. वही, पृ॰ 8
7. गोविंद शर्मा, मेहनत का मंत्र, पृ॰ 57
8. गोविंद शर्मा, विश्व के सात आश्चर्य, पृ॰ 18
9. गोविंद शर्मा, नया बाल दिवस, पृ॰ 63
10. गोविंद शर्मा, मुकदमा हवा-पानी का, पृ॰ 19
11. गोविंद शर्मा, समझदारी से दोस्ती, पृ॰ 27

सुपुत्र श्री सीताराम
ग्राम व डाकघर–सीसवाल
तहसील–मंडी आदमपुर (हिसार) हरि॰ 125052
मो॰ 09992507532

उपनिषदीय ज्ञान : एक तात्त्विक विवेचन

महेशकुमार (शोधछात्र-संस्कृत)
एन०एम०एस०एन० दास स्नातकोत्तर
महाविद्यालय, बदायूँ (उ०प्र०)

संस्कृत वाङ्मय विश्व का अतिसमृद्ध एवं प्राचीनतम साहित्य है। भारतीय दर्शन में सर्वप्रथम प्रादुर्भूत होने वाले वेद साक्षात् ज्ञान-स्वरूप हैं। ज्ञान-विज्ञान की यह उज्ज्वल और उत्कृष्ट परंपरा ब्राह्मण और आरण्यक साहित्य से होती हुई उपनिषदों में सुरक्षित है। वेदों के अंतिम भाग होने के कारण इन्हें वेदांत भी कहा जाता है। यह ज्ञान के आदिस्रोत एवं ब्रह्मविद्या के अक्षय भंडार हैं। उपनिषद् हिंदुओं के ऐसे धर्मग्रंथ हैं, जिनमें विश्व के सभी धर्मग्रंथों की अपेक्षा अधिक वैज्ञानिक भावना दृष्टिगोचर होती है। ये देशकाल-वातावरण की सीमा से परिछिन्न चिरंतन महर्षियों की महामेधा से प्रसूत ज्ञान की वह अमूल्य राशि है जो सार्वभौम, सार्वकालिक, सार्वदेशिक एवं सर्वजन हितकारी है।

साधारणतया जानना, समझना, अनुभव करना ज्ञान कहलाता है, जो मानने या विश्वास से भिन्न होता है। दार्शनिक दृष्टि से विचार करने पर ज्ञान की समस्या और भी जटिल हो जाती है। उपनिषद् ज्ञान के अमूल्य स्रोत हैं। यह ज्ञान गुरु-शिष्य-परंपरा से आज भी संरक्षित है। इस ज्ञान-परंपरा से लाभान्वित गुरु-शिष्य-परंपरा की सूची बृहदारण्यक उपनिषद् में प्राप्त होती है, जिसमें प्रथम गुरु स्वयंभू ब्रह्म ने परमेष्ठी ब्रह्म को ज्ञान दिया। इसमें अट्ठावन गुरु-शिष्य परंपरा का वर्णन प्राप्त होता है।[1] आत्मकल्याण मार्ग के पथिक को अपनी भावनाओं का निर्णय किस प्रकार करना चाहिए एवं जीवन की गतिविधियों का कार्यक्रम किस तरह निर्धारित करना चाहिए, इसका प्रतिपादन विचारात्मक उपनिषदों में भली-भाँति किया गया है।

उपनिषदों में ज्ञान को ही परमतत्त्व माना गया है। उपनिषदों में ब्रह्म के स्वरूप-निरूपण में उसे सत्य, ज्ञान और अनंत कहा गया है। उपनिषदों का यह ज्ञान चिर प्रदीप्त वह दीपक है, जो सृष्टि के आदि से लेकर आज तक प्रकाश कर रहा है और लयपर्यंत पूर्ववत् प्रकाशित रहेगा। ब्रह्म जानने योग्य है क्योंकि 'ज्ञात्वा देवं सर्वपाशापहानिः क्षीणैः क्लेशैर्जन्ममृत्युप्रहणिः'[2] अर्थात् परमात्मदेव को जानकर संपूर्ण बंधन कट जाते हैं तथा क्लेशों के क्षीण होने पर जन्म और मृत्यु से छुटकारा मिल जाता है।

ज्ञान स्वतः प्रमाण है परतः प्रमाण नहीं है। अभिप्राय यह है कि किसी पदार्थ का यथार्थ निश्चय करने में ज्ञान ही अंतिम निर्णायक होगा। मनुष्य की गुणशीलता ज्ञान पर अवलंबित है। ज्ञानस्वरूप ब्रह्म अनिर्वचनीय है। सत्य, अहिंसा, ध्यान, उपासना आदि ज्ञान के ही साधन हैं। चित्त की वृत्तियों को सर्वथा रोक देना ही आत्म-ज्ञान विधि है तथा इसके लिए विवेक-जागरण एकमात्र

उपाय है। ज्ञान होने से संसार लुप्त नहीं, बल्कि आनंदमय प्रतीत होने लगता है। कठोपनिषद् में तत्त्वज्ञान के मार्ग को छुरे की तीक्ष्ण एवं दुस्तर धारा के सदृश दुर्गम बताया गया है।[3] बृहदारण्यकोपनिषद् में भी ज्ञानमार्ग को कठिन एवं उसकी दुर्विज्ञेयता बताते हुए उपनिषत्कार कहते हैं–'यह ज्ञानमार्ग सूक्ष्म, विस्तीर्ण और नित्य श्रुति द्वारा प्रकाशित होने के कारण पुरातन है। यह ब्रह्मविद्या रूप मोक्ष-मार्ग प्राप्त होने के कारण मुझे स्पर्श किए हुए है और मैंने ही उसका फल-साधक ज्ञान प्राप्त किया है।[4] सत्-पुरुषों के साथ शास्त्रचिंतन करने पर जिसका अभिमान दूर हो गया है, उसे तत्त्व का ज्ञान हो जाने से सर्वव्यापक आत्मा का स्वरूप विदित हो जाता है। यह महान् आत्मा जन्म, बुढापा, मृत्यु और भय से रहित है। ब्रह्म अभय है, निश्चय ब्रह्म अभय है। जो इस प्रकार जानता है वह निश्चय ही ब्रह्म हो जाता है।

जिसकी बुद्धि में ज्ञान उत्पन्न नहीं हुआ है तथा जिसकी परमात्मतत्त्व में दृढ़स्थिति नहीं है, उसके लिए यह जगत् असत् होते हुए भी सत्-सा प्रतीत होता है। यदि इस शरीर ने परमब्रह्म को जान लिया तो वह बहुत कुशल है, यदि इस शरीर के रहते उसे नहीं जान पाया तो महाविनाश है। यही सोचकर बुद्धिमान् पुरुष प्राणी में परब्रह्म परमेश्वर को समझकर इस लोक से प्रयाण करके अमरता प्राप्त कर जाते हैं।[5] जिसका यह मानना है कि ब्रह्म जानने में नहीं आता या उसका जाना हुआ है और जिसका यह मानना है कि ब्रह्म मेरा जाना हुआ है तो वह यह नहीं जानता कि ब्रह्म को जानने का अभिमान रखने वालों के लिए विना जाना हुआ है, जिसमें ज्ञातापन का अभिमान नहीं, उसका ब्रह्मत्व जाना हुआ है, अर्थात् उनके लिए अपरोक्ष है। कठोपनिषद् में बताया गया है कि ज्ञानी लोग ही श्रेय और प्रेय में अंतर करके श्रेय मार्ग का ही वरण करते हैं और मूर्ख लोग केवल प्रेय के जाल में फँसकर नष्ट हो जाते हैं।[6] इसी उपनिषद् में कहा गया है कि ज्ञानी मनुष्य शरीरों में स्थित इस अशरीर आत्मा का, नश्वर में स्थित इस अनश्वर तत्त्व का अनुभव करके शोक त्याग देता है।[7] भ्रम के जाल से छूटने के लिए केवल ज्ञान प्राप्त कर ही लेना पर्याप्त नहीं है, बल्कि जीवन में श्रद्धा और अनुशासन भी आवश्यक है। भ्रम अज्ञान से इतना उत्पन्न नहीं होता, जितना कि आसक्तियों से उत्पन्न होता है। ज्ञान अनासक्ति से उत्पन्न होता है, केवल विद्वता से नहीं। इसी विषय में कहा गया है कि जब हृदय की ग्रंथियाँ खुल जाती हैं और मनुष्य आसक्तियों से रहित हो जाता है तभी वह अमृतत्त्व प्राप्त करता है।[8]

मुण्डकोपनिषद् में ज्ञान की दो श्रेणियाँ (परा और अपरा विद्या) निर्दिष्ट की गई हैं। जिसमें परा विद्या के अंतर्गत चारों वेद एवं उनके छः अंग आते हैं। परा विद्या वह विद्या है, जिससे अक्षरब्रह्म का बोध होता है।[9] बृहदारण्यकोपनिषद् में इसे ब्रह्मविद्या कहा गया है, क्योंकि इससे ब्रह्म की प्राप्ति होती है।[10] ईशावास्योपनिषद् में अपरा विद्या को 'अविद्या' तथा परा विद्या को 'विद्या' कहा गया है।[11] ब्रह्मविद्या सर्वसाधारण के लिए गम्य नहीं है। अतएव इसके अधिकारी स्वल्प ही हैं। ब्रह्मविद्या को जानने के लिए श्रद्धा आदि की परम आवश्यकता होती है। छांदोग्योपनिषद् में इसी ब्रह्म विद्या को 'ब्रह्मोपनिषद्' भी कहा गया है।[12] इसी उपनिषद् में बारह ब्रह्मविद्याओं का वर्णन प्राप्त होता है। इसके विपरीत कहीं-कहीं पर इसमें पंद्रह ब्रह्मविद्याओं का उल्लेख हुआ है। समन्वयात्मक दृष्टिपात करने पर उपनिषदों में बत्तीस विद्याओं का विवेचन प्राप्त होता है।[13] जो कुछ यह जंगम जीव समुदाय है, जो पक्षी हैं, जो यह स्थावर जगत् है, वह प्रज्ञा नेत्र है, अर्थात प्रज्ञा में दृष्टाट होता है, प्रज्ञान में ही प्रतिष्ठित है। लोक प्रज्ञानेत्र हैं, प्रज्ञा ही उसकी प्रतिष्ठा है। प्रज्ञान

ही ब्रह्म है।[14]

उपनिषद् सद्गुरुओं से प्राप्त करने की वस्तु हैं। वैसे तो स्वेच्छया ग्रंथ रूप उपनिषदों का कोई भी अध्ययन कर सकता है किंतु इस प्रकार से किसी को ब्रह्मविद्या की प्राप्ति नहीं हो सकती। अनधिकारी के साधन-संपत्तिहीन वासनावासित अंत:करण में ब्रह्मविद्या का प्रकाश होना संभव नहीं है। आत्मा के एकत्व का प्रतिपादन, भेद को औपाधिक बताना, जीवात्मा और परमात्मा में भी वास्तविक भेद का अभाव बताना, आत्मा की अखंड चिदानंद रसरूपता का अनुभव एवं ज्ञान कराना समस्त उपनिषदों का प्रतिपाद्य है। आचार्य शंकर ने भी अपने भाष्य में इसी अभिप्राय को अभिव्यक्त किया है।[15] प्रश्नोपनिषद् में कहा गया है कि जो निश्चयपूर्वक उस तमोविहीन, शरीर रहित, लोहितादि गुणों से शून्य, शुद्ध एवं अविनाशी पुरुष (आत्मा) को जानता है वह उस परम अक्षर ब्रह्म को ही प्राप्त होता है। वह सर्वज्ञ और सर्वरूप हो जाता है। इसी उपनिषद् में बताया गया है कि जो ज्ञानी इस रहस्य को जानता है उसका वंश कभी नष्ट नहीं होता और वह अमृतत्व को प्राप्त कर लेता है। जो मनुष्य प्राण की संभूति, स्थिति और व्यापकता को जान लेता है तथा उसके आध्यात्मिक भेदों का ज्ञान प्राप्त करता है उसे अवश्य ही मोक्ष की प्राप्ति होती है।[16] उपनिषदों का मुख्य प्रतिपाद्य ब्रह्म और प्रयोजन ब्रह्म ज्ञान है, जिससे ब्रह्मप्राप्ति रूप मोक्ष मिलता है। ज्ञान शब्द ज्ञानेतरव्यावृत्त ब्रह्म का बोधक है, अर्थात् ब्रह्म अज्ञानरूप नहीं है, अर्थात् सर्वविषयक ज्ञान को आत्मा कहा जाए तो भी कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए, क्योंकि प्रत्येक सर्वज्ञ इसलिए नहीं हो सकेगा क्योंकि वह उपाधि परिछिन्न है एवं ज्ञान के साधन जो कि अंत:करणवृत्त्यादिक हैं वे सन्निहित नहीं होते। जिस विषय के लिए सामग्री होती है उस विषय में ज्ञान अवश्य ही होता है। नि:शेषतया आत्मतत्त्व के समीप पहुँचा देने वाली विद्या, इस अर्थ में उपनिषद् यथार्थ हैं। अज्ञ लोग कामनाओं के पीछे दौड़ते रहते हैं। वे मृत्यु के विस्तीर्ण पाश में बँधे हुए हैं। जो धैर्यशाली लोग हैं, विद्वान् हैं, वे अमृतात्मा को जानकार अध्रुव पदार्थों की कामना नहीं करते।[17] इस वाक्य में ज्ञानवान् जीवात्माओं के लिए 'धीरा:' शब्द का प्रयोग किया गया है। इससे जीवात्माओं की अनेकता सिद्ध होती है। शरीर के मध्यभाग हृदयाकाश में रहने वाला पुरुष भूत-भव्य का शासक है तथा उसे जान लेने के बाद मनुष्य जुगुप्सा नहीं करता है।[18]

धर्म का ज्ञान तर्कबुद्धि से नहीं होता है। ऋषियों की वाणियों में भी कभी-कभी असंगति रहती है। वास्तव में वही सर्वश्रेष्ठ आत्म-ज्ञानी है, जिसे आध्यात्मिक ज्ञान है उसे ही धर्म का ज्ञान है। उपनिषद् ज्ञान की अतिव्यापक विचारधारा के अनुसार संसार में ब्रह्म के व्यतिरिक्त कुछ भी नहीं है। जीव भी ब्रह्मस्वरूप है।[19] ब्रह्मोपनिषद् में बताया गया है कि गुह्यतम परमतत्त्व के ज्ञान को प्रयत्नपूर्वक ग्रहण करना चाहिए। यह विद्या गुरु भक्ति और उनकी सेवा में लगे रहने वालों की ही देनी चाहिए।[20]

उपनिषदों के तत्त्वज्ञान के अंतर्गत आचार-व्यवहार, कर्त्तव्य, नीति आदि से संबंधित नैतिक बातें भरी पड़ी हैं। स्वतंत्र रूप से उनके मंथन करने की आवश्यकता है। विषयों में लगा हुआ मन बंधन का कारण होता है और विषयरहित मन मुक्ति के लिए होता है। इसलिए समस्त जगत् चित्त का ही विषय है। इस मन का जिसमें विलय होता है, वही विष्णु का परमपद है। इसमें मन का लय होने से शुद्ध अद्वैत तत्त्व की सिद्धि होती है, क्योंकि उसके पश्चात् कोई भेद नहीं रहता। यही परमतत्त्व है। कौषीतकीब्राह्मणोपनिषद् में बताया गया है कि ज्ञानी व्यक्ति अपने पुण्य

और पापों को त्यागकर मानसिक संकल्प से युक्त विरजा नदी को पार कर लेता है। जो उस ज्ञानी से द्वेष रखते हैं, उन्हें उसके त्यागे हुए पापांश की प्राप्ति होती है, परंतु उससे प्रेम रखने वाले कुटुंबी आदि उसके पुण्यांश के भागी होते हैं। ऐसे ब्रह्मज्ञानी को पाप-पुण्य व्याप्त नहीं कर पाते हैं। अत: ब्रह्मज्ञान के कारण वह ब्रह्म को प्राप्त हो जाता है।[21] इसी उपनिषद् में क्रियाशक्ति का बोध कराने वाले प्राण को ज्ञान में प्रवृत्त कराने वाला प्रज्ञात्मा कहा जाता है। अत: प्राण ही प्रज्ञा है, प्रज्ञा ही प्राण है, प्रज्ञा ही देह में एक साथ निवास करती है और एक साथ इसका उत्क्रमण होता है।[22]

उपनिषद आडंबरों आदि में विश्वास नहीं करते हैं। उपनिषत्कार कहते हैं–'कल्याण रूप परमेश्वर इस देह में ही विद्यमान है। उसे न जानने वाला मूर्ख, तीर्थ, दान, जप, यज्ञ, काष्ठ और पाषाण में ही परमात्मा को खोजता है।'[23] राजा बृहद्रथ ने ज्ञान प्राप्ति के लिए वैराग्य धाारण कर लिया, क्योंकि यह शरीर नश्वर है। बृहद्रथ शाकायंत मुनि से ज्ञान के विषय में कहते हैं–'हे भगवन्! मैथुन से उत्पन्न हुआ यह शरीर यदि ज्ञान रहित हो तो इसे नरक समझना चाहिए, क्योंकि यह मूत्र के द्वार से निकलता है, हड्डियों से बना है, मांस से लीपा गया है, चमड़े से मढ़ा गया है और विष्ठा, मूत्र-वात-पित्त-कफ मज्जा, मेद (चरबी) और अन्य कई तरह के मलों से भरा हुआ है। ऐसे शरीर में रहने वाले मुझको आप शरण दो।'[24] इसी उपनिषद् में तप द्वारा ज्ञान प्राप्त होने की बात कही गई है। ज्ञान के होने से मन वश में होता है, मन वश में होने पर आत्मा की प्राप्ति होती है और आत्मा के मिल जाने पर संसार से छुटकारा मिल जाता है।[25] संन्यासोपनिषद् में कहा गया है कि–'जिसको सम्यक् ज्ञान प्राप्त हुआ है, जिसने बुरे-भले का ध्यान छोड़ दिया है, जिसने चित्त को चित्त में ही संलग्न कर दिया है उसका जीवन शोभायमान है।'[26] नारदपरिव्राजकोपनिषद् में परब्रह्म को सर्वात्मा मानने वाले ज्ञानी पुरुष को मृत्यु को जीतने वाला कहा गया है। अत: परमात्मा का ज्ञान, मोक्ष प्राप्त करने का मार्ग है।[27] परमात्मा की प्राप्ति के मूल साधन तप और आत्म-ज्ञान को माना गया है। आत्म-ज्ञानी को शोक और मोह का अवकाश नहीं होता है।[28] जब ज्ञान द्वारा देहाभिमान नष्ट हो जाता है तब बुद्धिमान् पुरुष ज्ञानरूपी अग्नि से कर्म-बंधनों को भस्मीभूत कर देता है।[29] इसी प्रकार का भाव केवल्योपनिषद् इस प्रकार व्यक्त हुआ है–'ज्ञानी लोग अंत:करणों को नीचे की अरणि बनाते हैं और प्रणव को ऊपर की ओर इन दोनों के मंथन का अभ्यास करते हैं, इससे जो ज्ञानाग्नि उत्पन्न होती है उसमें अपने समस्त दोषों को जलाकर संसार के बंधन से मुक्त हो जाते हैं।'[30] ज्ञानी कहीं भी और कैसे भी देह-त्याग करे, वह ब्रह्म में ही मिल जाता है, क्योंकि जैसे आकाश सर्वत्र है वैसे ही ब्रह्म सर्वव्यापी है।[31]

ज्ञान की विशालता के विषय में कहा गया है कि समस्त ज्ञान और श्रेय का एक हजार वर्ष तक शास्त्रों के अध्ययन करने के उपरांत भी अंत नहीं हो सकता। इसलिए मनुष्य को केवल एक अक्षर ब्रह्म को ही सत्य मानकर शास्त्रों के जाल में फँसे बिना सत्य की उपासना करनी चाहिए।[32] 'अज्ञान से ही संसार है और ज्ञान द्वारा ही इससे निवृत्ति मिल सकती है। जिससे अपने स्वरूप का ज्ञान हो एवं केवल्य, परमपद, निर्विकल्प, निर्मल, उत्पत्ति, स्थिति, संहार हो, वही वास्तविक ज्ञान है'[33]आत्मप्रबोधोपनिषद् में ज्ञान की तुलना दीपक की ज्योति से की गई है। जैसे दीपक की छोटी-सी ज्योति गहन अंधकार का नाश कर देती है वैसे ही थोड़ा-सा ज्ञान भी निविड अंधकार रूप अज्ञान का नाश कर देता है।[34] आत्मोपनिषद् में विद्वान् का लक्षण बताते हुए ऋषि कहते हैं–'विद्वान् पुरुष ममताहीन, अहंकाररहित होकर सुखी जीवन व्यतीत किया करता है। वह

ब्रह्म में सभी इच्छाओं से मुक्त एकांतावली में मुनि रूप में विचरण करता है।'[35]

पञ्चब्रह्मोपनिषद् में पञ्चब्रह्म के ज्ञान से सभी वस्तुओं का ज्ञान होना बताया गया है। शाट्यायनीयोपनिषद् में मन को ही मनुष्यों के बंधन और मोक्ष का कारण माना गया है। तत्त्वदर्शी विवेकी ब्राह्मण सर्वज्ञ और सर्वांतरयामी वासुदेव को अपने स्वरूप में ही जानता हुआ जीवन्मुक्त हो जाता है।[36] परमहंसपरिव्राजकोपनिषद् में परमहंस संन्यासी के लिए जो ज्ञान दिया गया है वह सर्वोत्कृष्ट है, जिससे वह स्वयं को जानकर ब्रह्म का साक्षात्कार करने में समर्थ हो सके। मुंडकोपनिषद् में बताया गया है कि परमात्मा को श्रेष्ठ अंत:करण वाला ज्ञानी ही ज्ञान के प्रसाद से ध्यान द्वारा देख सकता है।[37] इसी उपनिषद् में एक स्थान पर उपनिषत्कार कहते हैं–'जो वेदांत ज्ञान द्वारा परमेश्वर को जान चुके हैं, ऐसे साधक शरीर त्यागकर ब्रह्मलोक को प्राप्त होते हैं। वे वहाँ परम अमृतत्त्व का लाभ पाकर जीवन्मुक्त हो जाते हैं।[38]

उपनिषत्कालीन ऋषि ज्ञान को अत्यंत महत्त्व देते थे। वे विद्या की खोज में संलग्न रहते थे। छांदोग्योपनिषद् में आरुणि का प्रश्नों में उचित समाधान के लिए राजा जैबलि प्रबाहण के पास आना उसके ज्ञान-पिपासु होने का प्रबल संकेत है।[39] ज्ञान कभी पूर्ण नहीं होता है। व्यक्ति जन्म से लेकर मृत्युपर्यंत कुछ-न-कुछ ज्ञान अवश्य ही प्राप्त करता रहता है। ज्ञान प्राप्ति के अनंतर अहंकार नहीं करना चाहिए, क्योंकि अहंकार संपूर्ण प्राप्त ज्ञान को नष्ट कर देता है। जिस प्रकार उद्दालक का पुत्र श्वेतकेतु चौबीस वर्ष की आयु तक आचार्य के पास अध्ययन करके गर्वीला हो गया और पिता द्वारा प्रश्न पूछे जाने पर उत्तर न दे सका।[40] अक्ष्युपनिषद् में भगवान् सूर्यदेव द्वारा दुर्लभ तत्त्वज्ञान सांकृति मुनि को दिया गया। यह ज्ञान जीवन्मुक्त करने वाला था।[41] जीवात्मा तथा ब्रह्म का भेद और ब्रह्म तथा सृष्टि का भेद बुद्धि द्वारा जो कभी नहीं जान पाता, वह जीवन्मुक्त कहलाता है। सज्जनों द्वारा सम्मानित होने पर और दुर्जनों द्वारा पीड़ित किए जाने पर जिसका समभाव रहता है वह जीवन्मुक्त कहा जाता है।[42] सर्वसारोपनिषद् में ऋषि कहते हैं–'आत्मा ही ईश्वर और जीव-रूप है, फिर भी जो आत्मा नहीं है ऐसे शरीर में जीव को अहंभाव हो जाता है, वही जीव का बंधन है। इस अहंभाव का निकल जाना ही मोक्ष है। अविद्या से अहंभाव उत्पन्न होता है और विद्या अहंभाव को नष्ट कर देती है।[43]

ज्ञान के साथ धर्म का रहना भी आवश्यक है। यदि ब्रह्मज्ञान के जिज्ञासु में आचरण और धार्मिकता नहीं तो उसे प्रवेश नहीं मिल सकता, चाहे उसके हृदय में कितना ही उत्साह एवं प्रबल जिज्ञासा का भाव ही क्यों न हो। उपनिषदों में यह स्थान-स्थान पर यह द्रष्टव्य है कि ब्रह्मज्ञानी ऋषियों का शिष्य बनने के लिए कई लोगों को दीर्घ नैतिक एवं धार्मिक नियंत्रण में रहकर जीवन व्यतीत करना पड़ा। प्रश्नोपानिषद् में पिप्पलाद ऋषि ने छ: जिज्ञासुओं को एक वर्ष तक नियंत्रण में रहने का आदेश दिया। छांदोग्योपनिषद् में सत्यकाम जाबाल को वन में पशुओं को चराने के लिए भेजने का अभिप्राय उसकी एकांत चिंतनशक्ति को बढ़ाना तथा प्रकृति का निकट से निरीक्षण कराना था। जैसे-जैसे हम प्रकृति से दूर होते चले जा रहे हैं, वैसे-वैसे हम अनेक समस्याओं और चिंताओं में उलझते चले जा रहे हैं, जबकि संपूर्ण समस्याओं का हल प्रकृति में ही मौजूद है। इन सभी का ज्ञान हमको उपनिषदों से ही तो प्राप्त होता है। अमृतनादोपनिषद् में ज्ञानी पुरुष का कर्त्तव्य बताते हुए उपनिषत्कार कहते हैं–'ज्ञानी पुरुष का कर्त्तव्य है कि वह विद्युत् की चमक के समान इस क्षण-स्थायी जीवन को व्यर्थ नष्ट न होने दे। शास्त्रों के अध्ययन और उनके अभ्यास द्वारा

विद्या की प्राप्ति हो सकती है।[44] भेद का दिखायी देना अविद्या है, इसलिए भेद-दृष्टि का त्याग करना ही श्रेयस्कर कहा गया है।

जब तक मनुष्य को विषय-वासनाओं का भान एवं उसमें निहित दोषों का ज्ञान नहीं होता तब तक वह उसी में फँसा रहता है। इसी विषय-वासना रूपी जाल से बाहर निकलने के संबंध में ऋषि कहते हैं–'हे पुत्र! इस माया को ज्ञानरूपी तीक्ष्ण अस्त्र से काटकर अपने व्यापक रूप में उसी प्रकार स्थित हो जाओ जिस प्रकार बबंडर मेघों के जाल को काट डालता है।'[45] ज्ञानी लोग काम को आत्मा के लिए पाश (बंधन-स्वरूप) समझते हैं एवं सामान्यजन इसी मोह माया (काम भावना) के बंधन में फँसे रहते हैं। उपनिषदों में वैराग्य, भक्ति एवं ज्ञान से ईश्वर दर्शन होने की बात कही गई है।

उपनिषदों को विश्व का सर्वश्रेष्ठ ज्ञान माना गया है। इस ज्ञान के द्वारा मनुष्य आत्मिक, मानसिक और सामाजिक गुत्थियों को सरलतम ढंग से सुलझा लेता है। इसी ज्ञान की शरण में आने पर मनुष्य सांसारिक दु:खों और चिंताओं से घिरा होने के समय अपने हृदय में अनंत शक्ति और सहारे का अनुभव करता है। विवेकशील पुरुष अपनी भौतिक कामनाओं पर नियंत्रण कर लेते हैं एवं अपनी कर्त्तव्यभावना से प्रेरित होकर कर्म करते हैं। ज्ञानी पुरुष अपनी निर्मल अंतश्चेतना से प्रेरणा लेकर या अंत:स्फूर्त होकर श्रेष्ठ कर्म करते हैं। ज्ञानी के लिए अपने अंदर अद्वैत और आनंद में रहकर भी लोक में द्वैत का व्यवहार करना संभव होता है। ज्ञान होने पर अज्ञान-अवस्था (मूर्च्छा) के पूर्वकृत पाप विगलित हो जाते हैं तथा चित्त निर्मल हो जाता है। ज्ञान से बंधन-मुक्ति होने पर परमात्मा की अनुभूति हो जाती है। मनुष्य जीवन्मुक्त होकर भी लोकव्यवहार कर सकता है। छांदोग्योपनिषद् में कहा गया है कि जिस प्रकार एक मृत्पिण्ड को जाने लेने से समस्त मिट्टी से बने पदार्थों का ज्ञान हो जाता है, क्योंकि मिट्टी ही सत्य है। उसका परिणाम तो केवल वचन मात्र है।[46] उसी प्रकार एक ब्रह्म को जान लेने पर ब्रह्म से विवर्त रूप में आविर्भूत समस्त पदार्थों का ज्ञान हो जाता है। इस दृष्टांत से आचार्य शंकर ने समस्त प्रपंच का कारण ब्रह्म को माना है। उसी के ज्ञान से सबका ज्ञान हो सकता है। ज्ञान का वर्णन करते हुए ब्रह्मोपनिषद् में कहा गया है कि जो ज्ञान रूप शिखा वाले, ज्ञान में ही निष्ठा रखने वाले एवं ज्ञान रूप यज्ञोपवीत धारण करने वाले हैं, ज्ञान उनको परम-पवित्र बना देता है। ईश्वर जो कि एक सामान्य मनुष्य की इंद्रियों से परे है, उस आनंदस्वरूप को जानकर ज्ञानी पुरुष मुक्त हो जाते हैं।[47] परम-अक्षर तत्त्व को जानने वाला सदैव ज्ञानी होता है।[48]

योग सभी प्रकार की सिद्धियों को प्रदान करने वाला कहा गया है, लेकिन योग से मोक्ष की निवृत्ति नहीं हो सकती, इसलिए मोक्ष के अभिलाषी को ज्ञान और योग दोनों का अभ्यास करना चाहिए। योगतत्त्वोपनिषद् में रुपया, स्त्री, लोलुपता को विघ्नस्वरूप एवं त्याज्य कहा गया है। बुद्धिमान् साधक को इससे दूर रहने का संकेत किया गया है।[49]

ब्रह्म को अचिंत्य, सत्य, ज्ञान और आनंदस्वरूप कहा गया है। संसार अज्ञान, माया और गुह्य रूप हैं। इन सबमें ब्रह्म व्याप्त है। वह ब्रह्म अपने परम-व्योम नामक नित्यधाम में विराजमान है। वह विद्या (ज्ञान) के द्वारा ही जाना जा सकता है। जो इस ब्रह्म को जान लेता है उसकी सभी कामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं और वह ज्ञानी एवं ब्रह्ममय हो जाता है।[50]

मुक्तिकोपनिषद् में एक सौ आठ उपनिषदों का ज्ञान मनुष्य के आधिदैविक, आधिभौतिक

और आध्यात्मिक तापों को नष्ट करने वाला है। कौषीतकिब्राह्मणोपनिषद् में प्राण को क्रियाशक्ति का बोध कराने एवं ज्ञान में प्रवृत्त कराने वाला प्रज्ञात्मा कहा गया है।[51] छांदोग्योपनिषद् में कहा गया है कि ज्ञान जब तक वाणी में नहीं आता, तब तक अस्पष्ट रहता है, जब वह वाणी-रूप हो जाता है, तब हम ज्ञान को वाणी के रूप में प्रकट कर देते हैं और तब उसकी सुरक्षा भी हो जाती है, अतः वाणी ज्ञान-रूप होकर मनुष्य की रक्षा करती है।[52]

अज्ञान ज्ञान से नष्ट होता है, कर्मों से नहीं। मुक्ति कोई निमित्त वस्तु नहीं है वह अभिमान का परिणाम है। ज्ञान हमें उस स्थिति पर ले जाता है जहाँ कामना शांत हो जाती है, जहाँ सभी कामनाएँ पूर्ण हो जाती है, वहाँ आत्मा ही अकेली कामना होती है। बौद्धिक ज्ञान द्वारा 'अविद्या' का पर्दा जब हटा दिया जाता है तब प्रबुद्ध आत्मा का पर्याप्त प्रकाश पड़ता है और सर्वव्यापी आत्मा के दर्शन होने लगते हैं तथा आत्मा के प्रत्येक जीवन की स्थिति उसके पूर्व के जीवन के ज्ञान (विद्या) और कर्म द्वारा प्रतिबद्ध और निर्धारित होती है। बृहदारण्यक उपनिषद् में बताया गया है कि सभी अवयव प्रयाण करती आत्मा के साथ होते हैं, जो संज्ञान में प्रवेश करती है और ज्ञान तथा चेतना विज्ञान से युक्त हो जाती है।[53]

उपर्युक्त औपनिषदिक ज्ञान के विवेचन से स्पष्ट है कि उपनिषदों में ज्ञान की प्रधानता है, क्योंकि उपनिषदों में सर्वत्र ज्ञान का ही प्रतिपादन किया गया है। ब्रह्मज्ञान को उपनिषदों का मुख्य प्रयोजन माना गया है। ज्ञान के बिना किसी भी कार्य की सिद्धि होना असंभव है। श्रेय या श्रेयत्व के ज्ञानैकगम्यत्व का कारण निश्चित होने के कारण, श्रेय से होकर ज्ञान की ओर जाने का कोई मार्ग नहीं। ज्ञान पर ही श्रेय अवलंबित है और ज्ञान मुख्यतः ज्ञाता की योग्यता पर निर्भर करता है। इस कारण उपनिषदों में विवेक, वैराग्य शम, दम, तितिक्षा, उपरति, श्रद्धा, समाधान, मुमुक्षता ये साधन-संपत्तियाँ ज्ञाता में लाने के लिए बतायी गयी हैं। वास्तविक ज्ञान स्थिर बुद्धि और उसका निदर्शन है, जिसे पाकर मनुष्य अज्ञान रूपी अंधकार से प्रकाश की ओर, मृत्यु से अमृत की ओर, असत्य से सत्य की ओर उन्मुख होता हैं। सच्चे ज्ञान में न तो असंतोष होता है और न ही लोभजन्य आवश्यकताएँ, इसलिए उपनिषदों में भौतिक ज्ञान को वास्तविक ज्ञान न मानकर विशुद्ध आध्यात्मिक ज्ञान को सच्चा ज्ञान माना गया हैं। यही ज्ञान जीवन का सार और आत्मा का प्रकाश है। यही मनुष्य की वास्तविक शक्ति है जिसके सहारे वह आत्मा तक और आत्मा से परमात्मा तक पहुँचकर उस सुख, शांति और संतोष का अक्षय भंडार प्राप्त कर सकता है जिसको वह जन्म-जन्म से खोज रहा है।

संदर्भ

1. बृहदारण्योपनिषद् 2/6/1-3
2. श्वेता॰ 1/11
3. कठोपनिषद् 1/3/14
4. अणु पन्था विततः...ब्रह्मविदः स्वर्गं लोकमिति उर्ध्वं विमुक्ताः। बृहदारण्योपनिषद् 4/4/8
5. केनोपनिषद् 2/5
6. कठोपनिषद् 1/2/2
7. अशरीरꣳ शरीरेष्वनस्थेष्ववस्थितम्। महान्तं विभुमात्मानं मत्वा धीरो न शोचति।। वही 1/2/22
8. कठोपनिषद् 2/3/15

9. मुंडकोपनिषद् 1/1/4-6
10. ब्रह्म परमात्मा तद्या वेद्यति सा ब्रह्मविद्या। बृहदा॰ 1/4/9 पर शां॰ भा॰
11. ईशावास्योपनिषद् 11
12. 'स्वतामेवं ब्रह्मोपनिषदम्।' छांदोग्योपनिषद् 3/11/3
13. उपनिषद् अक, पृ॰ 54-गीताप्रेस, गोरखपुर
14. ऐतरेयोपनिषद् 3/3
15. बृहदारण्योपनिषद् शां॰भा॰ 1/4/10 तथा मांडूकोपनिषद् 1/3
16. प्रश्नोपनिषद् 3/11-12
17. कठोपनिषद् 2/1/2
18. वही 2/1/12
19. छांदोग्योपनिषद् 3/14/1
20. ब्रह्मोपनिषद् 46-47
21. कौषीतकीब्राह्मणोपनिषद् 1/4
22. वही 3/3-4
23. जाबालदर्शनोपनिषद् 4/57
24. मैत्रेय्युपनिषद् 1/1 एवं 1/3
25. वही 1/6
26. संन्यासोपनिषद् 56
27. नारदपरिब्राजकोपनिषद् 9/1
28. वही 9/13-14
29. पैङ्गलोपनिषद 4/16
30. केवल्योपनिषद् 11
31. पैङ्गलोपनिषद 4/19
32. वही 4/22-23
33. योगतत्त्वोपनिषद् 16-17
34. आत्मप्रबोधोपनिषद् 28
35. आत्मोपनिषद् 11
36. शाट्यायनीयोपनिषद् 1 तथा 4
37. मुंडकोपनिषद् 3/1/4
38. वही 3/2/6
39. छांदोग्योपनिषद् 5/3/6-7
40. वही 6/1/1-7
41. अक्ष्युपनिषद् 1-49
42. अध्यात्मोपनिषद् 46-47
43. सर्वसारोपनिषद् 2-3
44. अमृतनादोपनिषद् 1
45. महोपनिषद् 6/32
46. यथा सौम्येकेन मृत्पिण्डेन सर्वं मृन्मय विज्ञातं स्याद्वाचारम्भणं विकारो नामधेयं मृत्तिकेत्येव सत्यम्। छांदोग्योपनिषद् 6/1/4
47. ब्रह्मोपनिषद् 11, 22
48. ब्रह्मविद्योपनिषद् 49
49. योगतत्त्वोपनिषद् 15, 31
50. कठरुद्रोपनिषद् 14-16
51. कौषीतकीब्राह्मणोपनिषद् 3/3
52. छांदोपनिषद् 1/5/8
53. बृहदारण्योपनिषद् 4/4/2-3

ग्रा॰, टिकरी माफी, पो॰, जोगीठेर,
तहसील, बीसलपुर, पीलीभीत 262203
मो॰ 9411283426, 8273872204

संत दादूदयाल की दार्शनिक चेतना

डॉ॰ रणधीर सिंह
एसोसिएट प्रोफेसर एवं अध्यक्ष
स्नातकोत्तर हिंदी-विभाग
दयालसिंह पी॰जी॰ कॉलेज, करनाल (हरियाणा)

भारतवर्ष की पावन धरा पर अनेक ऐसे अद्‌भुत प्रतिभा के धनी ऋषि-मुनि, पीर-पैगंबर और संत-महात्मा समय-समय पर अवतरित हुए हैं, जिनमें संत दादूदयाल का नाम संतकाव्य परंपरा में बड़े आदर से लिया जाता है। उन्होंने कबीर, नानक, रविदास की संत-काव्य परंपरा को आगे बढ़ाते हुए समाज को सही दिशा में आगे बढ़ने का आह्‌वान किया।

दादूपंथ के अनुयायियों के अनुसार दादूदयाल का जन्म गुजरात के प्रसिद्ध नगर अहमदाबाद में हुआ था।[1] पर्याप्त मतभेद होते हुए भी अधिकतर विद्वानों ने उनका जन्म संवत् 1601 और मृत्यु संवत् 1660 में स्वीकार की है। 'श्री दादू जन्मलीला परची' में दादू के विषय में इस प्रकार का वर्णन मिलता है–संवत् सोला-से-इकोत्तर। संत तक उपज्यो पुहुमीपर।[2] उन्होंने अहमदाबाद से राजस्थान तक और फिर बनारस, बिहार और बंगाल तक लगभग पूरे देश में भ्रमण करते हुए, संभवत: अधिकांश जीवन राजस्थान में बिताया।[3] परशुराम चतुर्वेदी के अनुसार दादू के शिष्य रज्जब ने उन्हें धुनिया जाति का बताया है–

धुनि ग्रभे उत्पन्नो दादू योगेन्द्रो महामुनि:।
उत्तम जोग धारनं, तस्मात क्यं न्याति कारणम्।।[4]

वैसे अन्य संतों की भाँति संत दादूदयाल ने भी जाति-पाँति का डटकर विरोध किया है। इस संबंध में विचार प्रकट करते हुए वे कहते हैं कि मेरा सच्चा संबंध ईश्वर से है और इसी संबंध से मेरा परिचय है। उनके गुरु के संबंध में कोई प्रामाणिक जानकारी उपलब्ध नहीं है लेकिन दादूपंथियों के अनुसार 'बुड्‌ढन' नामक एक अज्ञात संत उनके गुरु थे। सुंदरदास ने वृद्धानंद या बुड्‌ढ़न को दादू का गुरु बताया है–

मस्तक हाथ धरयौ है, जब ही दिव्य दृष्टि उबरी है तबही।
यौं करि कृपा बड़ी दत्त दीनौ वृद्धानंद पयानो कीनौ।[5]

वृद्धानंद कबीर की ही शिष्य-परंपरा में बताए जाते हैं, इसलिए बुड्‌ढ़न या वृद्धानंद को अधिकतर विद्वानों ने दादूदयाल का गुरु स्वीकार कर लिया है। दादूदयाल के पद और साखियों की संख्या लगभग बीस हजार बताई जाती है, परंतु उपलब्ध पद और साखियों की संख्या तीन हजार के लगभग है।

संत दादूदयाल के आकर्षक व्यक्तित्व और हृदयग्राही स्वभाव के कारण लालदास की

'नाममाला' में उनके 152 शिष्य बताए गए हैं।[6] इनमें से एक सौ शिष्य वीतरागी थे, परंतु शेष 52 शिष्यों ने एकांत भगवत चिंतन के साथ लोक में ज्ञान के प्रचार-प्रसार का कार्य करना भी आवश्यक समझा। इन बावन शिष्यों में गरीबदास, मिस्कीनदास, रज्जबदास जनगोपाल, वषना, सुंदरदास, जगजीवनदास, बनवारीदास, मोहनदास आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।

जीवन और दर्शन का निकट का संबंध है। दर्शन ही हमें ब्रह्म, जीव, जगत्, माया, मोक्ष आदि के स्वरूप का दर्शन कराता है और संसार के बंधन से मुक्ति का मार्ग दर्शाता है। वास्तव में दर्शन विचारों की ऐसी परंपरा है, जो धर्म के समान मानव को उन्नत और श्रेयस्कर बनाती हुई संसार के समस्त बंधनों से मुक्त करती है। आत्मा या ब्रह्म का साक्षात्कार कराती हुई, उसे परम सुख एवं शांति प्रदान करती है।

संत दादूदयाल को गहन अनुभूति का साक्षात्कार हो चुका था। इसलिए ही उन्होंने कहा था कि जब ईश्वर प्राप्ति हो गई तो अन्य किसी चीज की क्या आवश्यकता? कबीर की सहजावस्था दादूदयाल को भी प्राप्त हो गई थी, इसीलिए उस मार्ग को उन्होंने सहज मार्ग ही कहा है। उनका ब्रह्म संप्रदाय इसीलिए सहज संप्रदाय के नाम से भी जाना जाता है। उनका ईश्वर में पूर्ण विश्वास था, ऐसा ईश्वर जो घट-घट में व्याप्त है। वे कहते थे–ईश्वर तो तुम्हारे अंदर ही है, फिर देहरा या मसीत जाने की क्या आवश्यकता है? दादू की साधना अद्वैतवादी थी। उसमें ईश्वर के सिवाय अन्य को स्थान नहीं। वे निराकार निरंजन ब्रह्म के उपासक थे–

सदा लीन आनंद में, सहज रूप सब ठौर।
दादू देखे एक को दूजा नाहीं और।[7]

दादूदयाल कहते हैं कि हरि का सरोवर सर्वत्र पूर्ण है, जहाँ चाहो उसका पानी पी लो, उसके भीतर कहीं भी आचमन करते ही जीव की तृषा बुझ जाती है और वह सुखी हो जाता है। फिर उस शून्यमय सरोवर का पानी निरंजनस्वरूप है। मन उसमें मीन की भाँति रम जाता है।[8] उन्होंने परमतत्त्व को 'सहज सुनि' नाम भी दिया और उसी में निरंजन या राम को रमता हुआ समझना चाहिए।[9] भक्ति आस्थाशील होती है, तर्क संदेह करता है। दादू ने बिना विवाद किए हुए परंपरा से प्राप्त दार्शनिक विचारों को ग्रहण कर लिया है और उनके समर्थन में स्थान-स्थान पर मौलिक तर्क प्रस्तुत किए हैं। राम तो उस बाजीगर के समान है, जिसने बाजीगर के खेल की तरह इस दुनिया को फैला दिया है। हम इस खेल को देखते हैं लेकिन बाजीगर से बेखबर रहते हैं–

भाई रे बाजीगर नटषेला, जैसे आपै रहै अकेला।
दादू पावा सोई, जो इहि बाजी लिपति न होई।[10]

उस अविगत को जानने का प्रयास तो अनेक व्यक्ति करते हैं, लेकिन उस परम तत्त्व को कोई भी खोज नहीं पाया। ईश्वर प्राप्ति के बताए गए अब तक के सभी मार्ग असत्य हैं। ईश्वर तो एक है लेकिन उस तक पहुँचने के मार्ग अनेक हो गए हैं–

मैं पंथि येक अपार के मनि और न भावै।
कोई पंथ पावे पीव का, जिस आप लषावै।[11]

वे कहते हैं कि इन पंथों से जगत् का सृजन करने वाले परम तत्त्व को नहीं जाना जा सकता। इसलिए वे स्वयं ईश्वर से पूछते हैं कि हे गुंसाई, तुम किस तरह प्रसन्न होते हो–

कौन भाँति भल मानै गुंसाई।

तुम भावै सो मैं जानत नाहीं।[12]

अन्य संतों की भाँति संत दादूदयाल ने भी जीवात्मा को अहंकार का त्याग करके परमात्मा से मिलने की सलाह दी है। वे कहते हैं कि 'मैं' और 'राम' साथ-साथ नहीं रह सकते–

जहाँ राम तहाँ मैं नहीं, मैं तहाँ नाहिं राम।
दादू महल बारीक है, द्वै कू नाहीं ठाम।[13]

अहंकार का विनाश हो जाने के बाद जब जीव ब्रह्म में लीन हो जाता है, तब फिर जीव का पृथक् अस्तित्व शेष नहीं रहता, ब्रह्म ही ब्रह्म रहता है–

तब मन नाहीं मैं नहीं, नहिं काया नहिं जीव।
दादू एके देषिए, दह दिसि मेरा पीव।[14]

ब्रह्म सर्वव्यापक है, वह सबमें एक ही भाव से परिव्याप्त है। प्रकृति में हमें जो कुछ दिखाई पड़ता है, बिना ब्रह्म के उन सब की सत्ता ही नहीं हो सकती। संत दादूदयाल की वाणी में ब्रह्म की सर्वव्यापकता के दर्शन होते हैं। उनके अनुसार पूर्ण ब्रह्म एकमेव है, अद्वैत है। इसी पूर्ण ब्रह्म को वे सर्वत्र देखते हैं/ अनुभव करते हैं। वे ब्रह्म को दयालु, सर्वत्र समाया हुआ और रोम-रोम में बसा हुआ मानते हैं, हमें उसे दूर नहीं समझना चाहिए–

दादू देखूँ दयाल कूँ, सकल रह्या भरपूरि।
रोम-रोम मैं रमि रह्या, तूँ जिनि जानै दूरि।[15]

एक अन्य स्थल पर वे कहते हैं कि बाहर-भीतर और सब दिशाओं में एक ही प्रियतम व्याप्त है–

दादू देषु दयाल कूँ, बाहरी भीतरि सोई।
सब दिसी देषूँ पीव कूँ, दूसर नाहीं कोई।[16]

संत दादूदयाल ने उस अविनाशी परमतत्त्व के अंगों के तेज का साक्षात्कार स्वयं आँखों में भरकर किया है–

दादू जीए तेल तिलनि मैं, जीए गंध फुलनि।
जीए मषण षीर में ईए, रबु रंहनि।[17]

उन्होंने यहाँ तिल-तेल आदि के दृष्टांत द्वारा ब्रह्म की सर्वव्यापकता की पुष्टि की है। दादूदयाल राम के अनेक नामों के विवाद में नहीं पड़ना चाहते बल्कि वे राम के सिवाय किसी दूसरे को नहीं मानते–

बाबा दूसर नांही कोई।
येक अनेक नाँव तुम्हारे, मौपे और न होई।[18]

सभी संतों ने जीवात्मा को परमात्मा का ही अंश स्वीकार किया है। इसलिए जब जीव को आत्मनिष्ठ होकर पूर्णब्रह्म की दृष्टि से देखते हैं तो सर्वत्र एक ही आत्मतत्त्व का प्रसार दिखाई देता है, दादू पूरण ब्रह्म विचारिए, तब सकल आत्मा येक।[19] उन्होंने अपनी वाणी में ब्रह्म और जीव के भेद को समझाते हुए कहा है–

दादू जायै मरै सु जीव है, रमिता राम न होइ।
जामण मरण तै रहत हौ, मेरा साहिब सोइ।[20]

जो जन्म लेता और मरता है, वह जीव है और जो जन्म-मरण से रहित है, वह मेरा स्वामी है। शुद्धचित्त सज्जन व्यक्ति और सृष्टिकर्त्ता ब्रह्म आपस में उसी प्रकार मिलते हैं, जिस प्रकार दूध और पानी, उसी प्रकार जीव और ब्रह्म तदाकार हो जाते हैं, फिर उनको अलग नहीं किया जा सकता–

दादू ज्यौं जल वैसे दूध में, त्यूँ प्राणी में लूँण।
अैसे आतम राम सौं, मन हठ साधै कूँण।[21]

प्राय: सभी संतों की वाणी में संसार की नश्वरता एवं क्षणभंगुरता का उल्लेख मिलता है। संत दादूदयाल ने भी इस संसार और संसार के झमेले का झूठा कहा है–

दादू झूठी काया, झूठा घर, झूठा यहु परिवार।
झूठी माया देषि करि, फूल्यौ कहा गँवार।[22]

उन्होंने अपनी वाणी में बार-बार 'काला मुँह संसार का, नीलै कीये पाव।'[23] कहकर संसार की आलोचना की है। वे कहते हैं कि जो सत्य है, वही झूठ माना जाता है और झूठ को सत्य कहते हुए लोगों को तनिक भी संकोच नहीं होता है–'मन झूठ साच करि जानै, हरि साध कहै नाहिं मानै।'[24]

उन्होंने अपने पदों और साखियों के अलावा, काया के महत्त्व को प्रकट करने वाले स्वतंत्र ग्रंथ की रचना भी की, जिसमें परमतत्त्व को 'काया' में ही स्थित माना गया है–

पूजण हारे पासि है, देही माँहै देव।
दादू ताकूँ छाड़ि, बाहरि मांडी सेव।[25]

यहाँ इस बात पर बल दिया गया है कि वे संसार के प्रपंच में रहकर माया से दूर होकर सात्त्विक भाव से परमात्मा के चिंतन को ही जीवन-प्रधान उद्देश्य मानते हैं।

संत दादूदयाल के अनुसार मुक्ति ही जीवन का एकमात्र लक्ष्य है। उन्हें मृत्यु के अनंतर मुक्त होने में विश्वास नहीं। वे कहते हैं कि जिन्होंने आत्मानुभूति की उपलब्धि कर ली, उनके सारे संशय-भ्रम चिंता, भय नष्ट हो जाते हैं[26], इस अवस्था में जीव समदर्शी हो जाता है और जीवन्मुक्ति हो जाती है। दादूदयाल जी स्पष्ट कहते हैं कि निरंजन के निकट पहुँचते ही मैं जीवन्मुक्त बन गया। वे तो यही मानते हैं कि जीते-जी राम की उपलब्धि हो जाए और अपना जीवन सफल हो जाए।[27] उन्होंने मृत्यु के बाद मुक्ति का जोरदार विरोध किया है–

मूवाँ पीछे बैकुंठि वासा, मूवा श्रगि पठावै।
मूवाँ पीछैं मुक्ति बतावै, दादू जग बौरावैं।[28]

उन्होंने कहा कि जो मृत्यु के बाद स्वर्गवास या ईश्वर से मिलन की बात करते हैं, वे इस संसार के साथ धोखा करते हैं। दादू जोर देकर कहते हैं कि मुक्ति जीवित रहते ही संभव है, मृत्यु के बाद मुक्ति नहीं है। जो जीवित रहते हुए मुक्ति नहीं पा सकता, वह तो अंतत: भवसागर में डूब ही जाता है–

जीवत पद पाया नहीं, जीवत मिले न जाइ।
जीवत जो छूटे नहीं, दादू गए बिलाइ।[29]

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर यह स्पष्ट है कि संत दादूदयाल की साधना अद्वैतवादी थी। वे निराकार, निरंजन ब्रह्म के उपासक थे। उन्होंने ब्रह्म को सर्वव्यापी और अद्वितीय/

सर्व-शक्तिमान माना है। वह परमात्मा घट-घट में विद्यमान है। जीव और ब्रह्म में भेद न मानते हुए उन्होंने सभी धर्मों और जातियों के व्यक्तियों में एक ही परमात्मा का वास बताया है। माया को भ्रम, अज्ञान और भटकाव का प्रतीक मानते हुए काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह से दूर रहने का संदेश दिया है।

संदर्भ

1. स्वामी जनगोपाल, श्री दादू जन्मलीला परची, मंगल प्रेस, जयपुर, वि॰ संवत् 2006, पृ॰ 2
2. वही, पृ॰ 2
3. परशुराम चतुर्वेदी (सं॰), दादूदयाल ग्रंथावली, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, विक्रमी संवत् 2023 (1966 ई॰) प्रस्तावना पृ॰ 5-6
4. वही, पृ॰ 3
5. चंद्रिकाप्रसाद त्रिपाठी (सं॰), दादूदयाल की वाणी, वैदिक मंत्रालय अजमेर, 1907, पृ॰ 17
6. दादू महाविद्यालय रजत जयंती ग्रंथ, जयपुर, संवत् 2009, पृ॰ 22
7. डॉ॰ सुदर्शन सिंह मजीठिया, संतसाहित्य, रूपकमल प्रकाशन, दिल्ली 1962, पृ॰ 242 से उद्धृत
8. स्वामी मंगलदास (सं॰), दादूदयाल की वाणी, जयपुर-1951, 'पीव पीछाण' 11, पृ॰ 265
9. वही, परचा कौ अंग 5,6 पृ॰ 71
10. परशुराम चतुर्वेदी (सं॰) दादूदयाल ग्रंथावली, नागरी प्रचारिणी सभा वाराणसी, वि॰ सं 2023 (1966 ई॰), पृ॰ 441
11. वही, पृ॰ 390
12. वही, पृ॰ 316
13. वही, पृ॰ 236
14. वही, पृ॰ 77
15. वही, पृ॰ 50
16. वही, पृ॰ 50
17. वही, पृ॰ 47
18. वही, पृ॰ 406
19. वही, पृ॰ 274
20. वही, पृ॰ 216
21. वही, पृ॰ 22
22. वही, पृ॰ 132
23. वही, पृ॰ 199
24. वही, पृ॰ 440
25. वही, पृ॰ 71
26. हरिनारायण शर्मा (सं॰), सुंदर ग्रंथावली, राजस्थान रिसर्च सोसाइटी, कलकत्ता, 1993, पृ॰ 258
27. स्वामी मंगलदास (सं॰), दादूदयाल की वाणी, जयपुर 1951, राग गौड़ी 52, पृ॰ 377
28. परशुराम चतुर्वेदी (सं॰) दादूदयाल ग्रंथावली, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, वि॰सं॰ 2023 (1966 ई॰), पृ॰ 261
29. वही, पृ॰ 260

कथाकार चित्रा मुद्गल

प्रो० सुचित्रा मलिक
प्रियंका (शोध छात्रा) जे०आर०एफ
गु०काँ०वि०वि०, हरिद्वार

हिंदी कथासाहित्य की समकालीन कथालेखिका चित्रा मुद्गल एक बहुआयामी व्यक्तित्व का नाम है। कथालेखन, अनुवादकार्य, संपादनकार्य और उपन्यास, नाटक तथा निबंध विधा से संबद्ध हुई चित्रा मुद्गल सामाजिक तथा सांस्कृतिक गतिविधियों से भी सरोकार रखने वाली लेखिका के रूप में प्रसिद्ध हैं। बीसवीं शताब्दी के सातवें दशक से लेखन की दुनिया में अवतरित हुई चित्रा मुद्गल अंतिम दशक में इस दृष्टि से सघन और समृद्ध होती हुई 21वीं शताब्दी के वर्तमान युग में एक विशिष्ट कथालेखिका के रूप में स्थापित हो चुकी हैं। आज कहने की आवश्यकता नहीं है कि हिंदी की महिला कहानीकारों–मन्नू भंडारी, कृष्णा सोबती, मैत्रेयी पुष्पा, मृदुला गर्ग, उषा प्रियवंदा, राजी सेठ, नासिरा शर्मा, शशिप्रभा शास्त्री, अलका सरावगी, मेहरुन्निसा परवेज़ तथा सूर्यबाला आदि लेखिकाओं के साथ चित्रा मुद्गल एक विशिष्ट हस्ताक्षर के रूप में प्रशांसित होकर आज हमारे समक्ष विद्यमान हैं।

किसी भी साहित्यकार का व्यक्तित्व और कृतित्व एक-दूसरे के सापेक्ष होता है। साहित्य में व्यक्तित्व के अंतर्गत उसके जीवन से संबंधित विभिन्न पहलुओं पर प्रकाश डाला जाता है। कृतित्व के अंतर्गत उसके द्वारा लिखित रचनाओं का अध्ययन किया जाता है। लेखक का व्यक्तित्व तत्कालीन जीवन-संदर्भों से उत्पन्न विभिन्न परिस्थितियों तथा सांस्कृतिक विकास का प्रतिफलन होता है। नाना प्रकार की स्वस्थ-अस्वस्थ परंपराएँ, संस्कार, चिंतन एवं परिस्थितियाँ उसके व्यक्तित्व का निर्माण करती हैं, जिनका प्रभाव उसकी रचनाओं में ही अभिव्यक्त होता है, और आत्मसंघर्ष एवं सृजनशीलता के द्वंद्व के परिणामस्वरूप उसकी रचनाओं में निखार आता है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि एक महान व्यक्ति का जीवन और उसकी कृतियों के मध्य अन्योन्याश्रित संबंध होता है। वह अपने युग से परंपरा के रूप में क्या ग्रहण करता है तथा युग को क्या दे सकता है? आदि प्रश्न उसके व्यक्तित्व पर ही निर्भर करते हैं। ऐसे लेखक का व्यक्तित्व शिरोधार्य एवं स्तुति करने योग्य होता है, जो समकालीन जीवन-संदर्भों से उत्पन्न परिस्थितियों को आत्मसात् करते हुए ऐसे साहित्य का निर्माण करें, जो मानवता के हित में और समाज को आनंदित कर सके।

इन्हीं परिस्थितियों को पूर्ण रूप से आत्मसात् करनेवाली चित्रा मुद्गल का जन्म सामंती मूल्यों की दराज में बंद 'निहालीखेड़ा' जनपद उन्नाव (उत्तर प्रदेश) के एक ठाकुर खानदान में हुआ। चित्रा मुद्गल ठाकुर डॉ० बजरंगसिंह की पोती हैं। इनके पिता ठाकुर प्रतापसिंह एक जमींदार

घराने से संबंधित थे। पिताजी की कठोर प्रवृत्ति ने चित्रा जी में विद्रोह के बीज बोए, जो सर्वप्रथम उनकी चित्रकला में फूटे और फिर कहानी, कविता, उपन्यास और पत्रकारिता में। चित्रा की माता विमला ठाकुर कोमल व दयालु स्वभाव की महिला थीं, जिनका चित्रा के व्यक्तित्व पर अत्यधिक प्रभाव पड़ा। वे अपनी माँ की भाँति गरीब लोगों की मदद के लिए हमेशा तत्पर रहती थीं तथा आगे चलकर श्रमिक व मजदूर लोगों के उत्थान हेतु कार्य करने के लिए प्रवृत्त हुईं। चित्रा की प्रारंभिक शिक्षा अपने पैतृक स्थान ग्राम निहालीखेड़ा के निकट कन्या पाठशाला में हुई। इसके बाद वे मुंबई आईं और हायर सेकेंडरी पूना बोर्ड से उत्तीर्ण कर स्नातक तथा स्नातकोत्तर की पढ़ाई मुंबई विश्वविद्यालय से की। जब वह बी॰ए॰ कर रही थीं, तभी उन्होंने अवधनारायण मुद्‌गल से अंतर्जातीय प्रेम-विवाह किया। अवधनारायण उस समय 'टाइम्स ऑफ इंडिया' की पत्रिका 'सारिका' के उपसंपादक थे। इस प्रकार चित्रा ठाकुर से वह चित्रा मुद्‌गल बनीं और इस नाम से हिंदी साहित्य जगत् में विख्यात हो गईं।

चित्रा जी के व्यक्तित्व एवं कृतित्व से संबंधित यह कविता द्रष्टव्य है–

चित्रा याद तुम्हारी आयी
तस्वीरों से निकल मेज पर थोड़ी छत थोड़ी मुँडेर पर
खुशबू सी मडँरायी।
जैसी भी हो जटिल समस्या तुम उससे भिड़ लेतीं
अपनी मनवाने की खातिर अपनों से लड़ लेतीं।
झेले तुमने कई हादसे और कई बीमारी
लेकिन हर हालात में रक्खी लिखने की तैयारी
बहुत पुराना प्रेम हमारा जैसे आम अचारी
कल परसो सी लगती अपनी लरकइयाँ की यारी।[1]

चित्रा मुद्‌गल वर्तमान जीवन के यथार्थ की विविधताओं पर अपनी पैनी नज़रिया स्पष्ट करती हैं। 'समकालीन यथार्थ की बहुपरतीय लक्षित जटिल विद्रूपताओं के सर्वथा अलक्षित अतंर्सत्यों का संधान वह जिस भाषिक-संवेदना के साथ अपनी कथा-रचनाओं में परत- दर-परत अनेक अर्थ छवियों में अन्वेषित करती हैं, वह चकित कर देने वाला है। उनके कथा-संवेग पात्रों के द्वंद्वजनित मनोविज्ञान के अब तक लगभग अव्यक्त रहते आए अतंर्तहों के अंत:राग के, चरमविन्यास के जिस बिंदु पर पहुँचकर उद्‌घाटित करते हैं, वह रचना को आद्योपांत बाँधे रखने वाले शिष्ट्-वैशिष्ट्य को ही नहीं रेखांकित करता है, बल्कि पाठक की चेतना पर दस्तक देने के गहन सर्जनात्मक लक्ष्य को भी इंगित करता है।'[2] अब तक उनके चार उपन्यास, सात बालकथा-संग्रह, तीन नाटक, दो वैचारिक संकलन, सात संपादित पुस्तकें तथा 'मेरे साक्षात्कार' प्रकाशित हो चुकी हैं। इधर तीन खंडों में उनकी समस्त कहानियाँ 'आदि-अनादि' के नाम से प्रकाशित हुई हैं। चित्रा मुद्‌गल के कृतित्व पर एक दृष्टि–

उपन्यास

(1) 'एक जमीन अपनी' का सन् 1990 में प्रभात प्रकाशन से पहला संस्करण प्रकाशित। इसके बाद राजकमल प्रकाशन से इसका अगला संस्करण सन् 1990-2000 में छपा। तत्पश्चात् यह सामयिक प्रकाशन में सन् 2002 से प्रकाशित। इस उपन्यास में विज्ञापन कंपनियों

से जुड़कर काम करने वाली दो नारियों की कथा है। 'इस पितृसत्तात्मक व्यवस्था में उत्तर-औपनिवेशिक स्थितियाँ तथा भूमंडलीकरण की प्रक्रियाएँ स्त्री-जीवन पर जो नकारात्मक एवं सकारात्मक प्रभाव डाल रही हैं, उनका खुलासा इस उपन्यास में हुआ है।'[3]

(2) सामयिक प्रकाशन, दिल्ली से 'आवाँ' उपन्यास सन् 1999 में प्रकाशित हुआ। 'चित्रा मुद्गल के वृहद उपन्यास 'आवाँ' को स्त्री-विमर्श के साथ-साथ दलित-विमर्श का भी 'महाकाव्य' माना गया है। चित्रा जी ने स्वयं 'राष्ट्रीय सहारा (29 अप्रैल 2001) में छपी कुमार पंकज के साथ हुई बातचीत में बताया है कि 'आवाँ' के माध्यम से मैं पढ़े-लिखे लोगों को यह बताना चाहती हूँ कि जो लोग आज भी दिहाड़ी पर जी रहे हैं, उनकी स्थिति क्या है, वे कैसी-कैसी यातनाओं से गुजरते हैं, उनकी पीड़ा क्या है?'[4]

(3) 'दि क्रूसेड' उपन्यास 2002 में ओशन पब्लिकेशन से प्रकाशित हुआ। यह उपन्यास 'एक जमीन अपनी' का अँग्रेजी अनुवाद है।

(4) 'गिलिगडू' उपन्यास सामयिक प्रकाशन दिल्ली से सन् 2002 में प्रकाशित। 'यह उपन्यास तेरह दिन की कहानी में दो बुजुर्गों के जीवन का पूरा खाका ही नहीं खींचता, अपितु आज के बदलते जीवनमूल्यों को भी परिभाषित करता है कि कैसे नौजवान पीढ़ी अपने बुजुर्गों को घर में सम्मान न देते हुए जीने के लिए अकेला छोड़ देती है।'[5]

बालकथा-संकलन

(1) 'जगंल का राजा' बालकथा-संकलन सन् 1986 में प्रभात प्रकाशन से प्रकाशित हुआ। यह चित्रा मुद्गल का प्रथम बालकथा-संकलन है।

(2) 'देश-देश की लोककथाएँ' 1986 में प्रभात प्रकाशन से प्रकाशित हुईं। यह इनका दूसरा बालकथा-संकलन है। इस संकलन में आठ देशों की लोककथाओं को संकलित किया गया है।

(3) राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद की ओर से सन् 1987 में 'नीति कथाएँ' प्रकाशित हुईं। चित्रा मुद्गल का यह तीसरा बालकथा-संकलन है। इसकी कहानियाँ सामाजिक जीवन से संबंधित हैं।

(4) 'सूझ-बूझ' बालकथा-संकलन 2003 में प्रकाशित हुआ। यह संकलन बच्चों के बालमनोविज्ञान को केंद्र में रखकर लिखा गया है।

(5) किताबघर प्रकाशन से सन् 2008 में 'दूर के ढोल' प्रकाशित। किताबघर प्रकाशन से ही 2013 में द्वितीय संस्करण प्रकाशित। 'दूर के ढोल' में संकलित बालकहानियों के विषय बालमनोविज्ञान को केंद्र में रखकर चुने गए हैं। इसके विषय में चित्रा मुद्गल का कथन है कि 'निश्चय ही मैं बच्चों के लिए आज का 'पचतंत्र' लिखना चाहती हूँ, क्योंकि छोटे पड़ते जंगलों के बावजूद प्रकृति के सान्निध्य में रह रहे पशु-पक्षियों की दुनिया, आज भी बच्चों के लिए उनके प्रिय बाल-सखाओं की मंडली है।'[6]

(6) राजपाल एंड संस प्रकाशन, दिल्ली से सन् 2008 में 'काँच की किरच' प्रकाशित।

(7) 'देश-विदेश की लोककथाएँ' सन् 2008 में राजपाल एंड संस से ही प्रकाशित। इन लोककथाओं के विषय बालमनोविज्ञान को केंद्र में रखकर प्रस्तुत किये गए।

(8) चिऊँ मिऊँ (शीघ्र प्रकाशय)।

बाल-उपन्यास

कथाकार चित्रा मुद्गल के अब तक तीन बाल-उपन्यास प्रकाशित हुए हैं-

(1) 'माधवी कन्नगी' सन् 1993 में किताबघर प्रकाशन से प्रकाशित हुआ। यह उपन्यास दो हजार वर्ष पुराने तमिल महाकाव्य 'शिलप्पर्दिकोरम्' पर आधारित है।

(2) 'मणिमेखलै' साहित्य प्रकाशन से सन् 2001 में प्रकाशित। इस उपन्यास में 'माधवी कत्रागी' की कथा को आगे बढ़ाया गया है।

(3) 'जीवक' बाल-उपन्यास सन् 2002 में साहित्य प्रकाशन से प्रकाशित।

यह उपन्यास तमिल के पंच महाकाव्यों में से तृतीय स्थान पर माने-जाने वाले 'जीवक-चिंतामणि' को आधार बनाकर लिखा गया है। इस उपन्यास में राजकुमार जीवक की संघर्ष-कथा को बड़े ही रोचक ढंग से प्रस्तुत किया गया है।

संकलन या लेख-संग्रह

(1) सन् 1988 में 'विचार-संग्रह' शीर्षक से चित्रा मुद्गल का लेख-संग्रह अभिनव प्रकाशन से प्रकाशित। इस संग्रह में चित्रा मुद्गल के विचारों की भावभूमि का वर्णन हुआ है। 'विचार-संग्रह' इनका प्रथम लेख-संग्रह है।

(2) 'बयार उनकी मुट्ठी में' सन् 2004 में सामयिक प्रकाशन से प्रकाशित हुआ। चित्रा मुद्गल ने इस संग्रह में अपने मौलिक विचार प्रस्तुत किए हैं। इस संग्रह में 'सांप्रदायिकता', 'संस्कृति के ठेकेदार', 'राजनीति में देह-संबंधों का खेल' आदि लेख संगृहीत हैं।

नाटक

(1) 'पंच परमेश्वर तथा अन्य नाटक' सन् 2005 में 'राजपाल एंड संस' से प्रकाशित।

(2) 'सद्गति तथा अन्य नाटक' राजपाल एंड संस की ओर से 2005 में प्रकाशित।

(3) 'बूढ़ी काकी' तथा अन्य नाटक' भी सन् 2005 में राजपाल एंड संस की ओर से प्रकाशित।

चित्रा मुद्गल ने भारतीय जन-जीवन के कुशल कथाशिल्पी प्रेमचंद की श्रेष्ठ कहानियों को नाट्य-रूपांतर, के माध्यम से प्रस्तुत किया है।

संपादन-कार्य

(1) 'असफल दांपत्य की कहानियाँ'। यह कहानी-संग्रह सन् 1987 में प्रभात प्रकाशन द्वारा प्रकाशित। यह कथाकार चित्रा मुद्गल द्वारा संपादित प्रथम कहानी-संग्रह है।

(2) 'टूटते परिवारों की कहानियों' सन् 1987 में प्रभात प्रकाशन से ही प्रकाशित। इस संकलन में पारिवारिक विघटन से संबंधित चौदह कहानियों को संकलित किया गया है।

(3) 'दूसरी औरत की कहानियाँ' प्रभात प्रकाशन द्वारा 1987 में प्रकाशित इस संग्रह में पारिवारिक टूटन, असफल दांपत्य, स्त्री-शोषण आदि विषयों पर आधारित कहानियों का संकलित किया गया है।

(4) 'प्रेमचंद की प्रेम कहानियाँ' सन् 2005 में रोशनाई प्रकाशन, कोलकाता की ओर से प्रकाशित। इस संकलन में तेरह कहानियाँ संकलित हैं, जो पूर्णत: प्रेम पर आधारित हैं। इस संकलन में प्रेमचंद की प्रेम के तारों में गुँथी हुई कहानियाँ संकलित हैं।

(5) 'भीगी हुई रेत' सन् 1989 में शिक्षा विभाग राजस्थान, बीकानेर से प्रकाशित हुआ।

(6) 'देह देहरी' साहित्य प्रकाशन से सन् 1989 में प्रकाशित हुआ। इसमें प्रतिनिधि महिला कथाकारों की कहानियाँ संकलित हैं। ये कहानियाँ वर्तमान ज्वलंत विमर्श 'स्त्री-विमर्श' पर आधारित हैं।

कहानी

(1) कथाकार चित्रा मुद्गल की प्रथम कहानी 'सफेद सेनारा' 25 अक्टूबर, 1964 को पुरस्कृत होकर मुंबई के 'नवभारत टाइम्स' के रविवारीय अंक में प्रकाशित।

(2) संपूर्ण कहानियाँ 'आदि-अनादि' नामक शीर्षक से 2007 में सामायिक प्रकाशन के द्वारा प्रकाशित। ये संपूर्ण कहानियाँ तीन-खंडों में प्रकाशित हैं। 'तीन खंडों में प्रस्तुत इस महत्त्वपूर्ण आयोजन में कथाकार चित्रा मुद्गल के क्रमिक विकास की झलक तो मिलेगी ही, उनकी विशिष्ट अभिव्यंजना की विशिष्ट भाषिक सामर्थ्य, अनूठी कथाशैली तथा बेजोड़ शिल्प के भी दर्शन होंगे।'[7]

(3) 'पेंटिंग अकेली है' सन् 2014 में सामयिक प्रकाशन द्वारा प्रकाशित चित्रा मुद्गल का बारहवाँ कहानी-संग्रह सर्जना का वह प्रस्थान बिंदु है, जहाँ से अन्य विधाओं की चौखटों ने तो अपने कपाट खोले ही हैं, कहानी ने भी एक नया संस्कार अर्जित किया है।

इस प्रकार से चित्रा मुद्गल जीवन के सत्य की खोज अपनी रचनाओं के माध्यम से करने में निरंतर संलग्न हैं। कथाकार चित्रा मुद्गल स्वयं कहती हैं–'लिखने का कारण विसंगतियों से उपजे वे आंतरिक दबाव और असंतोष होते हैं, जो किसी भी अतिसंवेदनशील व्यक्ति को अभिव्यक्ति के लिए प्रेरित करते हैं।'[8] सच को सच बोलने और झूठ को झूठ बोलने के लिए कबीर इनके गुरु रहे हैं। उनसे प्रेरणा पाकर निर्भीक होकर निरंतर अपनी साहित्यिक साधना में वे लीन रही हैं। आम आदमी की हमदम चित्रा मुद्गल की रचनाओं का प्रतिमान स्नेह से उत्प्रेरित मानवीयता है।

संदर्भ

1. ज्ञानोदय : जुलाई 2007, मील का पत्थर-चित्रा मुद्गल, ममता कालिया, पृ॰ 52
2. चित्रा मुद्गल: एक मूल्यांकन, के॰ वनजा, पृ॰ 183
3. वही, पृ॰ 11
4. आवाँ विमर्श, करुणाशंकर उपाध्याय, पृ॰ 21
5. हंस पत्रिका, दिसंबर 2004, पृ॰ 98
6. दूर के ढोल, चित्रा मुद्गल पृ॰ 4
7. 'आदि-अनादि' (संपूर्ण कहानी संकलन) भाग-1, चित्रा मुद्गल, पृ॰ 1
8. मेरे साक्षात्कार, चित्रा मुद्गल, पृ॰ 140

पत्नी श्री विनय सैनी
गली नं०-एल 4 **ए**
साऊथ सिविल लाइन, रुड़की (हरिद्वार) उत्तराखंड 247667

स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कहानी के परिप्रेक्ष्य में आंचलिक कहानी आंदोलन

डॉ॰ सुधा (प्रवक्ता)
राजकीय महाविद्यालय, सैक्टर-9,
गुड़गाँव (हरियाणा)

आंचलिक कहानी को एक अलग कहानी-आंदोलन न मानकर 'नई कहानी' की ही एक प्रवृत्ति मात्र माना गया है। 'नई कहानी', कस्बाई कहानियाँ और आंचलिक कहानियाँ–दो समानांतर रेखाओं में विभक्त हुईं।'[1] 'नई कहानी' की पहुँच जहाँ न सकी, वहाँ 'आंचलिक कहानी' के रचनाकारों ने उन अछूते विषयों को पकड़ा, जो प्राय: उपेक्षित या महत्त्वहीन समझे गए थे। 'नई कहानी' व 'आंचलिक कहानी' के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए डॉ॰ सोमनाथ कौल ने कहा है, 'हिंदी की नई कहानी ने दो दिशाएँ ग्रहण कीं। एक ओर फणीश्वरनाथ रेणु, मार्कंडेय, शिवप्रसाद सिंह, लक्ष्मीनारायण लाल व केशवप्रसाद आदि ने कहानी के आंचलिक रूप को उभारा तो दूसरी ओर राजेंद्र यादव, मोहन राकेश, कमलेश्वर, रघुवीर सहाय, धर्मवीर भारती तथा ऐसे ही अन्य अनेक कहानीकारों ने नागरिक जीवन के कुछ पहलू प्रस्तुत किए।'[2] इसलिए कहा जा सकता है कि 'आंचलिक कहानी' 'नई कहानी' के ही समानांतर विकसित हुई है। आजादी के बाद देश की प्रगति के लिए सरकार ने नई-नई विकास योजनाएँ प्रारंभ कीं। पंचवर्षीय योजनाओं के अंतर्गत भारतीय ग्रामों का विकास हुआ। ग्रामों के बदलते स्वरूप से प्रभावित होकर नए कहानीकार ने वहाँ के सामाजिक जीवन को अपनी कहानियों में चित्रित करना शुरू किया। इस प्रकार से कहानियों में अंचल को महत्त्व मिलने लगा।

सन् 1950 ई॰ के बाद कहानी रचना-विधान में एक विशेष परिवर्तन हुआ। प्रगतिवादी व मनोवैज्ञानिक फार्मूले पुराने पड़ते देखकर कुछ कहानीकारों ने शहर से दूर दृष्टि और आस्था से नई-नई जमीन तलाशनी शुरू कर दी। अपने अनुभवों को नवीनता प्रदान करने के लिए इन कहानीकारों ने आंचलिक अनुभवों को व्यक्त करना शुरू कर दिया। आजादी के बाद आंचलिकता की यह विशेष प्रवृत्ति बड़ी तीव्रता से उभरी। यह प्रवृत्ति अपने निकट के परिवेश, जनपद, उसके भूगोल, जीवन और संस्कृति से जुड़ने, उस पहचानने और आत्मसात् करने के अभिप्राय से प्रेरित थी। किसी अंचल-विशेष को घटना-स्थिति या चरित्र के बजाय कहानी में प्रतिष्ठित करने का यह प्रयास नितांत नया था। आंचलिकता का यह आंदोलन हिंदी-कहानी में आने से पूर्व अमेरिका, जर्मनी व फ्रांस में खूब चला था। 'इस आंचलिकता का आंदोलन अमेरिकन साहित्य में बहुत व्यापक, शक्तिशाली और सुगठित रूप में चला। आदम और मूर की पुस्तक 'अमेरिकन

रीजनेलिज्म' के आधार पर यह पता चलता है कि वहाँ कम-से-कम दो हजार विशिष्ट आंचलिक कृतियाँ रची गईं। अमेरिका का दक्षिणी भाग ऐसी कहानियों के लिए पूर्ण उर्वरक है। उस आंदोलन का नेतृत्व सँभालने वाले थे—डेनाल्ड देविड्सन, एलेन टेट और जान क्रोरेंसम। इस आंदोलन को 'न्यू फ्रांटियर्स मूवमेंट' भी कहा है। अमेरिका की वास्तविक परंपराओं को अंचलों में ही खोजा जा सकता है, जहाँ विदेशी सभ्यता का कम प्रभाव पड़ा है। जर्मनी में एडोल्फ वार्टिल्स और एस॰ लीनहार्ड ने 'हीमेत' पत्रिका के माध्यम से 'धरती की ओर लौटो' नामक आंदोलन चलाया। फ्रांस में भी आंचलिकता का खूब जोर रहा है। हैनरी पौरट ने इस आंदोलन को अरूपीकरण का विरोधी बताया। इसी प्रकार इटली में मौसिमो वातेम्पेली ने आंचलिकता को खूब बढ़ावा दिया।'[3] इस प्रकार हिंदी-कहानी में 'आंचलिक कहानी' की शुरुआत कोई नई नहीं थी। इससे पहले आंचलिकता को विदेशी साहित्य में स्थान मिल चुका था।

हिंदी साहित्य में 'आंचलिक कहानी' का उद्‌भव काल सन् 1951 ई॰ के आसपास माना जाता है। प्रेमचंद की अनेक कहानियाँ ग्रामीण समस्याओं पर आधारित हैं, लेकिन वे आंचलिक कहानियाँ नहीं हैं। प्राय: आंचलिक कहानी को ग्रामकथा से संबद्ध किया जाता है, परंतु ग्रामकथा तथा आंचलिक कथा में अंतर है। इस अंतर को डॉ॰ रघुवरदयाल वार्ष्णेय ने इस प्रकार स्पष्ट किया है, 'ग्रामकथा अधिक व्यापक भावभूमि समेटे होती है, उसके विपरीत आंचलिकता एक विशिष्ट क्षेत्र के जीवन से अपने को आबद्ध रखती है।.....प्रत्येक ग्रामकथा को आंचलिक नहीं कह सकते, जबकि सभी आंचलिक कथाएँ ग्रामकथाएँ होती हैं।'[4] आंचलिक कहानी के स्वरूप को स्पष्ट करने के लिए विभिन्न विद्वानों ने अपने मंतव्य दिए हैं। डॉ॰ शिवप्रसाद सिंह के अनुसार, 'वस्तुत: आंचलिक वे ही कहानियाँ कही जा सकती हैं, जो किसी जनपद के जीवन, रहन-सहन, मुहावरे, रूढ़ियों, अंधविश्वासों, पर्व, उत्सव, लोकजीवन, गीत-नृत्य आदि को चित्रित करना ही अपना मुख्य उद्‌देश्य मानती हैं।[5] रघुवरदयाल वार्ष्णेय ने आंचलिक कहानी को इस प्रकार परिभाषित किया है, 'वस्त्र का प्रांत भाग। लक्षणा और व्यंजना के माध्यम से उसका अर्थ होता है कोई भी विशेष भाग जिसकी अपनी व्यंजना के माध्यम से उसका अर्थ होता है । कोई भी विशेष भाग, जिसकी अपनी संस्कृति, अपनी भाषा, अपनी समस्याएँ हों, अंचल कहलाते हैं। इसीलिए इन्हें स्वतंत्र इकाई के रूप में चित्रित किया जा सकता है। किसी पर्वत-शिखर पर बसे, किसी नदी के तट पर स्थित, सागर-तट पर फैले ग्राम, जिनकी बोली, उत्सव, त्योहार, रहन-सहन, संस्कार, लोककथाएँ, लोकगीत समान हों, एक-सी समस्याओं से ग्रस्त हों, समाज जीवन-व्यवस्था से आबद्ध हों, वे ग्राम अंचल की संज्ञा से अभिहित किए जा सकते हैं।'[6] इस प्रकार संक्षेप में कहा जा सकता है कि आंचलिक कहानियाँ वही हैं, जिनमें अपना चुना हुआ एक भूखंड होता है, जिसकी अपनी भौगोलिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक विशेषताएँ होती हैं। ये विशेषताएँ ही इस अंचल-विशेष के विशिष्ट रीति-रिवाज और जीवन-मापक ढंग को जन्म देती हैं।

कई कहानीकारों ने इसे नागरिक आंचलिकता व ग्रामीण आंचलिकता में बाँटना चाहा; परंतु आंचलिक शब्द तो सटीक ढंग से ग्रामीण अंचल से ही जुड़ता है, इसे नगरीय संस्कृति के साथ नहीं जोड़ा जा सकता है। मार्कंडेय ने 'आंचलिक कहानी' को 'ग्रामकथा' से अभिहित करना चाहा, परंतु असफल रहे। 'आंचलिक कहानी' ने उन अछूते विषयों को पाठकों के सामने रखकर जो 'नई कहानी' द्वारा उपेक्षित रह गए थे, नाम कमाया। परंतु आंचलिक कहानीकारों पर भाषा व

कहानी को राजनीतिक चश्मे से देखने का आरोप लगा। 'आंचलिक कहानी पाठकों के लिए समस्या तब करती है, जब आंचलिक कहानीकार आंचलिकता के अतिरिक्त आग्रह में पड़कर ऐसे शब्दों और मुहावरों का अतिशय प्रयोग करने लगते हैं, जो विशेष अंचल में ही बोले, समझे जाते हैं।'[7] लेकिन हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि भाषा स्वयं लोक की न होकर 'चरित्र' की होती है। संत बख्शसिंह ने आंचलिक कहानी के महत्त्व को इस प्रकार प्रकट किया है, 'आंचलिक कहानियों की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण विशेषता यह थी कि इनके माध्यम से भारतीय ग्रामीण जन-जीवन की बाहरी स्थूल समस्याएँ ही प्रकाश में नहीं आईं, वरन् नए भारतीय किसान का संपूर्ण और व्यापक चरित्र उद्घाटित हुआ। आंचलिक कहानीकारों ने एक विशिष्ट क्षेत्र को रेखांकित करने का प्रयास किया। यह प्रयास इतना स्वाभाविक था कि इसके माध्यम से हिंदी-पाठक को भारतीय ग्रामीण जीवन की कई ऐसी बातें विदित हुईं, जिनसे वह अभी तक अपरिचित था।'[8]

हिंदी-कहानी में आंचलिकता के प्रवर्तन का श्रेय फणीश्वरनाथ रेणु को जाता है। इन्होंने अपनी कहानियों में एक विशेष जनपद को आधार बनाकर वहाँ के जीवन के सुख-दुःख, राग-रंग को उभारने की कोशिश की है। रेणु की आंचलिक कहानियों का विश्लेषण करते हुए डॉ॰ रामवचन राय ने लिखा है, 'रेणु हिंदी में नई कहानी की एक विशेष धारा आंचलिकता के उन्नायक हैं। उन्होंने एक अंचल को केंद्र बनाकर उसके सुख-दुख, जय-पराजय की तस्वीर खींची है, किंतु एक आंचलिक कथाकार के रूप में वे दूसरे आंचलिक कथाकारों से इस मायने में भिन्न हैं कि पहले आंचलिकता का दर्शन गढ़कर उन्होंने कहानियाँ नहीं लिखीं, बल्कि कहानी लिखने के क्रम में उसके दर्शन का प्रतिपादन किया। इससे उनकी कहानियों में एक सहज प्रवाह मिलता है। इस सहजता का एक कारण यह भी है कि रेणु अपने कथा-अंचल से इस कदर जुड़े हुए हैं कि उनका भोक्ता और रचनाकार दोनों एक होकर घटनाक्रम की आंतरिकता को उद्घाटित करते हैं। वे अपने इर्द-गिर्द की घटनाओं के दर्शक नहीं हैं, उसके भोक्ता और भागीदार हैं। दूसरे शब्दों में रेणु तटवर्ती लेखक नहीं, धारा के बीच के लेखक हैं।'[9] डॉ॰ नगेंद्र ने कहा है, 'सचमुच वे आदिम रसगंधों के कथाकार हैं। गाँव की धूल-माटी, बैलों की घंटियाँ, धान की झुकी हुई बालियाँ, गमकता चावल, मेला-ठेला, हँसी-ठिठोली आदि के वर्णन में गाँव ही नहीं, पूरा अंचल उभर आता है।'[10] इस दृष्टि से रेणु की 'लाल पान की बेगम', 'रसप्रिया, 'रसप्रिया', 'तीसरी कसम', 'ठुमरी' व 'उद्घाटन' आदि कहानियाँ विशेष रूप से द्रष्टव्य हैं।

फणीश्वरनाथ रेणु के अलावा इस धारा को विकसित करने वाले कहानीकारों में प्रमुख हैं—शिवप्रसाद सिंह, मार्कंडेय, नागार्जुन, शैलेश मटियानी, शेखर जोशी, लक्ष्मीनारायण लाल व राजेंद्र अवस्थी। इन सभी आंचलिक कहानीकारों ने उत्तर प्रदेश का पूर्वांचल, बिहार का कुछ भाग, मध्यप्रदेश तथा राजस्थान के कुछ भागों को, जो आंचलिकता के लिए सुरक्षित हैं, में भारतीयता की मूल सांस्कृतिक प्रवृत्तियों को ढूँढने का प्रयास किया है। इनके अनुसार देश के अंचल ही संस्कृति के प्रतीक हो सकते हैं। इस बात की पुष्टि डॉ॰ रघुवरदयाल वार्ष्णेय ने इस प्रकार की है, 'शहरी सभ्यता कृत्रिम होती है, नवीनता का ग्रहण वहाँ विकृति के रूप में उभरता है। अतः इसमें सभ्यता तो आती है, किंतु संस्कृति मर जाती है। जबकि आंचलिकता में संस्कृति जीवित रहती है, क्योंकि इसमें शताब्दियों से निर्मित नैसर्गिक और स्वाभाविक जीवन-प्रणाली कार्य करती है।'[11] इस प्रकार आंचलिक कहानी को भारतीय संस्कृति का मूल दस्तावेज माना गया है।

आंचलिक कहानीकारों की कुछ प्रमुख कृतियाँ इस प्रकार हैं–'पान फूल', 'पत्थर और परछाइयाँ, 'महुए का पेड़', हंसा जाई अकेला', 'भूदान' व 'माही' (मार्कंडेय), 'आरपार की माला', 'कर्मनाशा की हार', 'इन्हें भी इंतजार है,' 'बिंदा महाराज', 'एक वापसी और', 'मुरदा सराय' (शिवप्रसाद सिंह), 'कपिला हारा हुआ', 'दो दुखों का एक दुख', 'भँवरे की जात', 'पोस्टमैन', 'ऋण' व 'नेता जी की चुटिया'। (शैलेश मटियानी) आदि। इन कहानियों में ग्राम्य एवं अंचल-विशेष के जीवन का बड़ा ही यथार्थ चित्रण हुआ है। आंचलिक कहानीकारों ने भोगे हुए यथार्थ का अंकन ईमानदारी के साथ किया है। इस प्रकार आंचलिक कहानियों का दौर 'नई कहानी' के साथ-साथ चलकर 1960 ई॰ तक लगभग समाप्त होने लगा।

संदर्भ

1. डॉ॰ सुमनकुमार 'सुमन', कहानी और कहानीकार, 1989, पृ॰ 96
2. डॉ॰ सोमनाथ कौल, स्वातंत्र्योत्तर हिंदी-कहानी : विकास एवं मूल्यांकन, 1989, पृ॰ 9
3. डॉ॰ रघुवरदयाल वार्ष्णेय, हिंदी-कहानी : बदलते प्रतिमान, 1975, पृ॰ 108-109
4. डॉ॰ रघुवरदयाल वार्ष्णेय, हिंदी-कहानी : बदलते प्रतिमान, 1975, पृ॰ 110
5. डॉ॰ शिवप्रसाद सिंह, नई कहानी : संदर्भ और प्रकृति, पृ॰ 143
6. डॉ॰ रघुवरदयाल वार्ष्णेय, हिंदी-कहानी : बदलते प्रतिमान, 1975, पृ॰ 106
7. डॉ॰ परमानंद श्रीवास्तव, हिंदी-कहानी की रचना-प्रक्रिया, पृ॰ 276
8. डॉ॰ संतबख्श सिंह, नई कहानी : कथ्य व शिल्प, 1973 पृ॰ 46
9. डॉ॰ रामवचन राय, ज्योत्सना, वर्ष : 29, अंक 7, जुलाई 1977, पृ॰ 28-29
10. डॉ॰ नगेंद्र, हिंदी साहित्य का इतिहास, 1986 पृ॰ 692
11. डॉ॰ रघुवरदयाल वार्ष्णेय, हिंदी-कहानी : बदलते प्रतिमान, 1975, पृ॰ 107

मकान नं॰ 523/ **ए**
सुशांत लोक, ब्लॉक-बी, फेस-1
गुड़गाँव (हरियाणा)

संत ब्रह्मानंद सरस्वती का सामाजिक चिंतन

ममतादेवी, शोध-छात्रा
राजकीय उच्च विद्यालय, शाहपुर।
डॉ॰ रणधीरसिंह, शोध-निर्देशक
एसोसिएट प्रोफेसर एवं अध्यक्ष
स्नातकोत्तर हिंदी विभाग,
दयालसिंह पी॰जी॰ कॉलेज, करनाल (हरियाणा)

भारतवर्ष की पुण्यभूमि पर अनेक ऋषि-मुनि, पीर-पैगंबर, संत-महात्मा और चिंतकों ने समय-समय पर सामाजिक चिंतन कर समाज के नव-निर्माण में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है। इसी परंपरा को समृद्ध करते हुए हरियाणा की पावन धरा धर्मक्षेत्र-कुरुक्षेत्र के समीप चूहड़ मुनि की पुण्यभूमि चूहड़ माजरा में संत ब्रह्मानंद सरस्वती का आविर्भाव 24 दिसंबर सन् 1908 को रोड़ क्षत्रिय वंश में हुआ, जिन्होंने संत-परंपरा के दार्शनिक और सामाजिक चिंतन को पुष्ट और समृद्ध करते हुए समाज में व्याप्त अशिक्षा, बाह्याडंबर, स्वार्थपरता, अहंकार, ईर्ष्या-द्वेष, अंधविश्वास, भ्रष्टाचार जैसी सामाजिक कुरीतियों की भ्रांत धारणाओं को नकारकर उच्च श्रेष्ठ मान्यताओं को प्रतिष्ठित किया है।

हरियाणा की संत-परंपरा में निश्चित रूप से संत ब्रह्मानंद एक गौरवमयी विभूति थे। वे एक सिद्ध संत थे, जो जन्मना सुखदेव मुनि की तरह अवधूत थे। उनका संपूर्ण जीवन समाज के कल्याण में ही व्यतीत हुआ। उन्होंने अनेक स्थानों पर यज्ञ और भंडारों का आयोजन करके, जनता को उपदेश देकर, सामाजिक कुरीतियों को दूर करने के सफल प्रयत्न किए और समाजसुधार के अनेक कार्यक्रम बनाए। उनकी वाणी चार ग्रंथों में प्राप्त होती है–

1. श्री सतगुरु ब्रह्मानंद ब्रह्मानंद पचासा, 2. श्री सतगुरु ब्रह्मानंद ब्रह्मविचार 3. श्री सतगुरु ब्रह्मानंद नीतिविचार, 4. श्री सतगुरु ब्रह्मानंद शारीरकोपनिष्द। संत जी एक ऐसे महापुरुष थे, जिनकी कथनी और करनी में अंतर नहीं था। अनपढ़ जनता को देखकर वे व्यथित हो उठते थे। उन्होंने साधारण जनता को साक्षर बनाने के लिए अनेक प्रेरणादायक व्याख्यान दिए और पाठशालाओं, गुरुकुलों और आश्रमों की स्थापना करके शिक्षा का प्रचार-प्रसार किया।

बाह्याडंबरों का विरोध करते हुए उन्होंने सामाजिक रूढ़ियों और फिजूलखर्ची को समाप्त करने के लिए जगह-जगह उपदेश दिए। वे जो उपदेश देते थे, उस पर स्वयं आचरण भी करते थे–

बदल दे सारी दुनिया को बदलना ही तेरा काम है।
सबसे पहले आप बदल, जा इसी में तेरा नाम।[1]

आचारहीन मनुष्य को वेद भी पवित्र नहीं कर सकता। उसे पतित समझा जाता है। इसीलिए भारतीय संस्कृति में सदाचार को महत्त्व दिया गया। संत ब्रह्मानंद के अनुसार हर्ष-शोक, मान-अपमान आदि दुख-द्वंद्व मनुष्य को सुख से जीने ही नहीं देते–

आशा तृष्णा, राग द्वेष। मान अपमान करें कलेश।
निंदा-स्तुति झगड़ा करती। हर्ष शोक में दुनिया मरती।[2]

उनके अनुसार शांति, संतोष, दया आदि प्रवृत्तियाँ मानव के श्रेष्ठ आचरण की परिचायक हैं–

शांति बराबर तप नहीं, संतोष बराबर धन।
तृष्णा से बड़ा कोई दुख नहीं, दया से न्यारा धर्म।[3]

संत ब्रह्मानंद सरस्वती सत्यवादी और स्पष्टवादी थे। उन्होंने सत्य से बढ़कर किसी तप को नहीं माना है। सत्य ही स्वर्ग का साधन है और झूठ से बड़ा कोई पाप नहीं है, मृदु एवं सत्य भाषण मनुष्य को स्वर्ग ले जाता। सत्य से बढ़कर कोई तप नहीं होता।[4]

झूठ के पैर नहीं होते, जो झूठ की पगड़ी बाँधकर चलता है उसका परिणाम बुरा होता है–

सत्य की हमेशा जीत है, झूठ चले नहीं पैर।
झूठ मंडासा बाँधकर, किसको मिली है खैर।[5]

उन्होंने निष्कपट जीवन जीने पर बल दिया और विकारों की निंदा करते हुए उनसे दूर रहने का आह्वान किया–

झूठ, कपट, छल चोरी जारी। इन पाँचों से बचो नर-नारी।
काम क्रोध लोभ मोह अहंकार। इन पाँचों के त्याग से बने शुभाचार।[6]

संत-महात्माओं का जन्म ही परोपकार के लिए होता है। संत ब्रह्मानंद जी ने नीति-विचार में लिखा है, जो मनुष्य परोपकार के लिए आगे बढ़ता है, वही सत्पुरुष कहलाता है।[7] परोपकार के महत्त्व पर प्रकाश डालते हुए वे कहते हैं–

सुखी जो कोई बनना चाहे, औरों को सुखी बनाना होगा।
अपने दुःख दूर करने से पहले, दूसरों के दुख को हटाना होगा।।[8]

आपसी वैमनस्य, वैर-भावना और युद्ध विनाश के कारण हैं। उससे बचना चाहिए। कच्चे घड़े कच्चे घड़े से टकराकर टूट जाते हैं।[9]

सभी संतों ने परनिंदा रस से दूर रहने का आह्वान किया है। संत ब्रह्मानंद सरस्वती के अनुसार, सामाजिक संबंधों को बनाने-बिगाड़ने में निंदा-स्तुति की महत्त्वपूर्ण भूमिका रहती है–निंदा-स्तुति झगड़ा करती। हर्ष-शोक में दुनिया मरती।[10] संत जी सच्चे मित्र के संबंध में कहते हैं-

सन्मुख दोष-वर्णन करना, पीछे गुणों का गान।
गुण को पहले, दोष को पीछे, कहने में रहे ध्यान।
जिसने इस गुर को याद किया, वही मनुष्य प्रमाण।
सन्मुख स्तुति पीछे निंदा, यह तो आदमी बिल्कुल गंदा।[11]

हमारे समाज की विडंबना यह है कि मनुष्य को केवल दूसरों के ही अवगुण दिखाई देते हैं। अपने नहीं–

काला मुख तो सबका है, अपना देखे न कोय।

दूसरों का मुख देख-देखकर दुनिया दुखिया होय।[12]

वे परनिंदा की प्रवृत्ति का परित्याग कर दूसरों का भला करने के लिए प्रेरित करते हुए कहते हैं–

बुराई छोड़ दुनिया की, बुराई से बुरा होगा।
भलाई बाँध ले तन में, भलाई से भला होगा।।[13]

संत ब्रह्मानंद ने सन् 1942 में 'अखिल विश्व साम्यवाद स्वतंत्रता दल' की स्थापना की, जिसका मुख्य उद्देश्य 'जीओ और जीने दो' तथा समाज में समानता एवं विश्वबंधुत्व की भावना पैदा करना था। अपने पंचरंगे झंडे के माध्यम से उन्होंने झंडे के पाँचों रंग-हिंदू, मुस्लिम, ईसाई, सिक्ख, जैन-बौद्ध का परिचय देते हुए सभी को एक झंडे के नीचे संगठित होकर मानवतावादी धर्म का समर्थन किया है–

हिंदू-मुस्लिम-सिक्ख-ईसाई। जैन बौद्ध सब करें कविताई।
भूले बिसरे हैं सब भाई। ब्रह्मानंद दे सबकी दुहाई।[14]

आधुनिकयुग में मांसाहार और मादक द्रव्यों का सेवन बढ़ता जा रहा है, जिसके कारण समाज में अफरा-तफरी/ अपराध का ग्राफ दिनोंदिन बढ़ता जा रहा है। संत जी ने अपने प्रवचनों से मांसाहार तथा नशाखोरों को नशे की आदत से छुड़वाया और उनके घरों को आबाद कराया।

मांस, शराब, झूठ, चोरी। इनसे हटना चाहिए।
कुकर्म को छोड़ दे भाई। सत पै डटना चाहिए।[15]

समाज में जातीय आधार, धन-संपत्ति आदि के आधार पर असमानता का व्यवहार करने वाले लोगों को संत ब्रह्मानंद सरस्वती जी ने सृष्टि के समस्त प्राणियों में ईश्वर का अंश मानकर उनसे समानता का व्यवहार करने का आह्वान किया है-

कीड़ी से ब्रह्म तलक सारे जीव इकसार।
खान-पान और आना-जाना अंतर ज्ञान विचार।।[16]

वे कहते हैं कि दूसरों के सुख में ही अपना सुख निहित है-'सुखी जो कोई बनना चाहे, औरों को सुखी बनाना होगा।'[17] उन्होंने, गौररक्षा, वृक्षारोपण और नारी-शिक्षा के प्रति अपना जीवन समर्पित करते हुए लड़कियों की शिक्षा पर विशेष बल देते हुए कहा कि एक लड़की को पढ़ाना सारे परिवार को शिक्षित करना है।

वस्तुतः संत ब्रह्मानंद सरस्वती एक महान चिंतक थे, जिन्होंने भारतीय संस्कृति में गहरी आस्था रखते हुए सत्य, सदाचार, परोपकार, अहिंसा, भाईचारे के महत्त्व पर बल देते हुए सामाजिक जीवन में सुख, शांति, ऐक्य व साम्य भाव की कल्पना करके मानव धर्म की रक्षा की।

संदर्भ

1. श्री सतगुरु, ब्रह्मानंद : ब्रह्मानंद पचासा, कुरुक्षेत्र प्रेस, छोटा बाजार, कुरुक्षेत्र संवत् 1997, पृ. 26
2. वही, वही, पृ॰ 9
3. वही, वही, पृ॰ 47
4. वही, पृ॰ 42
5. वही, पृ॰ 42

6. वही, पृ॰ 9
7. वही, नीति-विचार, गुरुकुल ओउमपुरा, करनाल, संवत 1964, पृ॰ 7
8. वही, ब्रह्मानंद पचासा, कुरुक्षेत्र प्रेस, छोटा बाजार, कुरुक्षेत्र, संवत् 1997, पृ॰ 51
9. वही, नीति-विचार, गुरुकुल ओउमपुरा, करनाल, संवत 1964, पृ॰ 8
10. वही, ब्रह्मानंद पचासा, कुरुक्षेत्र प्रेस, छोटा बाजार, कुरुक्षेत्र, संवत् 1997, पृ॰ 9
11. वही, पृ॰ 31
12. वही, पृ॰ 51
13. वही, पृ॰ 37
14. वही, पृ॰ 30
15. वही, जीवनमाला, पृ॰ 7
16. वही, ब्रह्मानंद पचासा, कुरुक्षेत्र प्रेस, छोटा बाजार, कुरुक्षेत्र, संवत् 1997, पृ॰ 81
17. वही, पृ॰ 73

गाँव शाहपुर, डाक. सिरसी,
तहसील व जिला करनाल (हरियाणा)

रांगेय राघव की औपन्यासिक जीवनियों का राजनीतिक पक्ष

संतोषकुमार शर्मा

राजनीति शब्द 'राज' और 'नीति' दो शब्दों के संयोग से बना है, जिसका वास्तविक अर्थ है राज्य की नीति। अँग्रेजी भाषा में राजनीति का समानार्थक शब्द 'पॉलिटिक्स' है, जो ग्रीक शब्द 'पोलिस' से निर्मित है। 'पोलिस' का अर्थ है नगर या राज्य।'[1] प्राचीनकाल में यूनान में आजकल के राज्यों के समान लघु आकार के नगर, राज्य हुआ करते थे। इन नगरों, राज्यों की व्यवस्था से संबद्ध सब बातों की जानकारी कराने वाले विषय को राजनीति कहा जाने लगा। अत: दोनों भाषाओं में शाब्दिक अर्थ प्राय: समान है। हिंदी शब्द-सागर में राजनीति की परिभाषा इस प्रकार दी गई है–'वह नीति जिसका अवलंबन कर राजा अपने राज्य की रक्षा और शासन दृढ़ करता है, 'राजनीति' कहलाती है।'[2] प्रधानत: इसके दो भेद हैं–एक तंत्र और दूसरा आवाम। वह नीति जिसके द्वारा अपने राज्य में सुप्रबंध और शांति स्थापित की जाए, तंत्र कहलाती है और जिसके द्वारा पर राष्ट्रों से संबंध दृढ़ किए जाएँ, वह आवाम कहलाती है। स्वराज्य में प्रजाओं का समाचार और उनकी गति का पता देने के लिए राजा को चर (जासूस) से काम लेना पड़ता है और परराष्ट्रों में स्वराष्ट्र के स्वत्व वाणिज्य, व्यापार आदि की रक्षा तथा उनकी गतियों का पता देने के लिए दूत रहते हैं। इन दूतों और चरों से राजा स्वराष्ट्र और परराष्ट्र की गति, चेष्टा आदि का पता लगाकर अपनी शक्ति और स्वत्व की समुचित रक्षा करता है। प्राचीन ग्रंथ में आवाम के छ: मुख्य भेद किए गए हैं, जिन्हें षड्गुण भी कहते हैं। उनके नाम हैं–संधि, विग्रह, यान, आसन, द्वैधीकरण और संश्रय। ये षड्नीति के नाम से भी प्रसिद्ध हैं। राजनीति के चार अंग माने गए हैं–साम, दाम, दंड और भेद।'[3] मानक हिंदी कोश में राजनीति की परिभाषा इस प्रकार दी गई है–'वे नीतियाँ या वो पद्धति जिसके अनुसार किसी राज्य का प्रशासन किया जाता या होता है, राजनीति कहलाती है।'[4] ए॰ अप्पा राय मानते हैं कि 'राजनीति का संबंध राज्य अथवा राजनीतिक समाज से है, राजनीतिक समाज से अभिप्राय ऐसे लोगों से है, जो एक निश्चित भूभाग में व्यवस्था-हेतु संगठित होते हैं।'[5] प्रसिद्ध राजनीतिवेत्ता के॰एम॰ पन्नीकर राज्य की आवश्यकता तथा राजा और प्रजा के पारस्परिक संबंधों की सदृढ़ व्यवस्था को राजनीति से जोड़ते हुए कहते हैं कि 'राज्य की आवश्यकता, राज्य का स्वरूप एवं शासक तथा शासित परस्पर संबद्ध हैं।'[6]

राज्य को चलाने की नीति, ढंग या जिस नीति के अनुरूप शासक व्यवस्था बनाए तथा अपने को सुरक्षित रखने की नीति बनाए, उसी को राजनीति कहते हैं। राजनीति राजा के द्वारा बनाई गई ऐसी नीतियों को कहा जाता है जिसके अनुरूप वो अपना शासन चलाता है, जिसमें प्रजा के लिए भी व्यवस्थाएँ होती हैं। 'मार्क्सवादी विचारधारा में यह स्वीकार किया जाता है कि राजनीति

का स्वरूप केवल आर्थिक कारणों पर निर्भर नहीं करता बल्कि नेतृत्व, सांस्कृतिक परिवेश, राष्ट्रीय विशेषताओं एवं राजनीतिक दलों पर भी निर्भर करता है। वर्गीय संघर्ष की विचारधारा के रूप में अभिव्यक्ति सर्वप्रथम राजनीति के क्षेत्र में होती है।'[7]

'उन्नत राजनीतिक विचार अर्थतंत्र के विकास में और इसी के अनुकूल सामाजिक जीवन के अन्य पहलुओं के विकास में एक संगठनकारी, एकताकारी तथा परिवर्तनकारी भूमिका अदा करते हैं।'[8] डॉ॰ आदित्यप्रसाद त्रिपाठी ने राजनीति के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए लिखा है कि 'राजनीति समाज के आर्थिक विकास पर अप्रत्यक्ष रूप से भी प्रभाव डालती है। राजनीतिक विचारधारा, चिंतन के अन्य सभी रूपों को शासकवर्ग की सेवा में लगाने की प्रेरणा देती है। समाज के मूल आर्थिक ढाँचे को बदलने का मुख्य साधन राजनीतिक शक्तियों को सर्वहारा के हाथ में देना है। राजनीति पर आधिपत्य जमाए बिना सर्वहारा की मुक्ति संभव नहीं है 'राजनीति, अर्थशास्त्र की घनीभूत अभिव्यक्ति है।'[9]

अब प्राय: ये देखा जाता है कि राजनीति का अर्थ और स्वरूप दोनों ही परिवर्तित हो गए हैं। राजनीति का स्वीकृत रूप कुछ और है या कुछ और होना चाहिए। इसको स्वीकृति जनता देती है। आज राजनीति और वास्तविक अर्थों को छोड़कर एक जिस नए रूप (विकृत रूप) में उभरकर हमारे दैनिक जीवन में आ रही है। वर्तमानयुग विज्ञान का युग है, तर्कपरीक्षण और परिणामों का युग है। बौद्धिकता के आधिक्य के कारण आज का प्रत्येक व्यक्ति अपने अधिकारों के प्रति सजग है। इस समय राजनीतिक क्षेत्र में व्यक्ति इतना जागरूक हो गया है कि वह उसके स्वीकृत और विकृत रूपों की पूरी जानकारी रखता है।

साहित्य और राजनीति परस्पर कई अर्थों में संबद्ध है। दोनों ही लोकमंगल की भावना से प्रेरित हैं। समाज को खुशहाल बनाने और उसे आनंद में डुबो देने की कोशिश अपने-अपने ढंग और साधनों से दोनों ही करते हैं। 'दोनों ही जीवन का अभिन्न अंग हैं। एक से गांधी और चर्चिल का तथा दूसरे से प्रेमचंद और गोर्की का अविर्भाव हुआ है।'[10] राजनीति का प्रभाव किसी-न-किसी प्रकार साहित्य पर पड़े बिना नहीं रह सकता। यह प्रभाव प्राचीनकाल से ही समाज पर पड़ता रहा है। प्रो॰ शिवदत्त ज्ञानी ने स्वीकार किया है कि 'जो राजनीतिक सिद्धांत आधुनिक समझे जाते थे, वे सब प्राचीन भारत में ज्ञात होते हैं। हाब्स, लॉक, रूसो आदि को विश्वविख्यात सिद्धांत महाभारत के 'शांतिपर्व' में पहले ही से संसार के सम्मुख रख दिए गए थे।'[11] समाज पर राजनीति का प्रभाव प्राचीन समय से ही रहा है और साहित्य का समाज से जुड़े होने के कारण साहित्य पर भी राजनीति का बहुत ज्यादा प्रभाव पड़ना आवश्यक-सा हो जाता है। डॉ॰ रमेश तिवारी के मत में-'सच्चा साहित्यकार जिस मिट्टी पर जीता है, जिस समाज में रहता है और युग के राजनीतिक परिवेश में उसके व्यक्तित्व का विकास होता है और उसकी झाँकी साहित्य के सिवाय और कहाँ देखी जा सकती है।'[12]

रांगेय राघव की औपन्यासिक जीवनियों में राजनीति के विविध पक्ष दिखाई देते हैं। राजनीति एक ऐसा क्षेत्र है, जहाँ हर स्तर पर कूटनीति, भ्रष्टाचार और धोखा विद्यमान है। कंस ने गद्दी प्राप्त करने के लिए न केवल प्रजा पर घोर अत्याचार किए बल्कि अपने भाइयों के दुराचार के बल पर शक्ति का संचयन भी कर लिया। अब उसने कूटनीति के द्वारा जरासंध को जमाता बनाने का निश्चय कर लिया, ताकि वह यादवों को तोड़कर निरकुंश शासन स्थापित कर

सके–'कंस! वह अंधक कुलांगार! जिसने अपने दुराचारी भाइयों के बल पर कितनी शक्ति एकत्र कर ली है? वह जरासंध का जामाता बनने के बाद यादवगण को तोड़कर एक और निरंकुश साम्राज्य बनाने की चेष्टा कर रहा है?'[13]

जब किसी राज्य पर दूसरा राजा आक्रमण करता था तो सर्वप्रथम युवतियों को गाँवों में छिपाया जाता था, ताकि वे दुश्मन के सैनिकों के हाथ वे न पड़े, क्योंकि सैनिक युवतियों का उठा ले जाते थे और उनसे दुराचार करते थे। अत: युद्ध करना और हरा देने पर राज्य की युवतियों को उठा ले जाना तत्कालीन युद्ध नीति का हिस्सा थी–

'यह भी खबर आने लगी है कि नागरिक अपने ग्राम-भवनों की ओर भी ध्यान दे रहे हैं। युवतियाँ और लड़कियाँ ग्रामों में छिपाई जा रही हैं, जहाँ वत्स के योद्धा नहीं पहुँच सकेंगे। आतंक छाया हुआ है।

सारे प्रासाद में यही हाल है।'[14]

अपने राज्य का विस्तार करना प्रत्येक राजा अपना प्राथमिक कर्त्तव्य मानता है। ऐसा करना राजनीतिक दृष्टि से उचित भी है, किंतु बिना लड़े अपना राज्य किसी को दे देना सर्वथा अनुचित है, जो सैनिक या सेनापति युद्ध के समय कायरता दिखाए वह मृत्युदंड के लायक है–

'परिषद् में एक हलचल हुई है जैसे सब अब तैयार हो गए हैं। जीमूतवाहन कहता है, 'अंगराज्य छोटा है, किंतु वह आज तक वत्स, मगध, अवंति और कोसल की भाँति प्रसिद्ध रहा है अपने पराक्रम के बल पर। वह काशीराज्य की भाँति कन्याशुल्क में नहीं दिया जा सकता!' हर्ष की एक लहर-सी दौड़ गई और जीमूतवाहन ने फिर कहा, मैं रुद्रवर्मा पर राजद्रोह करने का अपराध लगाता हूँ। उसे प्राणदंड दिया जाए, क्योंकि उसने युद्ध के समय में कायरता दिखाई है।'[15]

तत्युगीन राजा सुरा और सुंदरी में लिप्त रहते थे। उन्हें केवल शराब, मांस की गंध में डूबे रहना अच्छा लगता था। प्रजा की कोई चिंता नहीं थी। इसी तरह वाममार्गी भी लोगों को चमत्कार के नाम पर भयभीत एवं आतंकित करते रहते थे–'सिंहल की सुंदरी कहती: 'देव! मैं तो ऐसी सुंदरी नहीं हूँ। पुरुष को तो सहस्रबाहु कहा गया है। वह तो चाहे जितनी पत्नियाँ रख सकता है। फिर मुझे आप कितने अधिकार देंगे?'

राजा लज्जित हो जाता। फिर मदिरा की गंध उठती और सुगंधित मांस आते, दीपाधारों पर रत्नों को चकाचौंध करने वाली शिखाएँ जलतीं, जिन्हें आधी रात को सामदेई मुट्ठी भरकर कुमकुम चूर्ण फेंककर बुझाने का प्रयत्न करती (किंतु राजा की तृष्णा का कहीं अंत ही नहीं होता। वह मानो खेल रहा था। जब इस मृगी से ऊब जाता, तो उसे साथ लेकर वन-विहार करता, फिर जब मृगी थक जाती तो स्वयं मृगया को लेकर निकल जाता। प्रजा की उसे चिंता नहीं थी।

महाकाल के मंदिर में वाममार्गी-पाशुपत एकत्र रहते और चमत्कार दिखाकर प्रजा को आतंकित करते रहते।'[16]

अपनी कुंठा को खत्म करने के लिए अलाउद्दीन ने भेलसा पर आक्रमण करके उसे जीत लिया। सैनिकों ने भेलसा की तरुण युवतियों को पकड़ लिया और उनके साथ बार-बार बलात्कार किया। अलाउद्दीन भी बलपूर्वक सुंदर लड़कियों से संभोग करता रहा। उसका विश्वासपात्र अलप खाँ भी ऐसे ही कृत्य में मग्न था।

'मलिका जहान एक कुटिल प्रकृति की स्त्री थी। वह अपने को सबसे ऊँचा समझती

थी। उसकी पुत्री, जो कि अलाउद्दीन की पत्नी थी, अपनी माँ की तरफ थी। अलाउद्दीन इस विषय में दुखी था। उसे न पत्नी का विश्वास मिलता था, न प्यार। वह इन दोनों से दूर रहना चाहता था किंतु मलिका जहान का अपना प्रभाव था।

भेलसा की अनिंद्य सुंदरी कन्याएँ पकड़ लाई गईं। बाहर सैनिक अनेक स्त्रियों के साथ नगर में बलात्कार करते घूमते थे। आग लगाई जा रही थी। अलाउद्दीन उन सर्वश्रेष्ठ सुंदरियों को बलपूर्वक अपने आनंद का साधन बना रहा था।

खेमे के बाहर अलप खाँ के विश्वस्त सेवक पहरा दे रहे थे और अन्यत्र अलप खां भी व्यभिचार में मत्त था।'[17]

राजाओं का कर्त्तव्य राज्य-विस्तार करना होता था। यह उनकी कूटनीति का एक हिस्सा था। अपने राज्य की सीमाओं का विस्तार करके राजा स्वयं को शक्तिशाली सिद्ध करता था। राजा हम्मीर के पराक्रम का उल्लेख करके उपन्यासकार ने उसकी राजनीतिक महत्त्वाकांक्षा का वर्णन किया है–'राजा हम्मीर पराक्रमी था। उसने सरसपुर के राजा अर्जुन को जीता, फिर उसने गढ़मंडल के राजा से कर वसूल करके धार के भोज पर आक्रमण किया। भोज को हराकर हम्मीर ने उज्जैन जीता, जहाँ शिप्रा के जल में उसके हाथियों, घोड़ों और सैनिकों ने स्नान किया। राजा ने स्नान करके महाकाल के मंदिर में पूजा की, जो तुयष्कों के खंडित कर देने के बाद फिर उठ खड़ा हुआ था। फिर उसने चित्तौड़ की ओर सेना मोड़ी और मेवाड़ को उजाड़ता हुआ वह आबू पर्वत पर गया। आबू पर्वत पर उसने ब्राह्मण धर्मानुयायी होने पर भी जैन तीर्थंकर ऋषभदेव की पूजा की। फिर अचलेश्वर की उपासना करके आबू के राजा को हराकर वह वर्दनपुर गया, वहाँ उसने लूटा, नाश किया।'[18]

केवल योद्धा होने से काम नहीं चलता, बल्कि कुशल राजनीतिज्ञ होना भी जरूरी है। शक्तिसिंह राजनीति की बातों से अनजान थे। अत: कूटनीति को समझने के लिए राजनीति में उतरना जरूरी है। शक्तिसिंह को महाराणा समझाते हुए कह रहे हैं–'महारानी चिंतित हैं और मैं जानता हूँ' धीरे से महाराणा ने फिर कहा, 'इसीलिए कि आज महाराणा सांगा का पौत्र, वीर उदयसिंह का पुत्र सिसौदिया जगमल मेवाड़ छोड़कर चला गया। यही कष्ट महारानी को खाए जा रहा है।'

शक्तिसिंह ने कहा, 'लेकिन वह तो स्वार्थी था। सगा भाई था, फिर भी उसने अपने को सिंहासन का अधिकारी समझा। भाभी, वह यदि सिंहासन पर बैठ जाता तो मर्यादा भंग हो जाती।'[19]

औरंगजेब के राज्य के विस्तार का चित्रण करके उपन्यासकार ने तत्कालीन राजनीति को यथार्थ ढंग से प्रस्तुत किया है–'अब गोधुंद के छोटे गाँव में स्वतंत्रता का दीप जलाने के लिए ये लोग अपने लहू का स्नेह मातृभूमि के दीपक में टपकाने के लिए लालायित हो रहे थे, सिसौदिया कुल का जगमल उस तूफान को निमंत्रण देने आगरा चला गया था, जिसने स्वर्गीय महाराणा के समय में जौहर की लपटों को हरहराया था।'[20]

महाराणा साँगा का उत्तेजित स्वर और आक्रोश इस तथ्य की पुष्टि करता है कि उन्होंने अपना तन-मन-धन इस मातृभूमि के लिए समर्पित कर दिया था। वे आखिरी दम तक मेवाड़ की रक्षा में संलग्न रहे। अपने जीते-जी उन्होंने कभी मेवाड़ पर आंच न आने दी–'महाराणा का स्वर उठा। उन पर आवेश-सा छा गया था, 'आज मैं मातृभूमि की सौगंध खाकर कहता हूँ कि यह

जो जीत हुई है, मैं इसे जीत नहीं मानता। मेरी विजय उस दिन होगी जिस दिन मेवाड़ के खेतों में मेवाड़िनों की चूड़ियों की झंकार से क्वणित गीत हिंदोलित होंगे, जिस दिन मेवाड़ के नगरों में कोमलांग चपल बालक निर्भीक होकर धूलि में खेला करेंगे। उसी दिन यह संग्राम पूरा होगा।"[21]

संदर्भ

1. अनूप कपूर, राजनीति विज्ञान और सिद्धांत, पृ॰ 6
2. (सं.) श्याम सुंदरदास, हिंदी शब्दसागर (तीसरा भाग), पृ॰ 1643
3. (सं.) श्याम सुंदरदास, हिंदी शब्दसागर (चौथा भाग), पृ॰ 2927
4. (सं.) रामचंद्र वर्मा, मानक हिंदी कोश, पृ॰ 414
5. A.Appa Rai, The Substances of Politics, p. 3
6. K.M. Pannikar, State and the Citizen, p. 112
7. डॉ॰ चमनलाल गुप्त, यशपाल के उपन्यास के सामाजिक कथ्य, पृ॰ 78
8. डॉ॰ आदित्यप्रसाद त्रिपाठी, औपन्यासिक समीक्षा और समीक्षाएँ, पृ॰ 204
9. डॉ॰ चमनलाल गुप्त, यशपाल के उपन्यास के सामाजिक कथ्य, पृ॰ 208
10. डॉ॰ ब्रजभूषणसिंह, हिंदी के राजनीतिक उपन्यासों का अनुशीलन, पृ॰ 222
11. डॉ॰ हेमराज निर्मम, हिंदी के उपन्यास के शिखर, पृ॰ 177
12. डॉ॰ रमेश तिवारी, हिंदी-उपन्यास का साहित्य का सांस्कृतिक अध्ययन, पृ॰ 224
13. (संपा॰) अशोक शास्त्री, रांगेय राघव की संपूर्ण औपन्यासिक जीवनियाँ, भाग-1, पृ॰ 18
14. वही, पृ॰ 314
15. वही, पृ॰ 317
16. वही, पृ॰ 405
17. वही, भाग-2, पृ॰ 505
18. वही, पृ॰ 563
19. वही, भाग-3, पृ॰ 980
20. वही, भाग-3, पृ॰1001
21. वही, भाग-3, पृ॰1064

संतोषकुमार शर्मा
ई.-27, शताब्दीनगर
अलीगढ़-202001

रामकुमार घोटड़ की लघुकथाओं में चित्रित नारी-शोषण

संतोषकुमार शर्मा

नारी की देह समाज-विस्तार के हेतु बनी माँ की देह ही है, जो नवदेहों के नए प्रदीप संजोती रहती है–

नारी का तन माँ का मन है,
जाति-वृद्धि के लिए विनिर्मित,
नारी है रूप-सृजन की प्यासी।[1]

मातृत्व की स्निग्ध छाया शिशु के लिए ही नहीं, अपितु समस्त विश्व के लिए भी निरापद है। हँसता हुआ बच्चा तो सभी को अच्छा लगता है, किंतु माँ को उसका रोना भी प्यारा लगता है। माँ को लगता है, यह रुदन उसी की आत्मा की पुकार है। यह उसका कोई अपना है, जो रो-रोकर उसे ही बुला रहा है। इस अपनत्व पर उसे गर्व होता है, झुंझलाहट नहीं–

तुम कहते हो मुझको इसका रोना नहीं सुहाता है
मैं कहती हूँ इससे, अनुपम सुख छा जाता है।[2]

त्याग और वात्सल्य की इस पवित्र मूर्ति को वासना ने आज सर्वथा कलुषित कर दिया है। किसी युग के समाज में स्त्रियों का स्थान उच्च प्रतीत होता है तो किसी युग में हम उन्हें निम्न रूप में पाते हैं। विशेष रूप से वैदिककाल से लेकर बाद के कालों को देखने पर नारी की स्थिति का आभास होता है। नारी का स्थान पूजनीय हुआ। महाकवि जयशंकर प्रसाद ने इसी को लक्षित कर कहा–

नारी तुम केवल श्रद्धा हो, विश्वास रजत नग पग पल में,
पीयूष स्रोत-सी बहा करो, जीवन के सुंदर समतल में।[3]

'आज की शिक्षित नारी समय और शिक्षा दोनों के महत्त्व को जानती है। आज प्रत्येक क्षेत्र में नारी की सक्रिय भूमिका देश के निर्माण में लगी है। शिक्षा, चिकित्सा, तकनीकी, वैज्ञानिक, कला, कविता, साहित्यसृजन सभी क्षेत्रों में नारी-शक्ति विद्यमान है।'[4] पुरुष-प्रधान समाज ने महिलाओं को केवल समाज में परिवर्तन किया और महिलाएँ घर से बाहर अपने सांस्कृतिक-सामाजिक स्तर, शिक्षा, दहेज, घूँघट जैसे विषयों पर सामाजिक कार्यक्रमों में मुखर रूप से बोलने लगीं। आज की नारी ने भी घर और बाहर के माहौल को बदलने में मदद की।'[5]

रामकुमार घोटड़ की लघुकथाओं में नारी के लगभग हर पक्ष का चित्रण हुआ है। उन्होंने नारी की हर समस्या का वर्णन करके लघुकथाकार ने अपनी नवोन्मेषशालिनी प्रतिभा का परिचय दिया है। लघुकथाओं को पढ़कर ऐसा प्रतीत होता है कि उन्होंने स्वयं इन समस्याओं को प्रत्यक्ष देखा है। वस्तुतः पुरुष समाज की मानसिकता को बदलने में अभी काफी समय लगेगा। उनकी

लघुकथाओं में नारी के प्रति पुरुष के बदलते दृष्टिकोण, नारी के दैहिक शोषण और पुरुष के दोहरे व्यक्तित्व आदि का चित्रण यथार्थ के धरातल पर हुआ है। लघुकथाकार ने अपनी लघुकथाओं में नारी-जीवन के विविध पक्षों का चित्रण किया है। नारी के प्रति पुरुष के बदलते दृष्टिकोण को उन्होंने बखूबी वर्णित किया है और कहा है कि पुरुष का नारी के प्रति दृष्टिकोण हमेशा एक-सा रहता है। उन्होंने 'धंधे वाली' शीर्षक लघुकथा में चित्रित किया है कि पुरुष ही नारी को वेश्यावृत्ति की ओर धकेलता है। अकेली स्त्री का जीना दूभर कर दिया जाता है। फिर उसके पास वेश्या बनने के सिवाय कोई ओर चारा नहीं रह जाता। एक वेश्या के जीवन की मार्मिकता का चित्रण इन शब्दों में हुआ है–

'मैंने एक धंधे वाली से पूछा–'तुम सुंदर हो, स्वस्थ हो, फिर यह धंधा क्यों करती हो?'

'बाबू! मैं पहले दूसरा काम करती थी, फिर आप लोग कहा करते थे, सोने जैसी काया ले मेहनत-मजदूरी करती हो, चाहो तो मालामाल हो सकती हो। बाबू उस समय न तन पर पूरा वस्त्र था, न पेट में भरपेट अन्न।

आज मैं कितनों की भूख मिटाया करती हूँ।' वह खिलखिलाकर हँसती हुई बोली, 'भूख मुझसे कोसों दूर है।'

'मैं विस्फारित नेत्रों से उसके सुंदर चमकीले दाँतों को देखता रहा।'[6]

इसी प्रकार 'बदनाम' शीर्षक लघुकथा में भी लघुकथाकार ने इसी दृष्टिकोण का वर्णन करते हुए लिखा है कि नारी कितना ही त्याग कर ले, लेकिन उसके इस त्याग को वासनात्मक दृष्टि से ही देखता है–

'भीड़ मक्खियों की तरह खून से लथपथ बूढ़े के साथ चिपटी जा रही थी। बूढ़ा कराहट के साथ अंतिम इच्छा प्रकट कर रहा था–'मुझे एक जवान लड़की का चुंबन चाहिए।'

भीड़ हँस दी... बूढ़ा ठरकी है... साला मौत के वक्त भी कामुक ख्याल सँजोए है।

बूढ़ा भीड़ की सहानुभूति खो चुका था।

समीप से गुजरती तीन लड़कियों के कानों में बूढ़े की अंतिम इच्छा की भनक पड़ गई। एक ने अपनी ऊँची हील के सैंडिल उतारे और जिंदा लाश के पास घुटनों के बल बैठकर अपने होठों की तरफ झुका दिया। तुरंत ही बूढ़े ने आखरी हिचकी ले डाली। लोग बूढ़े की आत्मा के लिए तो शांति माँगने लगे मगर लड़की को लेकर उनकी आँखों में जुगुप्सा थी–वेश्या होगी साली!'[7]

क्योंकि पुरुष समाज वेश्या को 'रंडी' कहकर उसका पग-पग पर अपमान करता है अतएव वेश्याएँ भी अपने आपको 'सैक्स वर्कर' कहलवाना ज्यादा पसंद करती हैं, क्योंकि इज्जत तो हर किसी की होती है–

'ए, चल आ जा।'

'नहीं साब रात जास्ती हो गई है।'

'ए, नखरे मत कर! जल्दी कर रुपए थोड़े ज्यादा ले लेना।'

'नहीं साब, रुपये की बात नहीं। आज दस को निपटाया। मन नहीं।'

'ए साली रंडी कहीं की, नखरे करती है।'

'गाली नहीं देने का, पेपर नहीं पढ़ते क्या साब? 'सेक्स वर्कर' बोलने का। क्या?'[8]

इसी प्रकार 'नपुंसक लोग' लघुकथा में भी इसी पुरुष-प्रधान समाज की तुच्छ मानसिकता का वर्णन किया है। अमीर लोग औरत को केवल भोग की वस्तु समझते हैं। उन्हें

उनकी भावनाओं से कुछ लेना-देना नहीं है–'दिनभर रियाज करके शबनम थक चुकी थी। रात को बहुत बड़ा मुजरा जो था। आज नगर के बहुत बड़े सेठ के पुत्र को उसकी नथ उतारने की रस्म अदा करनी थी। शबनम से 'शब्बो जान' बनने वाली थी वह।

सेठ बड़ी शान से उसके कमरे में आए। बड़े अंदाज से उसका घूँघट उठाया। वह सोच रही थी–हर रात इसी तरह रंगीन होगी और हर रात उसका विवाह होगा। अंतर की वेदना उसकी कमल जैसी आँखों से मोती बन ढुलक पड़े। सेठ ने आँसुओं की कीमत लगाई, 'शब्बो जान! तुम्हारे ऊपर मेरी दौलत न्यौछावर है। मैं स्वयं तन-मन से तुम्हारा हूँ।'

शबनम चिहुँक उठी तो शादी कर लो सेठ। सेठ चुप था। सारे आश्वासनों को वह भूल बैठा था। तन-मन-धन न्यौछावर करने वाला सेठ भला कैसे वेश्या-पुत्री को पत्नी बना सकता था? उसका पत्नी बनने का स्वप्न अब भी अधूरा था।'[9]

'नारी के प्रति' शीर्षक लघुकथा में लघुकथाकार ने नारी की भावनाओं का वर्णन बखूबी किया है। वह कहता है कि नारी अपनी इज्जत बचाने के लिए अपनी जान भी न्यौछावर कर देती है। लेकिन पुरुष-प्रधान समाज उसकी भूख को नहीं देखता, उसे केवल अपनी भूख दिखाई देती है–'सेठ जी, कुछ खाने को दे दो... बच्चा बहुत भूखा है...।' सेठ ने एक ही पल में उसके पूरे शरीर का निरीक्षण कर डाला और फिर खिसियाया–'आ जा, अंदर आ जा, बहुत कुछ दूँगा तुझे खाने को...।' मेरा मन नारी के प्रति श्रद्धा से भर उठा, जो अपने बच्चे के लिए अपनी इज्जत भी।'[10]

एक वेश्या द्वारा पूरी मर्द जात को गाली देना अथवा उसकी मर्दानगी को ललकारना एक नारी के स्वाभिमान का ही प्रतीक है। नारी जब जागरूक हो जाती है तो वह पूरे पुरुष समाज को ललकारते हुए कहती है कि–

'कोठे पर...

उसने वेश्या से पूछा–

'रानी..। अपना नाम क्या है?'

थोड़ी देर बाद... उसने फिर पूछा–'बाबू! अब तो अपना नाम बताते जाओ।'

'अरे कल भी तो आ रहा हूँ... जल्दी क्या है?'

उसने सीढ़ियाँ उतरते-उतरते जवाब दिया।

इतना सुनते ही... वह चिल्लाते हुए बोली–

'तू क्या बताएगा भड़वे...मैं शताब्दियों से जानती हूँ तेरा नाम, नाम मर्द ही है न...मर्द.. .साले! इन्हीं नालियों में पड़ी है तेरी मर्दानगी।'[11]

समाज भ्रष्ट से भ्रष्टतम होता जा रहा है। नारी पेट पालने के लिए अपना जिस्म तक बेच देती है। पुरुष समाज केवल इसी ताक में रहता है कि कब नारी की मजबूरी का फायदा उठाया जाए। वास्तव में पुरुषों की भ्रष्ट सोच के कारण ही नारी ऐसा करने पर मजबूर हो जाती है–'घोर सुनसान बस्ती में एक औरत दो व्यक्तियों के साथ बुरी तरह झगड़ रहीं थी। मैंने जाकर उन्हें अलग-अलग किया।

'क्यों लड़ रहे थे?'

'अ.... अ.... जनाब पैसे दे रहे हैं, परंतु यह इस समय मानती नहीं अपनी नौकरी के लिए!'

'तुम्हें क्या कहना है?' औरत से पूछा।

'तुम्हें कोई देखता नहीं?'

'पिताजी पहरा देते हैं।'

'तुम्हें पुलिस को कहना चाहिए।'

'उनका भी तो हिस्सा है।'[12]

'खून और समाज' शीर्षक लघुकथा में इसी भ्रष्ट समाज का यथार्थ चित्रण करती है। सामाजिक बंधन में बँधा हुआ व्यक्ति अपने संबंधों को नहीं कायम रख पाता–'बोलो चमेली बाई, क्या तुम हमारी रखैल बनकर रहने को तैयार हो? सारी जिंदगी रानी बनकर राज करोगी।'

'नहीं! ऐसा संभव नहीं।'

'आखिर क्यों?'

'यह नहीं बता सकती, पर इतना जरूर कहूँगी इस दलदल से निकल भागो, यह शरीफों की बस्ती नहीं है।'

'पर तू तो शरीफ है, है तो एक वेश्या की ही बेटी। मेरे लिए इतना फिक्र क्यों?'

'इसलिए कि मैं वेश्या के पेट से जरूर पैदा हुई हूँ परंतु, हमारा और तुम्हारा बाप एक है। मैं तुम्हारे पिताजी की सगी बेटी हूँ। मेरी माँ तुम्हारे इज्जतदार बाप की सारी जिंदगी रखैल रही।'

उसके दिमाग में तेज घंटियाँ बजने लगीं। उसका दिमाग कह रहा था निकल ले चल, अपनी बहन को इस लज्जित के कोठे से। लेकिन सामाजिक बंधन उसे दूर खींचे ले जा रहा था–शरीफों की बस्ती की ओर.....।'[13]

इसे दुर्भाग्य ही कहा जाएगा कि न्याय करने वाला ही घोर अन्याय करता है। एक जेठ अपनी भाभी का बलात्कार करता है। वह नारी कहाँ जाए? क्योंकि सुनवाई करने वाली पंचायत का वह स्वयं मुखिया है। पुरुष-प्रधान समाज की इस तथाकथित न्यायपूर्ण नीति का वर्णन 'बलात्कार' शीर्षक लघुकथा में हुआ है–'कितने दिनों से पूछ रही हूँ कि तू इतनी डरी-डरी-सी क्यों रहती है?'

'क्या कहूँ? रात-दिन जब देखो तब बलात्कार की यातना भोगती रहती हूँ।'

'बलात्कार की?'

'हाँ! बलात्कार!

'यह तो अच्छी बात नहीं है?'

'मैं क्या करूँ? कहाँ जाऊँ? किससे कहूँ? मुझ जैसी नि:सहाय विधवा औरत की कौन मदद करेगा?'

'तेरा जेठ गाँव की पंचायत का मुखिया है। उससे सारा गाँव डरता भी है। तू लाज-शर्म छोड़कर अपने जेठ को अपनी विपदा क्यों नहीं कहती?''

'उसकी आँखें भीग गईं। 'मैं अपने जेठ की बातें ही तो बता रही हूँ।'[14]

गाँव का जमींदार या मुखिया नारी का भोग करके उसे मरणासन्न स्थिति में छोड़ देता है। रामौतार की बेटी पर बुरी नजर पड़ते ही छोटे जमींदार ने उसके साथ भी जबरदस्ती करने की कोशिश की, लेकिन रामौतार बड़ी कुशलता से उन्हें भगाकर अपनी बेटी की इज्जत बचाने की भरपूर कोशिश करता है–'छोटे जमींदार के गाँव आते ही रामौतार पस्वां की जान कलेजे को आ गई। वह भगवान के आगे हाथ जोड़ता, मिन्नतें करता। उसके जल्दी शहर लौट आने की मन्नतें मानता। वह रातभर

जागता। दिन में गायत्री को दहलीज से बाहर कदम न रखने देता। आधी रात को छोटे जमींदार के कारिंदे छत से कोठरी में घुस गए। गायत्री की चीख कारिंदे के मजबूत हाथों में 'तिसलकर' रह गई। 'जाओ रामौतार! आज तुम हवेली के 'मेहमान' बनो। आज की रात तो हम तुम्हारी ही कोठरी में सोएँगे या गायत्री को ही हवेली ले चलते हैं।' छोटे जमींदार ने 'मक्कारी हँसी' हँसते हुए कहा।

रामौतार की आँखों से 'आँसू' नहीं, 'खून' छलकने लगा। 'साले! बुड्ढे! 'जवान' बनता है!'–कहकर कारिंदे जैसे ही गायत्री को हवेली की ओर ले जाने को हुए कि मौका पाकर उसने अपने दरवाजे पर रखी 'लाठी' उठाई।'[15]

गाँव के मुखिया ही नारियों के शोषण में अपना समय बिताते हैं। उन्हें लगता है कि सभी नारियों पर उनका अधिकार है। सुखिया का गाँव के मुखिया ने कई बार दैहिक शोषण किया। वह गाँव के मुखिया को ललकारती है और अंततः मुखिया का कत्ल कर देती है–'तभी सुखिया हाथ में हँसिया लिए भीड़ को चीरती हुई कहने लगी कि–'जब तक गाँव में ठाकुर जैसे दरिंदे मौजूद हैं, इस गाँव के लिए कोई भी मास्टर आदर्श नहीं हो सकते। हर आदर्श पुरुष की वो हत्या करवाते रहेंगे और मेरी जैसी सुखिया की इज्जत के साथ खिलवाड़ करते रहेंगे।'

आगे सुखिया ने कहा–'आज मैं कसम खाकर आई हूँ। ठाकुर साहब की हत्या करूँगी और इस गाँव के लिए मैं स्वयं एक आदर्श कायम करूँगी भले ही हमें फाँसी क्यों न हो जाए?'

उसके कहते-कहते ठाकुर सँभल तो चुका था, किंतु सुखिया के अचूक निशाने का वह कमाल ही था कि ठाकुर की मोटी गरदन में हँसिया की धार चिपक चुकी थी।'[16]

संदर्भ

1. सुमित्रानंदन पंत, स्वर्ण किरण, पृ॰ 39-40
2. डॉ॰ सावित्री डागा, आधुनिक हिंदी मुक्तक काव्य में नारी, पृ॰ 139
3. जयशंकर प्रसाद, कामायनी, पृ॰ 17
4. डॉ॰ सुधा जैन, नारी : शिक्षा परिवर्तन का एक माध्यम, पृ॰ 16
5. डॉ॰ शशि मिश्रा, महिला सशक्तिकरण : दशा और दिशा, पृ॰ 24
6. संपा॰ रामकुमार घोटड़, अपठनीय लघुकथाएँ, पृ॰ 20
7. वही, पृ॰ 23
8. वही, पृ॰ 29
9. वही, पृ॰ 33
10. वही, पृ॰ 38
11. वही, पृ॰ 49
12. वही, पृ॰ 61-62
13. वही, पृ॰ 84
14. वही, पृ॰ 100
15. वही, पृ॰ 55
16. संपा॰ डॉ॰ रामकुमार घोटड़, दलित समाज की लघुकथाएँ, पृ॰ 33

ई.-27, शताब्दीनगर
अलीगढ़-202001

अंतर्राष्ट्रीय साहित्य कला मंच, मुरादाबाद द्वारा आयोजित अंतर्राष्ट्रीय हिंदी संगोष्ठी : 'हिंदी : दशा और दिशा' संपन्न

9 अक्टूबर, 2014 को चेन्नै स्थित मद्रास क्रिश्चियन कॉलेज, चेन्नै के विशाल सभागार में अंतर्राष्ट्रीय साहित्य कला मंच, मुरादाबाद (उ॰प्र॰) द्वारा आयोजित अंतर्राष्ट्रीय हिंदी संगोष्ठी– 'हिंदी : दशा और दिशा' संपन्न हुई। इस संगोष्ठी का आयोजन अंतर्राष्ट्रीय साहित्य कला मंच, तमिलनाडु हिंदी अकादमी और मद्रास क्रिश्चियन कॉलेज, चेन्नै के भाषा विभाग ने संयुक्त रूप से किया।

अंतर्राष्ट्रीय हिंदी संगोष्ठी की अध्यक्षता प्रख्यात साहित्यकार डॉ॰ बालशौरि रेड्डी (चेन्नै) ने की और मुख्य अतिथि के रूप में वैदिक क्रांति परिषद् के राष्ट्रीय अध्यक्ष डॉ॰ आनंद सुमन सिंह, प्रधान संपादक 'सरस्वती सुमन', हिंदी त्रैमासिकी, देहरादून (उत्तराखण्ड) ने पधारकर संगोष्ठी को ऊँचाइयाँ प्रदान कीं।

संगोष्ठी का शुभारंभ श्री गणेश स्तुति और माता सरस्वती की वंदना तथा अतिथियों द्वारा दीप प्रज्वलन के साथ हुआ। डॉ॰ महाश्वेता चतुर्वेदी (बरेली) ने सरस्वती वंदना और श्रीगणेश स्तुति प्रस्तुत की। तत्पश्चात् डॉ॰ करुणा पांडेय, श्री विवेक 'निर्मल' और श्री वीरेंद्र 'ब्रजवासी' जी ने 'मंच' की ओर से सभी अतिथियों का बैज लगाकर स्वागत किया तथा अतिथियों को रुद्राक्ष की माला पहनाकर अभिनंदन किया। मद्रास क्रिश्चियन कॉलेज, चेन्नै के प्राचार्य डॉ॰ आर॰डब्ल्यू॰ अलेक्जैण्डर जेसुदासन ने सभागार में उपस्थित सभी अतिथियों का स्वागत एवं अभिनंदन किया। संगोष्ठी की संयोजिका डॉ॰ वी॰ जयलक्ष्मी, प्राध्यापिका हिंदीभाषा विभाग, मद्रास क्रिश्चियन कॉलेज, सहसंयोजक डॉ॰ एस॰ मणिकंठन, महासचिव तमिलनाडु हिंदी अकादमी, चेन्नै और डॉ॰ मीना कौल ने पृथक्–पृथक् सभागार में उपस्थित सभी अतिथियों का स्वागत एवं अभिनंदन किया। 'मंच' की आख्या डॉ॰ रामगोपाल भारतीय ने प्रस्तुत की।

अमेरिका से पधारे कार्यक्रम के विशिष्ट अतिथि श्री प्राण जग्गी, डॉ॰ गुरनाम कौर बेदी (अमृतसर), मुख्यवक्ता प्रो॰ हरमहेंद्र सिंह बेदी, पूर्व आचार्य हिंदी, गुरुनानक देव विश्वविद्यालय, अमृतसर (पंजाब), मद्रास क्रिश्चियन कॉलेज के प्राचार्य डॉ॰ आर॰डब्ल्यू॰ अलेक्जैण्डर जेसुदासन सहित सभी मंचस्थ अतिथियों का स्वागत रुद्राक्ष की माला भेंट करके किया गया।

संगोष्ठी के आरंभ में 'मंच' द्वारा संपादित–ग्रंथ 'हिंदी : दशा और दिशा' का लोकार्पण मंचस्थ अतिथियों द्वारा किया गया। तत्पश्चात् 'स्वामी विवेकानंद : चिंतन और विचार' प्रो॰ हरमहेंद्र सिंह बेदी, 'संस्कृति के कमल' डॉ॰ महेश 'दिवाकर' एवं डॉ॰ बद्रीनाथ 'पहाड़ी', 'दशानन के देश में' (श्रीलंका यात्रवृत्त) 'अनुशासन के देश में' (सिंगापुर यात्रवृत्त), 'वीरबाला अजबदे पंवार' (खण्डकाव्य) सभी डॉ॰ महेश 'दिवाकर', 'कमलेश्वर का कहानी साहित्य' डॉ॰ कौशलकुमारी, 'लम्हों का दरिया' डॉ॰ सुमन अग्रवाल, 'धुंध में डूबा शहर' सं॰ डॉ॰ बलविन्दर सिंह, 'मंदाकिनी'

सं॰ डॉ॰ महाश्वेता चतुर्वेदी और 'वहाँ पर गीत उग आये' शिवशंकर यजुर्वेदी द्वारा रचित पुस्तकों का लोकार्पण भी मंचस्थ अतिथियों द्वारा किया गया।

संगोष्ठी का शुभारंभ मुख्य वक्ता प्रो॰ हरमहेंद्र सिंह बेदी द्वारा प्रस्तुत बीज वक्तव्य के साथ हुआ। डॉ॰ बेदी ने अंतर्राष्ट्रीय एवं राष्ट्रीय स्तर पर हिंदी के वैश्विक महत्त्व को बताते हुए राष्ट्रभाषा के रूप में हिंदी को प्रतिष्ठित करने तथा राष्ट्र संघ की भाषायी अनुसूची में हिंदी को शामिल करने हेतु भारतीयों को दायित्वबोध कराया। डॉ॰ बेदी ने कहा कि यदि हिंदी को यू॰एन॰ओ॰ की भाषायी अनुसूची में शामिल होने के साथ-साथ उसके राष्ट्रभाषा के पद पर प्रतिष्ठित होने से अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर भारत का सम्मान बढ़ेगा तथा भारत में प्रांतीय भाषाएँ भी प्रगति की ओर अग्रसर होंगी। डॉ॰ बेदी ने कहा कि भारत सरकार को राजनीतिक मतभेद भुलाकर हिंदी को राष्ट्रभाषा बनाना चाहिए तथा इसे संयुक्त राष्ट्र संघ की भाषायी अनुसूची में शामिल कराना चाहिए। प्रांतीय सरकारों को बिना भेदभाव के अपने राष्ट्रीय दायित्व को निभाते हुए इस ओर अपना सारस्वत सहयोग करना चाहिए।

अमेरिका से पधारे कार्यक्रम के विशिष्ट अतिथि डॉ॰ प्राण जग्गी ने अमेरिका सहित विश्व के अनेक देशों में हिंदी की स्थिति को बताते हुए इसके अंतर्राष्ट्रीय महत्त्व को इंगित किया। विशिष्ट अतिथि डॉ॰ गुरनाम कौर बेदी ने भारत के विविध प्रांतों में हिंदी की स्थिति पर चर्चा करते हुए इस आयोजन की महत्ता पर प्रकाश डाला।

मुख्य अतिथि डॉ॰ आनंद सुमन सिंह (उत्तराखंड) ने हिंदी के महत्त्व और हिंदी की दृष्टि से भारत की अंतर्राष्ट्रीय प्रगति को विस्तार से इंगित किया। उन्होंने भारत सरकार से अनुरोध किया कि हिंदी को राष्ट्रभाषा के रूप में प्रतिष्ठित करने एवं इसे यू॰एन॰ओ॰ की भाषायी अनुसूची में शामिल कराने हेतु त्वरित ठोस प्रयास करने चाहिए।

कार्यक्रम अध्यक्ष डॉ॰ बालशौरि रेड्डी ने आज़ादी के पश्चात् हिंदी की दशा और दिशा पर प्रकाश डालते हुए कहा कि अब वह दिन दूर नहीं, जब हिंदी भारत की राष्ट्रभाषा के पद पर शीघ्र प्रतिष्ठित होगी तथा यू॰एन॰ओ॰ की भाषायी अनुसूची में भी शामिल होगी। उन्होंने कहा कि हिंदी का किसी विदेशी भाषा से कोई विरोध नहीं है। हिंदी पूरे भारत की सर्वमान्य भाषा है, यह सत्य है। अत: हम सब मिलकर हिंदी के विकास के लिए निरंतर कार्य करें। उन्होंने इस आयोजन के लिए मंच की भूरि-भूरि प्रशंसा की और सभी सहयोगियों एवं हिंदीप्रेमियों के प्रति आभार प्रकट किया।

संगोष्ठी में सहभागिता करने वाले लगभग 100 हिंदी-प्रेमियों, साहित्यकारों, शिक्षाविदों, प्राचार्यों, आचार्यों और शोधार्थियों ने अपने-अपने शोधपत्र प्रस्तुत किए। कार्यक्रम के अंत में अतिथियों, हिंदी-प्रेमियों, साहित्यकारों और शिक्षाविदों को 'अंतर्राष्ट्रीय साहित्य कला मंच', तमिलनाडु हिंदी अकादमी और मद्रास क्रिश्चियन कॉलेज की ओर से सम्मानित किया गया तथा शॉल, सम्मान पत्र, प्रतीक चिह्न, रुद्राक्ष की माला आदि भेंट किए गए। संगोष्ठी का संयोजन एवं सहभागिता संयुक्त रूप से डॉ॰ महेश 'दिवाकर', डॉ॰ बालशौरि रेड्डी, डॉ॰ वी॰ जयलक्ष्मी, डॉ॰ सी॰ मणिकंठन, डॉ॰ रामगोपाल भारतीय, डॉ॰ मीना कौल, डॉ॰ प्रदीप दीक्षित, डॉ॰ ओमप्रकाश सिंह, डॉ॰ करुणा पांडेय, डॉ॰ महाश्वेता चतुर्वेदी, श्री विवेक निर्मल, डॉ॰ मधुबाला सक्सेना, डॉ॰ रचना शर्मा, डॉ॰ ऋतु दीक्षित, डॉ॰ मधु चतुर्वेदी, डॉ॰ मधु मंजरी दुबे, डॉ॰ नीलम शर्मा, डॉ॰ चंद्रा पंवार, सुश्री अनीता पंवार, श्री अनिल सिसौदिया, श्री जगनसिंह, डॉ॰ यू॰के॰चतुर्वेदी, डॉ॰ सूरजकांत

सक्सेना, श्री अनिल पांडेय, डॉ॰ जयति देवी, श्री वीरेंद्र 'ब्रजवासी', डॉ॰ जंगबहादुर पांडेय, डॉ॰ विद्याविंदु सिंह, श्री सुरेश सिंह, श्री इंद्रप्रकाश 'अकेला', श्री देवकरन राजपुरोहित आदि ने की। संचालन डॉ॰ रामगोपाल भारतीय, डॉ॰ प्रदीप दीक्षित, डॉ॰ मीना कौल, विवेक 'निर्मल' आदि ने किया। अंत में कविसम्मेलन का आयोजन भी किया गया, जिसमें स्थानीय व बाहर से आए हुए कवियों ने काव्यपाठ किया। मंच के संस्थापक अध्यक्ष डॉ॰ महेश 'दिवाकर' ने सबके प्रति आभार अभिव्यक्ति की।

नाम	राज्य	फोन
1. डॉ॰ उषा श्रीवास्तव	कर्नाटक	09884487560
2. डॉ॰ एम॰कल्याणी	तमिलनाडु	09176208290
3. डॉ॰ टी॰ई॰एस॰ राघवन	तमिलनाडु	04428442126
4. डॉ॰ जमुना कृष्णराज	तमिलनाडु	09444400820
5. डॉ॰ एस॰ बशीर	तमिलनाडु	09437270533
6. डॉ॰ ए॰वी॰ शिवकुमारी	तमिलनाडु	09940368880
7. डॉ॰ महेश्वरी रंगनाथन	तमिलनाडु	09003160614
8. डॉ॰ के॰ चेल्लम	तमिलनाडु	09043034565
9. श्री आर॰ राजवेल	तमिलनाडु	09246521546
10. श्री एस॰ रमेश	तमिलनाडु	09442354847
11. डॉ॰ के॰ सुलोचना	तमिलनाडु	09962320119
12. श्री टी॰एस॰एस॰ नारायण राजु	तमिलनाडु	09246521546
13. सुश्री आर॰ चेल्लम	तमिलनाडु	08015510365
14. श्री भूपेंद्र भानु	तमिलनाडु	07299788003
15. श्री वी॰के॰ अग्रवाल	तमिलनाडु	09840112226
16. डॉ॰ आर॰एम॰श्रीनिवासन	तमिलनाडु	09176092616
17. डॉ॰ बालाशौरि रेड्डी	तमिलनाडु	09962113178
18. डॉ॰ सी॰ मणिकंठन	मिलनाडू	09840203213
19. डॉ॰ आर॰डब्ल्यू॰ अलेक्जैण्डर जेसुदासन	तमिलनाडु	
20. डॉ॰ वी॰ जयलक्ष्मी	तमिलनाडु	09445181971
21. डॉ॰ के॰एस॰ फरहतुल्ला	आंध्र प्रदेश	
22. डॉ॰ चौव्वाकुला नरसिंहमूर्ति	आंध्र प्रदेश	
23. डॉ॰ बी॰एस॰ सुमन अग्रवाल	तमिलनाडु	09840082901
24. डॉ॰ महेशकुमार अग्रवाल	तमिलनाडु	
25. डॉ॰ रेखा अग्रवाल	तमिलनाडु	
26. डॉ॰ शैलेश पांडेय	तमिलनाडु	
27. डॉ॰ एम॰ शेषन	तमिलनाडु	
28. डॉ॰ एन॰ सुंदरम	तमिलनाडु	09444896916
29. डॉ॰ पी॰के॰ बालसुब्रमण्यम्	तमिलनाडु	09444814022
30. डॉ॰ शौरिराजन	तमिलनाडु	09840310997
31. डॉ॰ निर्मला एस॰ मौर्य	तमिलनाडु	

फेसबुक का कविता-संसार

आज का युग सूचना प्रौद्योगिकी का है, प्रबंधन का है। विज्ञान और तकनीक के बढ़ते प्रभाव वाले इस दौर में सोशल मीडिया का प्रभाव किसी से छिपा नहीं है। देश, काल, व्यक्ति के बीच व्याप्त दूरियों को निरंतर पाटने का काम इस माध्यम ने किया है। हालाँकि यहीं यह कहना भी जरूरी है कि इस माध्यम ने कुछ विसंगतियों को भी जन्म दिया है, किंतु एक दृष्टि से देखा जाए तो इस माध्यम ने अपने प्रयोक्ताओं को अपनी बात कहने का एक प्रभावी प्लेटफार्म तो उपलब्ध कराया ही है। देश, काल और आयु की दूरियों को पाटते हुए असंख्य पाठक-दर्शक भी मित्र के रूप में उपलब्ध कराए हैं, जिससे इसका यूजर निस्संदेह पहले के मुकाबले ताकतवर हुआ है। आप अपनी बात गद्य, पद्य जिस भी रूप में चाहें इस पर लिख सकते हैं और पढ़नेवाले उसे पढ़कर चाहें तो अपनी टिप्पणी दे सकते हैं, किसी और को पढ़ने के उद्देश्य से शेयर कर सकते हैं। फेसबुक इसी सोशल मीडिया का आज एक चर्चित बल्कि कहें कि सर्वाधिक चर्चित नाम बन चुका है तो अतिशयोक्ति न होगी। यह फेसबुक ही है जो प्रयोक्ताओं में इन तमाम गतिविधियों के लिए आज सर्वाधिक प्रयोग किया जा रहा है। फेसबुक आज हमें नित्य नए-नए कवियों-कवयित्रियों की प्रतिभाओं से परिचित कराता है, जब हम उनकी लिखी किसी कविता इत्यादि रचना को पढ़ रहे होते हैं। इस दृष्टि से हमें फेसबुक की महत्ता को स्वीकार करना ही पड़ेगा।

फेसबुक पर सक्रिय ऐसे ही कवियों-कवयित्रियों की रचनाओं का संकलन, संपादन कर उसे पुस्तकाकार प्रकाशित करने का एक महत्त्वपूर्ण प्रयास किया गया है। इस कविता-संग्रह के संपादक हैं लालित्य ललित और प्रकाशक हैं हिंदी साहित्य निकेतन बिजनौर, उत्तर प्रदेश। गौरतलब है कि लालित्य ललित नेशनल बुक ट्रस्ट दिल्ली में संपादक के पद पर कार्यरत हैं। संपादन के आधिकारिक अनुभव से लैस इनकी प्रतिभा का प्रमाण हम इस संग्रह में देखते हैं, जहाँ असंख्य कवियों-कवयित्रियों की मौजूदगी के बावजूद इन्होंने कुछ का चयन उनकी रचनाओं की गुणवत्ता के आधार पर किया और उनकी महत्त्वपूर्ण रचनाओं को पाठकों के लिए विशेष रूप से प्रिंट मीडिया के पाठकों के लिए जिनका फेसबुक की दुनिया से नजदीक का नाता नहीं होता उनके लिए पुस्तक के रूप में इसे प्रस्तुत करने का सराहनीय प्रयास किया है। इस संग्रह के लिए संपादक लालित्य ललित की जितनी प्रशंसा की जाए वह कम होगी। यहाँ यह जानकारी भी सुखकर है कि लालित्य ललित स्वयं एक बेहतरीन कवि हैं, किंतु अपनी कविताओं के साथ-साथ वे अपने समय के अन्य कवियों को भी गंभीरतापूर्वक पढ़ते हैं और उनका उत्साहवर्धन भी चाहते हैं। यह कृति अपने आपमें इसकी परिणति और प्रमाण है। लालित्य ललित महानगरीय जीवन की आपाधापी के बावजूद कितने सक्रिय और ऊर्जावान साहित्यकार हैं, इसका अहसास

हमें यह जानकर हो जाता है कि वो नित्य अपनी एक कविता फेसबुक के पाठकों-दर्शकों के लिए लिखते और पोस्ट करते हैं। कविता के साथ-साथ व्यंग्य-लेखन में भी उनकी गति है और इसका प्रमाण उनका अद्यतन व्यंग्य-संग्रह 'जिंदगी तेरे नाम डार्लिंग' का प्रकाशन है। बहरहाल! इस संग्रह की ओर लौटते हैं। इस संग्रह में कुल 85 कवियों की कविताएँ संकलित हैं। बारीकी से देखने पर पता चलता है कि इस संग्रह में कुल 21 कवियों और 64 कवयित्रियों की रचनाएँ संकलित हैं। यह आँकड़ा स्वयं कुछ कहता है। यह आँकड़ा यह बतलाता है कि पुरुषों की अपेक्षा महिलाएँ जीवन के अन्य क्षेत्रों के साथ-साथ फेसबुक पर भी अधिक सक्रिय हैं और सिर्फ सक्रिय ही नहीं हैं बल्कि अपनी रचनाओं से सुधी पाठकों के आकर्षण का केंद्र बन रही हैं। यह हमारे समाज के लिए संतोष का विषय है कि समाज में कहीं तो स्त्रियों को अपनी बात कहने-रखने की मुफीद जगह मिल पाई। वरना सारा स्थान तो दबंग पुरुषवर्ग ने हड़प रखा है। वैसे फेसबुक भी ऐसे मानसिक विकार वाले लोगों से अछूता नहीं रह सका है। किसी लड़की या स्त्री की फर्जी तस्वीर लगाकर फर्जी पहचान वाली पोस्ट से 'ही' या 'हाय' आदि संबोधन और चैटिंग इत्यादि के आमंत्रण से हममें से शायद ही कोई बचा हो। स्थिति तो कभी-कभी ऐसी भी हो जाती है, जब ऐसे लोगों से जान छुड़ाने की नौबत आ जाती है और वह बड़ा मुश्किल होता है, क्योंकि ऐसे लोग आसानी से आपका पीछा नहीं छोड़ते। खैर! हम मनुष्यों के बारे में यह भी एक सच है कि हमें आज तक जो भी शक्तियाँ मिली हैं, हमने उनका सदुपयोग कम और दुरुपयोग ही अधिक किया है। इसके साथ ही मैं यह भी कहना चाहता हूँ कि अपवाद हर देश और हर काल में होते रहे हैं और मैं यहाँ मुख्यधारा की बात कर रहा हूँ न कि अपवादों की। इन तमाम बातों के बावजूद यह मानने से शायद ही कोई इनकार करे कि फेसबुक ने, सोशल मीडिया ने अपने उपभोक्ताओं को सशक्त बनाया है। फेसबुक पर मौजूद ऐसे महत्त्वपूर्ण कवियों को ढूँढना और उनकी रचनाओं का चयन करना वास्तव में बहुत श्रमसाध्य कार्य है, जिसके लिए जौहरी जैसी पारखी नजर की आवश्यकता होती है।

लालित्य ललित ने संभावनाओं से भरपूर जिन कवियों को और उनकी कविताओं को छाँटकर हम तक पहुँचाया है वे वास्तव में बहुमूल्य रत्न जैसे हैं। इनमें बहुत दूर तक और बहुत देर तक जीवन के समर में डटे रहने की क्षमता है। इस संग्रह की कविताओं को पढ़ते हुए मैंने जो विशेष बात नोट की, वह यह कि प्रायः कवयित्रियों की कविताओं में स्त्री-मुक्ति, स्त्री-स्वातंत्र्य की छटपटाहट मौजूद है। कन्या-भ्रूणहत्या का भी सवाल उठाया गया है। आरंभ से देखें तो इस संग्रह की पहली कवयित्री हैं शहीद भगतसिंह विधि महाविद्यालय, बिठूर, कानपुर, उत्तर प्रदेश की कार्यवाहक प्राचार्य अंजलि दीक्षित। इनकी कविता एक लड़की की स्वतंत्र चेतना की अभिव्यक्ति है, जो अपने पंखों में लगी जंग को छुड़ाकर आसमान की ऊँचाई में स्वतंत्र हो उड़ना चाहती है। बहुत साफ है कि बंधनमुक्त जीवन ही स्त्री-जीवन की पहली अभिलाषा है। जन्म से लेकर मृत्यु तक जहाँ देखो स्त्री के लिए बंदिशें ही बंदिशें हैं। स्त्री करे भी तो क्या, जिए भी तो कैसे? वर्तमान समाज भी तो उसे चैन से स्वतंत्र होकर जीने की अनुमति नहीं देता। देश की आजादी को बेशक हम जितना भी मनाएँ और गौरवान्वित हों, जब तक आधी आबादी को सही मायने में आजादी नहीं मिलेगी, यह आजादी अधूरी है। भारतेंदु बाबू हरिश्चंद्र ने बहुत पहले ही कहा था नारि-नर सम होंहि...और वे आधुनिककाल के जनक कहे गए थे, किंतु

नारि-नर सम होंहि का सपना अभी अधूरा है जिसे आज की पीढ़ी, आज के भारत को पूरा करना है। आज का संवेदनशील मन (क्या स्त्री क्या पुरुष) यही सोचता है, यही लिखता है। अंशु रत्नेश त्रिपाठी अपनी कविता 'आशावादिता' में लिखती हैं–'निश्चित है/ हर क्षण बदलेगा/ तुम सपनों की कथा कहो तो'(पृष्ठ 13) वर्तमान समय और स्त्री के हालात के प्रति गहरा असंतोष भी कवयित्रियों ने व्यक्त किया है। अनामिका कनोजिया 'कितना जरूरी है' कविता में कहती हैं–'कितना जरुरी है यहाँ/ एक बेटी के लिए बाप/ बहन के लिए भाई/ पत्नी के लिए पति/ बिना इन रिश्तों के/ स्त्री के लिए जीवन अभिशाप है।'(पृष्ठ 16) वास्तव में एक स्त्री ही नहीं बल्कि संपूर्ण समाज के लिए ही यह स्थिति बेहद शोचनीय है, जहाँ स्त्री इतनी अधिक असुरक्षा, पराधीनता और परनिर्भरता के साथ जिंदगी जीने के लिए मजबूर है, लेकिन कोई करे भी तो क्या? यही सच है हमारे देश का! सौ फीसदी सच! ऐसे ही अभिशप्त जीवन की मार्मिकता को लखनऊ की अलका पांडेय ने अपनी कविता में उभारा है–'बड़ी हुई तो पाया/ नारी लोलुप दृष्टि से/ देखी जाती है/ माँ बुढ़ापे में बेसहारा हो जाती है/ उसके पति को परस्त्री ही भाती है/ बेटी भ्रूण में ही/ मार दी जाती है/ बहू दहेज के लिए/ जला दी जाती है/ खुलेआम निर्वस्त्र/ घुमाई जाती है।' (पृष्ठ 22) कवयित्री यथास्थितिवादियों को इस कविता के आखिर में सीधे-सीधे चुनौती देती हुई कहती है–'बात एक बराबर पर है/ तय तुमको अब करना है/ हाथ मिलाकर चलना है/ या दो-दो हाथ परखना है।' (पृष्ठ 23) यह आज की नारी है, जो अब पुरुष की अनुगामिनी नहीं, सहगामिनी बनकर जीवन जीने में यकीन रखती है। कवयित्री की आँखों में नारी का एक दूसरा रूप भी है जो उसी के शब्दों में देखें–'नारी एक फूल है/ जो काँटों के बीच भी खुशबू/ बिखेरती है/ नारी एक शांत झील है/ जो समेटे है सीने में अनगिनत/ हलचलें/ नारी एक बदरी है/ सूखा देख बरस जाती है"(पृष्ठ 23) इन सबके बीच कवि ओम नागर की कविता 'भूख का अधिनियम' भी ध्यान खींचती है। यह एक विचारपरक कविता है, जो हिंदीसाहित्य की प्रगतिशील कविता की याद दिलाता है–'अपनी पूरी भयावहता के साथ/ मौजूद रहनेवाला शब्द है भूख/ जीवन में कई-कई बार पूर्णविराम की तलाश में/ कौमाओं के अवरोध/ नहीं फलाँग पाती भूख"(पृष्ठ 28)

वास्तव में इस संग्रह की कविताएँ विविधरंगी हैं। जैसे वाराणसी की क्षमा सिंह की यह कविता जिसमें श्रम को सौंदर्य और शृंगार से जोड़कर अद्‌भुत सौंदर्य की रचना की गई है। 'धान रोपती औरतें/ गाती हैं गीत/ और सिहर उठता है खेत/ पहले प्यार की तरह/ धान रोपती औरतों के पद-थाप पर झूमता है खेत/ और सिमट जाता है/ बाँहों में उनकी/ रोपनी के गीतों में/ बसता है जीवन' यह कविता बहुत दूर तक और बहुत देर तक अपने प्रसंगों और शब्दों में भावमय क्षणों को समेटे पाठकों के मन-मस्तिष्क पर अपना प्रभाव छोड़ने में सफल है। 'मिट्‌टी का मोल जानती हैं/ धान रोपती औरतें/ खेत से चूल्हे तक/ चूल्हे से देह तक।'(पृष्ठ 35)

इस संग्रह के एक अन्य महत्त्वपूर्ण कवि हैं 'खुरशीद' खैराड़ी। इनकी पंक्तियाँ जो शेर और गजल के रूप में लिखी गई हैं, भी बहुत उम्दा और उल्लेखनीय हैं। 'खुद को कितना निर्बल समझे/ हम धागे को साँकल समझे' इसके आखिर में कवि कहता है–'साथ दिया फिर सच का मैंने/ लोग मुझे भी पागल समझे/ राहजनों ने फिर-फिर लूटा/ हम रस्ते को मंजिल समझे।'(पृष्ठ 37) ये पंक्तियाँ बहुत ही अर्थपूर्ण हैं और हमें या पाठकों को अक्सर याद आने योग्य हैं । गीतिका

गोयल की 'माँ' कविता भी बहुत मर्मस्पर्शी है। "माँ -/ जो मात्र शब्द ही नहीं/ स्वयं में/ संपूर्ण अर्थ भी है"(पृष्ठ 39) हम सबके इस दुनिया में आने के बाद माँ ही वह रिश्ता है जो सबसे पहले ईश्वर ने हमें प्रदान किया है और माँ का योगदान तो इतना अधिक है कि वह हमें 9 माह पूर्व से ही गर्भ से हमारा लालन-पालन करती रहती है। इसीलिए माँ से बढ़कर इस दुनिया में किसी को भी महत्त्वपूर्ण नहीं माना गया है। इस दुनिया में एक तरफ जहाँ इतनी कोमल भावनाएँ हैं वहीँ दूसरी तरफ अर्थ-आधारित युग से उत्पन्न विसंगतियाँ भी कुछ कम नहीं हैं। डॉ॰ ज्योत्स्ना की कुंडलियाँ इन विसंगतियों की ओर संकेत करती हैं–'कैसे-कैसे दे गई दौलत दिल पर घाव/ रिश्तों से मृदुता गयी जीवन से रस-भाव/ जीवन से रस-भाव कहें ऋतु कैसी आई/ स्वयं नीति गुमराह भटकती है तरुणाई/ स्वारथ साधें आप, जतन कर जैसे-तैसे/ लोभ दिखाए खेल, देखिए कैसे-कैसे"(पृष्ठ 40) विज्ञान के बढ़ते प्रभाव और असंतोष ने जिन नई समस्याओं को जन्म दिया है उनमे आतंकवाद भी एक बड़ी समस्या है। शायद ही कोई देश हो जो आतंकवाद की समस्या से अछूता हो। आतंकवाद को केंद्र में रखकर इंदौर के कवि डॉ॰ नंदलाल भारती ने एक कविता लिखी है 'डर'। इसमें आतंकवाद की भयावहता को बड़ी कुशलता से सामने रखा गया है–'मैं अकेला/ इस जंगल का साक्षी नहीं हूँ/ और भी लोग हैं,/ कुछ तो अंधा, बहरा, गूँगा बन बैठे हैं/ नहीं जमीर जाग रहा है/ आदमियत को कराहता देखकर/ यही हाल रहा तो वे खूनी पंजे/ हर गले की नाप ले लेंगे धीरे-धीरे,'(पृष्ठ 43) कवि अपने पाठकों को सावधान कर रहा है अपनी कविता के द्वारा।

हमारे समाज में अनादिकाल से दमित-प्रताड़ित औरतें अब अपनी स्वायत्तता, समानता के साथ जीवन जीना चाहती हैं। झारखंड के बोकारो की निशा चौधरी की कविता इसी संदर्भ में ध्यान खींचती है–'चलो आज एक सौदा कर लें/ सारे दुःख मेरे और सुख तुम्हारे/ क्या तुम भी ऐसा कहोगे/ कह सकते हो?'(पृष्ठ 50) पुरुष सदा से ही स्वार्थी रहा है। पुरुषों के वर्चस्व को, बड़प्पन को चुनौती देने का कवयित्री का यह अंदाज निराला है, अनूठा है। ऐसी ही एक कवयित्री हैं नीलम मेंदीरत्ता। इनकी कविताएँ अक्सर आकर्षित करती हैं और कभी-कभी चकित भी। इनकी कविताओं में एक अलग तरह की रवानगी है। इसे आप भी देखें–'जीने का मजा तो तब है/ जब दो जिस्म हों और एक जान हो/ वो जिंदगी कैसी जिंदगी/ जहाँ जिस्म दो हों/ मकान भी दो हों/ कमरे चार-चार हों/ और चेहरे दस-दस हों।'(पृष्ठ 52) दो जिस्म, चार कमरे और दस चेहरों के माध्यम से यह कविता प्रदर्शनप्रिय आभिजात्य समाज की कलई भली-भाँति खोलने में सक्षम है। यह कविता ऊपर से जितनी सरल है भीतर से उतनी ही अर्थपूर्ण। इसी संदर्भ में मैंने कहा कि नीलम की कविताओं की रवानगी अलग तरह की है। यह और इस जैसी अन्य कविताएँ पाठकों से एक अलग तरह की सजगता के साथ पढ़ने की माँग भी करती हैं। इस संग्रह से गुजरते हुए जिस अगली कविता और कवयित्री ने आकर्षित किया उसका नाम है नीलिमा शर्मा। देहरादून की नीलिमा शर्मा की 'चाबियाँ' बहुत ही बेहतरीन कविता है। इस कविता में चाबी के माध्यम से जिस तरह स्त्री की स्थिति को चित्रित किया गया है, वह अद्‌भुत है। यदि मैं कहूँ कि मुझे यह कविता संग्रह की विशिष्ट कविताओं में एक लगी तो गलत न होगा। 'चाबी स्त्रीलिंग वस्तु है/ उसका हश्र यही होता आया है/ सदियों से' (पृष्ठ 55) मैंने इस कविता को बार-बार पढ़ा। यकीन मानिए कविताओं के बीच किसी कविता को अगर दुबारा पढ़ने की सहज ही इच्छा

हो तो निश्चय ही कुछ तो बात होगी। जैसे हम किसी सुंदर मुखड़े या दृश्य को देखकर दुबारा देखने की इच्छा से सहज ही प्रेरित हो उठते हैं, कुछ उसी तरह से। तो नीलिमा शर्मा की लेखनी के लिए मैं तो यही कहूँगा–अल्लाह करे जोर-ए-कलम और भी ज्यादा ...।

संग्रह में जैसा कि मैंने पहले कहा कई रंगों की कविताएँ संकलित हैं। एक रंग जिसका जीवन में सभी को बड़ी बेसब्री से इंतजार रहता है वह है प्रेम का। प्रेम के रंग से सराबोर कविताएँ भी इस संग्रह में हैं। 'मैं फेसबुक पर हूँ' कविता के द्वारा पूनम शुक्ला ने प्रेम के रंग को अभियव्यक्त करने की सार्थक कोशिश की है–'प्रेम बिना नहीं कोई संबंध/ जीवन पुष्प है तो/ प्रेम है मकरंद'(पृष्ठ 63) कुछ प्रवासी भारतीयों की कविताएँ भी संग्रह में जगह बनाने में कामयाब रही हैं। विदेशी धरती और जीवन के एकालाप का मौन पूर्णिमा वर्मन की कविताओं में मुखर है–'इस अकेली शाम का/ मतलब न पूछो/ सर्द मौसम/ और फैला दूर तक एकांत सागर/ एक पुल/ थामे हुए हमको हमेशा'(पृष्ठ 65) ये क्षणिकाएँ हैं। इसी में आगे पूर्णिमा जी कहती हैं–'ताड़ के डुलते चँवर/ बैशाख के दरबार/ सड़कें हो रही सूनीं/ कि जैसे/ आ गया हो कोई तानाशाह'(पृष्ठ 66) इसी प्रकार अन्य कवयित्रियों में कैलिफोर्निया की मंजू मिश्रा भी अपनी कविता द्वारा दांपत्य जीवन की विसंगतियों को पाठकों के सामने रखने में सफल हुई हैं–'जब/ सात जन्मों के साथी/ खड़े हो जाते हैं/ एक-दूसरे के विरुद्ध/ तब छिड़ता है एक युद्ध/ हथियारों की तरह/ उछाली जाती हैं भावनाएँ/ और बन जाती हैं/ तमाशा सरेआम'(पृष्ठ 72) यहीं सुधा ओम ढींगरा जी कविता का भी उल्लेख करना चाहूँगा जिसका शीर्षक है 'उलझन'। इस कविता में कवयित्री ने समाज की परिवर्तनशीलता को लक्षित करने की कोशिश की है। आप भी देखिए –'घरों के क्षेत्र बढ़े, तो/ लोगों के ह्रदय सिकुड़ने लगे/ समृद्धि का मद चढ़ा, तो/ रिश्ते टूटने लगे/ भावनाएँ लुप्त हुईं, तो/ संवेग सूखने लगे/ कमरों की भीड़ बढ़ी, तो/ बुजुर्ग चुभने लगे/ संस्कारों का गणित उलझा, तो परिवार टूटने लगे'(पृष्ठ 132) इस प्रकार की कविताओं का संकलन संपादक कवि की प्रतिभा को प्रमाणित करता है। ऐसी कविताएँ समाज के यथार्थ से हमारा परिचय कराती हैं।

वैसे तो अभी कई कविताएँ हैं, जिनपर मैं बात करना चाहता था, किंतु स्थानाभाव के कारण पाठक स्वयं शेष कविताओं को पढ़कर इस संग्रह का मूल्यांकन करें। मैं इस आलेख के समापन से पूर्व सिर्फ दो कविताओं का उल्लेख करने का लोभ संवरण नहीं कर पा रहा हूँ। एक तो है माणिक की कविता जिसका शीर्षक है 'आदिवासी'। यह कविता अपने विषय और प्रस्तुति दोनों रूपों में उल्लेखनीय है। देसी ठाठ और देसी अंदाज के साथ माणिक ने इस कविता को रचने का काम किया है। कवि साप्ताहिक बाजार के दृश्य को प्रस्तुत करते हुए कहता है–'ये सातवें दिन के हाट भी/ बड़े गजब हैं/ हाँ इकलौते बड़े जरिए हैं/ मिलने-मिलाने/ गीत गाते दुःख बिसराने के/ रोचक साधन हैं खिलखिलाने के/ साधनहीनों का मन बहलाने के/ जरूरी साधन हैं हाट" (पृष्ठ 78) अब आखिर में सुभाष नीरव जी की कविता 'नाखून' से अपनी बात पूरी करूँगा। नाखून शीर्षक कविता पढ़ते हुए आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी का निबंध 'नाखून क्यों बढ़ते हैं' अचानक याद आता है, क्योंकि नाखून पर मैंने कम लिखा हुआ पढ़ा है। नाखून का बढ़ना अच्छा नहीं माना जाता, लेकिन हमारे समाज की गुंजलक को सुलझाने के लिए नाखून कितने जरूरी हैं यह कविता इस सत्य का प्रतिपादन करती है। कवि के शब्द देखें–'दोस्तो/ मेरे सामने

एक ओर नाखून है/ और दूसरी तरफ धागे की गुंजलक-सा/ उलझा मेरा देश/ और हम सब जानते हैं/ गाँठों और गुंजलकों को/ खोलने में/ कितने कारगर होते हैं/ नाखून'(पृष्ठ 136) पूरी कविता शीशे की तरह साफ है और संप्रेषणीय भी। मैंने तो सिर्फ कुछ पंक्तियों का स्पर्श भर किया है। आप जब इस संग्रह को पढ़ेंगे तो निश्चय ही कहीं अधिक आनंद प्राप्त करेंगे।

यह कहना ठीक होगा कि फेसबुक के सागर-मंथन के उपरांत संपादक लालित्य ललित ने जिन रत्नों को ढूँढकर निकाला है और पाठकों के समक्ष जिन कविताओं को रखा है वे निश्चय ही पाठकों को भी पसंद आएँगे। ये सभी कवि अपनी रचनाओं के दम पर हिंदी कविता के क्षेत्र में अपना एक विशेष स्थान हासिल करेंगे और समाज के विकास में भागीदार बनेंगे, यही आशा है और विश्वास भी। संग्रह के लिए संपादक लालित्य ललित को और सभी कवियों-कवयित्रियों को संग्रहणीय रचना के लिए हार्दिक बधाई और साधुवाद।

पुस्तक : कविताएँ फेसबुक से, संपादक : लालित्य ललित
प्रकाशक : हिंदी साहित्य निकेतन, 16 साहित्य विहार, बिजनौर (उ॰प्र॰) 246701
संस्करण : 2014, पृष्ठ : 144, मूल्य : 200 रुपए

समीक्षक : डॉ॰ रमेश तिवारी
64 **बी, फेज**-2, **डी॰डी॰ए॰ फ्लैट्स, कटवारिया सराय**
नई दिल्ली 110016
ईमेल : tiwaridrramesh@gmail.com
मो॰ 09868722444

असाबिया: अरब क्रांति की सशक्त कविताएँ

डॉ॰ स्मृति शुक्ल

राजेंद्र मिश्र हमारे समय के बड़े कवि हैं। हिंदीसाहित्य में 'आज कविता' और 'भविष्य कविता' के उन्नायक के रूप में राजेन्द्र मिश्र की प्रतिष्ठा है। उनका नवीनतम काव्य-संग्रह 'असबिया' अरब क्रांति की कविताओं का संग्रह है। विश्व इतिहास हमें बताता है कि पूरे विश्व में जब-जब आम जनता ने क्रांतियाँ की हैं परिवर्तन हुआ है। चाहे रूस क्रांति हो या भारत में 1857 की क्रांति हो। विश्व पटल पर अरब यूँ तो पिछड़ा हुआ देश है लेकिन अपने हक़ के लिए जनता ने जब विद्रोह किया तो न केवल अरब के तानाशाहों में वरन पूरे विश्व के शासकों में खलबली मच गई है। राजेंद्र मिश्र उन बिरले कवियों में से हैं जो अपने समय की नब्ज को किसी कुशल चिकित्सक की भाँति पकड़ते हैं और रोग के निदान हेतु सही प्रिस्क्रिप्शन भी लिखते हैं। चाहे वे 'आज की कविता' लिख रहे हों या भविष्य के लिए 'आठवाँराग' लिख रहे हों या 'समय के भूगोल में' कविताएँ लिख रहे हों, बहुत ही संवेदनशीलता से समाज के प्रत्येक घटक और घटना को अपनी कविताओं में अंकित करते हैं।

'असाबिया' संग्रह की कविताएँ अरब देशों के उन करोड़ों लोगों की भावाँजलियाँ हैं जो अपनी स्वतंत्रता के लिए संघर्ष कर रहे हैं। ये कविताएँ हमें बताती हैं कि अब निरंकुश और अत्याचारी शासकों के खिलाफ जनता उठ खड़ी है और जनता भी हथियार उठाकर इन जल्लाद शासकों में खौफ पैदा कर रही है। ज्याँ पाल सार्त्र के नाटक 'नो एक्जिट' की पात्र इनेज दूसरे पात्र गार्सिन से कहती है कि जल्लादों का चेहरा डरा हुआ होता है। सार्त्र के नाटक की इन पंक्तियों का संदर्भ दूसरा है लेकिन ये पंक्तियाँ आज प्रासंगिक हो गई हैं। बेगुनाहों का ख़ून बहाने वाले अब खौफ में है क्योंकि जनता स्वयं तानाशाहों के खिलाफ उठ खड़ी है। कवि राजेंद्र मिश्र ने 'असाबिया' की भूमिका में लिखा है कि 'यह दुनिया अब उन लोगों की नहीं है, जो बहुत सारे लोगों को चलाते हैं बल्कि उनकी है, जो अब चलना नहीं चाहते चलाना चाहते हैं उस दुनिया को जिसने उनका हर स्तर पर शोषण किया है। 'असाबिया' की सारी कविताएँ इसी तरह की है। जम्हूरित के लिए जरूरी नहीं है कि निहत्थे लोग ही गोलियाँ खाते रहें। उन लोगों को भी गोलियाँ खानी होगी जो गोलियाँ बरसाते हैं। अगर खामोश इकट्ठे होकर हम कुछ नहीं बदल सकते तो फिर हमें हथियार उठाने होंगे। इसके साथ ही हमारा अपना परिवेश भी है और हमारा मन भी। इन दोनों को जोड़कर असाबिया के साथ और असाबिया से अलग कुछ कविताएँ हैं, पर इस संग्रह का शीर्षक 'असाबिया' ही है।'[1]

असाबिया संग्रह में कुछ पचास कविताएँ संग्रहीत हैं। इनमें बैरकों में नहीं, तहरीर स्क्वायर, स्वप्न है, हत्या, जंगल, सैलाब, लिबर्टी, युद्ध आदि शीर्षक से तैंतीस कविताएँ अरब

क्रांति पर हैं और सत्ताइस कविताएँ समसामयिक मुद्दों पर हैं। इन कविताओं में राजेंद्र मिश्र का चिंतनशील व्यक्तित्व मुखरित हुआ है। वे चिंतित हैं उन पेंटिंग्ज से जो देश की संस्कृति को अनावृत कर ही हैं, जो हमारे सांस्कृतिक गरिमामय प्रतीकों को बाजार की वस्तु बना रही हैं। कवि की व्यथा का कोई अंत नहीं है। ऐसा असाबिया से अलग कविताओं में ध्वनित होता है। यह व्यथा इसलिए है, क्योंकि कवि जागरूक और चेतनासंपन्न है वह अपने आसपास की घटनाओं से असंपृक्त नहीं रह सकता, उसे कोई लालच नहीं दे सकता, वह असली-नकली में अंतर करना अच्छी तरह जानता है, वह चमकदार विज्ञापनी दुनिया के भीतर के बदरंग यथार्थ को पहचानता है इसलिए कबीर के समान व्यथित और बेचैन है। कबीर कह गए हैं–

सुखिया सब संसार है खावै अरु सोबे
दुखिया दारू कबीर है जागे अरु रोवे।

इतिहास गवाह है कि प्रत्येक युग का जाग्रत कवि एक बेचैनी में रहता है। कवि राजेंद्र मिश्र लिखते हैं–खिड़की से झाँकते हुए, गमगीन, गुमसुम लोगों को देखता हूँ/ जिनकी आँखों के आँसू सूख गए हैं/ एक नदी के किनारे बैठा हूँ/ पुराने दिनों को याद करता हूँ सिहर जाता हूँ/ कितने मुश्किलों में गुजरे वे दिन/ आज तक मेरे साथ लगे हैं/ हर पल का हिसाब देना है। ज़िंदगी कोई भी अनंत नहीं हैं। व्यथा का कोई अंत नहीं है।

कवि अपनी कविता को ही अपना हथियार बनाता है। कविता समाज में तूफान ला सकती है, क्रांति कर सकती है, कविता हृदय में प्रेम जगा सकती है। बकौल आचार्य रामचंद्र शुक्ल 'कविता मनुष्य की प्रसुप्त रागात्मक प्रवृत्तियों को जगा सकती है।' कविता के एक नहीं अनेक उदाहरण हैं, जिनमें कविता ने किसी राजा को मोहनिद्रा से निकाला है, किसी को अध्यात्म की ऊँचाई तक पहुँचाया है तो किसी को राष्ट्रप्रेम की पवित्र-धारा में स्नान कराया है। राजा शंकरशाह को एक कविता के कारण ही अँग्रेजों ने फाँसी पर लटका दिया था। गुंटर ग्रास की एक कविता से दो देशों में युद्ध की शुरूआत हो गई थी।

राजेंद्र मिश्र ने 'असाबिया' की कविताओं में स्पष्ट किया है कि अरब क्रांति मजहब के लिए नहीं बल्कि जम्हूरियत (लोकतंत्र) के लिए हुई है। कवि का मानना है कि लोकतांत्रिक देशों में कॉरपोरेट संस्कृति के खिलाफ भी क्रांति का सूत्रपात हो चुका है, क्योंकि इन देशों में भी एक तरफ अमीरी के स्वर्ग हैं तो दूसरी तरफ गरीबी के नर्क भी हैं। 'वॉल स्ट्रीट से शुरू होकर सारे यूरोप और लैटिन अमेरिका सहित अनेक देशों में यह आंदोलन फैलता जा रहा है।'[2]

विश्व इतिहास गवाह है कि स्वतंत्रता और शांति के लिये युद्ध करना पड़ता है। महाकवि दिनकर ने कुरुक्षेत्र में युद्ध की आवश्यकता को इन पंक्तियों में स्पष्ट किया है–जीवन उनका नहीं युधिष्ठर जो उससे डरते हैं, वह उनका जो चरण रोप, निर्भय होकर लड़ते हैं। राजेंद्र मिश्र ने भी लिखा है–

अमन के लिए अवाम को
युद्ध करना पड़ता है।
एक साथ अपने घरों से निकलकर
गोलियाँ खाते हुए चलना पड़ता है
तब मिलती है आज़ादी

यह बात सच है कि संघर्ष और खूनी क्रांति के बिना आजादी नहीं मिलती। कवि को दृढ़ विश्वास है कि जिसका जनता ने सदियों तक इंतजार किया है वह आज़ादी जरूर आएगी। लेकिन यह आज़ादी अपने आप नहीं आएगी उसे छीनना होगा। जिनके पास हथियार हैं उनसे हथियार छीनकर नारे लगाते हुए जुलूस निकालना होगा। कवि आम आदमी को संदेश देता है कि जब तुम यानी आम आदमी शस्त्र उठाएगा तो आज़ादी अवश्य मिलेगी। तुम्हारी ताकत पर राज्य करने वाला शहंशाह धूल में मिल जाएगा और तब जम्हूरियत के लिए ख़ून बहाना होगा–

ख़ून हरेक के भीतर बहता है
रखता है हर शख्स को जिंदा
उसे अब बाहर भी बहने दो
ख़ून से मत डरो।

दरअसल, राजेंद्र मिश्र के काव्य-संग्रह 'असाबिया' की कविताओं से स्पष्ट है कि कवि विश्व परिदृश्य के प्रति पूर्णत: चौकस है। निरंकुश सभ्यता के विरूद्ध उनकी कविताएँ खड़ी हैं।

ये कविताएँ निरंकुश सभ्यता को चुनौती देने वाली व्यापक भाव-बोध की कविताएँ मनुष्य को किसी स्थान या देश की सीमा में नहीं बाँधती बल्कि इन सीमाओं को तोड़कर अपने देश के बाहर अरब देश, ट्यूनीशिया, लीबिया, सीरिया सभी जगह पहुँचती हैं। इन कविताओं में इक्कीसवीं सदी की सारी लड़ाइयाँ दर्ज हैं। अरब क्रांति ऐसी क्रांति है जिसमें युवाओं के साथ बच्चे, बूढ़े और स्त्रियाँ शामिल हैं। स्त्रियाँ आजादी चाहती हैं तानाशाह से और उस बुर्के से जो उनके जीवन में काली घटा बनकर छा गया है। इस बुर्के के कारण ही स्त्रियों ने कभी खुला असमान नहीं देखा। इसी के कारण वह बाहर-भीतर की दुनिया देखने से महरूम हो गई। राजेंद्र मिश्र ने औरतें शीर्षक कविता में स्त्री की भावनाओं को, उसकी पीड़ा को शब्दबद्ध करते हुए लिखा है–

अल्लाह!
तुमने तो औरत को भी रचा है
मर्द को भी
मुझे भी हक है
खुली हवा में साँस लेने का
मैं भी खुली खिड़की से
बाहर झाँकना चाहती हूँ
बुर्के से बाहर आना चाहती हूँ।

प्रसिद्ध आलोचक जगन्नाथ पंडित ने लिखा है–'स्त्रियों का जीवन बड़ा नाज़ुक और दुखद रहा है। उसके चारो ओर धर्म, नैतिकता और अंधविश्वासों का अत्यंत महीन और मजबूत जाल फैलाया गया है। वह सदियों से अंतहीन अँधेरी सुरंग में रहने को विवश रही है।'[4] डॉ॰ राजेंद्र मिश्र ने भी स्त्रियों की पीड़ा और गुलामीजन्य दशा का बड़ा ही मार्मिक चित्रण किया है। यह सच है कि आज भी अनेक देश ऐसे हैं जिनको आजाद हुए अनेक वर्ष बीत गए हैं लेकिन स्त्रियाँ आज भी गुलाम हैं। पितृसत्तात्मक समाज में उन्हें संपत्ति से अधिक कुछ नहीं समझा जाता। मिश्र जी ने इसी सच को इंगित करते हुए लिखा है–

वहाँ आज़ाद हो जाने पर भी
सोचती हैं औरतें
कोई फर्क नहीं पड़ा उन्हें
वे अब भी मर्द की निगाह में
जायदाद हैं
जिनका इस्तेमाल होना है
आज़ाद होने पर भी उनके लिए
आज़ादी एक स्वप्न है।

'असाबिया' में एक महत्त्वपूर्ण कविता है 'हत्या'। इस कविता में कवि ने उस त्रासदी का वर्णन किया है जब अपने ही लोग वर्दी पहनकर अपने को ही मार रहे हैं। कवि क्रांति चाहता है, उस एक तानाशाह का खात्मा चाहता है जिसने करोड़ों की आज़ादी छीनी है। 'असाबिया' की सारी कविताएँ कवि की बेचैन आत्मा से जन्मी हैं। कवि बेचैन है कि तानाशाह आम आदमी, निहत्थे और निर्दोष व्यक्तियों की ज़िंदगियाँ छीन रहा है। क्या उससे मज़हब ने कहा है कि वह अपने लोगों को मारे? क्या उसे अल्लाह ने हुक्म दिया है कि वह उसके बंदों को जीने न दे?

इस बेचैनी के बाद कवि आशान्वित है कि आज़ादी अवश्य मिलेगी। जिसका तुम सभी ने सदियों इंतजार किया है वह आजादी अवश्य आएगी।

'असाबिया' संग्रह में 'असाबिया से अलग' खंड में जो कविताएँ संग्रहीत हैं वे समूचे वैश्विक परिदृश्य को लेकर रची गई हैं। इनमें भी साम्राज्यवादी ताकतों के खिलाफ कवि ने स्वर बुलंद किया है। चीन के साम्राज्यवाद के खिलाफ और तिब्बतियों की समस्या पर लिखी 'बंदिश' कविता इसलिए महत्त्वपूर्ण है क्योंकि यह कविता देश, काल की सीमाओं से परे जाकर व्यापक मानवता के उद्घोष की कविता है। इस कविता में अमेरिका तो कठघरे में है ही भारत के हुक्मरानों पर भी प्रश्नचिह्न है।

कवि ने कला के नाम पर भारतीय संस्कृति पर प्रहार करने वाले प्रतिष्ठित कलाकारों पर रोष व्यक्त किया है। कवि को यह घटना किसी हादसे से कम नहीं लगती जब कोई पेंटर हमारे मिथकों की न्यूड पेंटिंग बनाता है और हम उसकी वाहवाही करते हैं। इस खंड में अनेक कविताएँ ऐसी हैं जो कवि के अंतर्मन की पड़ताल करती हुई उसकी भीतरी तहों तक पहुँचती है, जहाँ अवसाद है, प्यार है, मनुसार है, स्मृति है, दर्पण है, स्वप्न है, सन्नाटा है, व्यथा है, मुस्कान है, मनुहार है और विश्वास है कि तुम हो, सब है और तुम नहीं तो कुछ भी नहीं है। यह मैं और तुम की यात्रा अनवरत जारी है। 'असाबिया' में जहाँ आज़ादी के लिए संघर्षरत औरतों का चित्र है तो 'असाबिया से अलग' में ऐसी औरत का चित्र है जो प्यार में ठगी गई है पर वह आत्महत्या नहीं करती वरन् पुनः अपने लिए सच्चा प्यार तलाश करती है और उसमें सफल भी होती है। वस्तुतः राजेंद्र मिश्र आज के और भविष्य के कवि हैं। उनकी ये कविताएँ वादों के घेरे में आबद्ध नहीं है। समसामयिक परिस्थितियों से उत्पन्न ये कविताएँ पाठक को सोचने पर मजबूर करती है। पाठक पर इन कविताओं का गहरा असर होता है। वह सोचने पर मजबूर होता है। उसके हौंसले बुलंद होते हैं और वह सच्चाई और हक़ के लिए बड़ी से बड़ी शक्ति से मुक़ाबला करने को

तैयार हो जाता है। प्रख्यात आलोचक प्रभाकर श्रोत्रिय ने लिखा है–'दरअसल जिसे हम आज की कविता कहते हैं, उसका कोई चरित्र नहीं है। वह भाँति-भाँति की कविता है। छंद वाली कविता भी है, अछंद वाली कविता भी है। सामाजिक कविताएँ भी हैं कल्पनाशील कविताएँ भी हैं। ठेठ गाँव-देहात की कविताएँ भी हैं तो दिल्ली के फाइव स्टार होटलों की भी कविताएँ हैं। इस प्रकार आज की कविताओं के बहुत से आयाम हैं। दूसरी बात यह है कि कविता का जो एक अभ्यस्त साँचा था या अभयस्त विचार था, उसके बिखरने से आज की कविताओं का विवेचन मुश्किल हो गया है।'[5]

यह कथन 'असाबिया' संग्रह की कविताओं पर भी लागू होता है। इस संग्रह की कविताएँ गद्य में ही लिखी गई हैं। चिंतन और भावना के रसायन से उपजी कविताएँ आज़ादी और व्यक्ति अस्मिता की बुनियादी कविताएँ हैं।

संदर्भ

1. राजेंद्र मिश्र, असाबिया की भूमिका, हिंदी साहित्य निकेतन, बिजनौर (उ॰प्र॰) 2012, पृ॰ 12
2. असाबिया, राजेंद्र मिश्र, पृ॰ 12
3. असाबिया, राजेंद्र मिश्र, पृ॰ 26
4. जगन्नाथ पंडित, सामाजिक प्रतिबद्धता और साहित्य, नमन प्रकाशन, नई दिल्ली 2005, पृ॰ 194
5. प्रभाकर श्रोत्रिय, मेरे साक्षात्कार, किताब घर प्रकाशन नई दिल्ली, 2003, पुस्तक के फ्लैप से साभार उद्धृत

इक उम्मीद से दिल बहलता रहा

अभिजीत

कविता की सबसे बुनियादी जरूरत होती है उसका प्राणवान होना। कठोर या कोमल वह इसके बाद ही हो सकती है। जब रस को ब्रह्मानंद सहोदर (रसो वै सः) कहा गया था तो इसके पीछे काव्य के उसी प्राणतत्त्व के प्रतिपादन की मंशा थी, जिसे हम ईश्वरत्व, ब्रह्मत्व आदि कहते हैं। कुछ सूत्रों को जोड़ा जाए तो बात और साफ होगी। दिनकर के 'रश्मिरथी' में कृष्ण भी जब कहते हैं कि 'पड़ जाती मेरी दृष्टि जिधर! हँसने लगती है सृष्टि उधर।' तो वो अपने ईश्वरत्व के इसी तत्त्व की व्याख्या कर रहे होते हैं। अवनीशसिंह चौहान का गीत-संग्रह 'टुकड़ा कागज का' भी काव्य के प्राणतत्त्व का सुंदर उदाहरण है। इस 'कागज के टुकड़े' पर अवनीश ने वो सब-कुछ लिख दिया है, जिसमें 'कविता मरे! असंभव हैं' की परिकल्पना साकार हो उठती है।

इस संकलन में संकलित गीतों से यह अनुमान लगाना सहज हो जाता है कि अवनीश बहुआयामी कलम के धारक हैं। उनकी कलम में यथार्थ और भावुकता का संतुलन बड़ा सुंदर दिखाई पड़ता है। इनके गीतों में एक तरफ सामाजिक यथार्थ का जीवंत चित्रण दिखता है तो दूसरी तरफ अवनीश अपने परिवेश के भावपक्ष के प्रति भी रुझान व्यक्त करते हैं। अवनीश समाज को उसकी समग्रता में देखते हैं, लेकिन समाज की इकाई के प्रति उनकी चिंता इस बात की ओर साफ इशारा करती है कि वे समाज के प्रति कितनी सूक्ष्म दृष्टि रखते हैं–

'कभी कोयले-सा धधक/फिर राख बना, रोया/
माटी में मिल गया/ कि जैसे/ माटी में सोया/
चलता है हल/उड़ता जाए/टुकड़ा कागज का।' (टुकड़ा कागज का)

ये पंक्तियाँ दरअसल समाज की इकाई के रूप में एक अदने आदमी की कहानी कहती हैं। एक संघर्षरत आदमी जो सारी ज़िंदगी उतार-चढ़ावों के बीच गुज़ार देता है, उसकी महत्ता का प्रतिपादन नहीं है ये पंक्तियाँ, बल्कि उससे भी आगे जाकर अवनीश एक आम आदमी के संघर्ष की सार्थकता पर बात करते हैं।

ये जीवन अवनीश के गीतों में हर तरफ बिखरा हुआ है। गतिशील जीवन की कठिनाइयों से अवगत गीतकार यह लिखना नहीं भूलता कि

'मीलों लंबा अभी सफर/साँसें हैं कुछ शेष बचीं/
बाकी है उत्साह अभी/थोड़ी सी है कमर लची।' (नदिया की लहरें)

कहना न होगा कि गतिशील व संघर्षशील जीवन में संघर्ष का हमेशा बचे रह जाना ही असल मायनों में जीवन को प्राणवान बनाता है और ये समझ ही अवनीश के गीतों की काव्यगत ईमानदारी का प्रतीक है।

अवनीश अपने गीतों में समाज में व्याप्त विषमता को भी पकड़ते हैं। ये विषमता जाति

या अर्थ आधारित ही नहीं स्थान आधारित भी है। जिस सड़क और संसद का भेद धूमिल की कविताओं में दिखता है उसकी टीस अवनीश की इन पंक्तियों में भी देखी जा सकती है–

'पगडंडी जो/मिल न सकी है/
राजपथों से, शहरों से।' (पगडंडी)

इन पंक्तियों से इस बात का भी संकेत मिल जाता है कि गीतकार की दृष्टि जनता और प्रशासन के बीच एक खाली स्पेस पर भी है, जिसे गीतकार समाज के लिए अच्छा संकेत नहीं मानता। 'केंद्र' और 'परिधि' की चर्चा साहित्य में बहुत अरसे से होती आई है। इसकी सबसे बड़ी विडंबना यह है कि 'परिधि' सदा के लिए अछूता रह जाता है–

'जहाँ केंद्र' से/चलकर पैसा/
लुट जाता है रस्ते में/और परिधि/
भगवान भरोसे/रहती ठंडे बस्ते में।' (पगडंडी)

महाकवि निराला ने भी 'तोड़ती पत्थर' नामक कविता में इसी परिधि और केंद्र की बात की थी, जिनके बीच 'तरुमालिकाएँ और अट्टालिकाएँ' थीं। अवनीश इस संबंध को बखूबी पहचानते हैं। वे जानते हैं कि परिधि की जनसंख्या अपना जीवनयापन किन बदतर स्थितियों में करती है। वे लिखते हैं–

'इनके-उनके/ताने सुनना/
दिन भर देह गलाना/तीन रुपैया/
मिले मजूरी/नौ की आग बुझाना।' (किसको कौन उबारे)

ज़ाहिर है तीन रुपए की मजूरी में नौ जनों की भूख नहीं मिटती, इसलिए अवनीश इस विषमतापरक स्थिति को दर्शाने से भी नहीं हिचकते–

'बड़ी-बड़ी/'गाला' महफिल में/
कितनी ही भोगों की बातें/और कहीं टपरे के नीचे/
सिकुड़ी हैं मन मारे आँतें।' (सर्वोत्तम उद्योग)

अवनीश के गीतों की सबसे बड़ी खासियत है उनका किसी प्रकार के आग्रह से या बंधन से मुक्त रहना। अवनीश अपने गीतों में कब परिवेश संचरण करते हैं, यह जानना बड़ा कठिन है। इसका कोई पूर्वाभास भी नहीं होता और संचरण इतनी नज़ाकत से होता है कि पाठक किसी प्रकार का झटका भी महसूस नहीं करता। शहरीकरण ने ग्रामीण परिवेश को किस क़दर ग्रस लिया है और उसकी मासूमियत ख़त्म कर दी है इसकी चिंता हमें अवनीश की इन पंक्तियों में साफ देखने को मिलती है–

'कंकरीट के मकड़जाल ने/फाँस लिया है सादा जीवन/
कभी पकड़ना अपनी छाया/कभी छाँह से डर कर रहना/
कभी चाँद तारों को चाहें/कभी धूप के मोती चुनना।' (लौटे बचपन)

ज़ाहिर है ये पंक्तियाँ प्रकृति-प्रेम से ज्यादा ग्रामीण बाल्यकाल की मासूमियतों की ओर इशारा करती हैं, लेकिन 'कंकरीट के मकड़जाल' की समस्या को भी अवनीश अनदेखा नहीं कर पाए हैं। एक कवि की सबसे बड़ी खासियत सिर्फ सुंदर का स्वप्न दिखाना-भर नहीं होता बल्कि उन कारणों की ओर भी इशारा करना होता है, जो समाज के सुंदर तत्त्व को उसकी मासूमियत को ग्रहण लगाना चाहते हैं। कहना न होगा कि अवनीश इस धरातल पर सफल गीतकार

के रूप में सामने आते हैं। सियासत की चालबाज़ियों से अवनीश भली-भाँति परिचित हैं और अपने पाठकों को भी परिचित कराना नहीं भूलते–

'सत्ता पर काबिज होने को/कट-मर जाते दल/
आज सियासत सौदेबाज़ी/जनता में हलचल।' (चिंताओं का बोझ-ज़िंदगी)

ये तथ्य किसी से छुपा नहीं कि सियासत के ठेकेदार सत्ता में काबिज होने के लिए कैसे-कैसे पैंतरे आजमाते हैं, लेकिन फिर भी आम भोली-भाली जनता उनके षड्यंत्रों की शिकार बनती है। इस प्रसंग में वह लोककथा याद आती है, जिसमें बूढ़ा कबूतर अपने जवान कबूतर साथियों को चेतावनी देता है कि 'शिकारी आएगा, जाल बिछाएगा, दाना डालेगा, फँसना मत'। वह कबूतर उसकी यह बात रटते-रटते अंततः फँस जाते हैं। यही हाल बेचारी जनता का भी है कि कइयों बार इस तरह के षड्यंत्रों की साक्षी होते हुए भी सत्ताधारियों के नए-नए पैंतरों में आए दिन फँसती रहती है। सबसे बड़ी विडंबना यह है कि जाति, मजहब, वर्ग जैसे पैंतरे आदिकालीन युग से आजमाए जा रहे हैं, लेकिन जनता आज भी इनमें फँसकर अपनी सामाजिक शांति को भंग करती है और 'गर फिरदौस जमीनस्त' की अवधारणा के प्रति शंका उत्पन्न कर देती है। इन स्थितियों की ओर इशारा करते हुए अवनीश स्पष्ट शब्दों में लिखते हैं–

'आँख लाल है/झूम चाल है/
लगते कुछ बेढंगे/इज़्ज़त इनसे दूर कि इनकी/
जेबों में हैं दंगे।' (पंच गाँव का)

फैज की पंक्ति थी 'इक उम्मीद से दिल बहलता रहा।' ये उम्मीद गालिब के 'दिल बहलाने के खयाल' से अलग थी। यहाँ सर्वेश्वर की 'दिए में तेल से भीगी बाती' की उम्मीद थी। अवनीश अपने गीतों में चाहे जितनी क्रूर स्थितियों का वर्णन करें, लेकिन उम्मीद का दामन नहीं छोड़ते। मैथ्यू ऑर्नाल्ड का मानना था कि 'सभ्यता के संक्रांतिकाल में कविता ही अंततः मानव-सभ्यता और संस्कृति को पोषित कर सकती है' तो अवनीश के गीत भी इस भाव से अलग नहीं हैं। उनके कुछ गीतों में जीवन और समाज की निर्मलता और मासूमियत के ऐसे चित्र देखने को मिलते हैं, जो निश्चित ही ऐसी उम्मीद जगाते हैं, जिनसे दिल को आनेवाले सुखद समय के इंतज़ार में बहलाया जा सकता है।

जैसा कि हम पहले ही कह आए हैं कि अवनीश के लेखन में परिवेश-संचरण की अद्‌भुत विशेषता है। वे जब एक परिवेश के बारे में लिख रहे होते हैं तो नैपथ्य से उनका इशारा दूसरे परिवेश की ओर भी होता है–

'बड़े चाव से/बतियाता था/
अपना गाँव-समाज/छोड़ दिया है/
चौपालों ने/मिलना-जुलना आज।' (अपना गाँव समाज)

यह चिंता वाजिब है जिसमें व्यक्ति, व्यक्ति से कटता जा रहा है और इसी कविता के अंत में यह प्रश्न कि–'तोड़ दिया है किसने/आपसदारी का/वह साज।' (अपना गाँव-समाज)

सीधे-सीधे हमारे देश-समाज में विकसित हो रही उस संस्कृति की ओर इशारा कर रहा है, जहाँ सहकारिता की भावना को नष्ट करके व्यक्तिवाद का उत्थान किया जा रहा है। व्यक्ति सिर्फ 'स्व' तक सीमित होता जा रहा है।

समाज में पनप रहे इसी स्वार्थ और व्यक्तिवाद की भावना के प्रतिरोध में गीतकार अपनी

लोकसंस्कृति की ओर रुख करता है। वह जानता है कि लोकसंस्कृति समाज में आपसी तालमेल और सहकारिता के भाव से लबरेज है। इसीलिए यदि समाज में क्षीण हो रही मानवता को बचाना है और उसकी पुनःस्थापना करनी है तो लोक-संस्कृति से बड़ा और कोई दूसरा टूल नहीं–

'हर कड़वाहट पर/जीवन की/
आज अबीर लगा दे/फगुआ-ढोल बजा दे।' (फगुआ-ढोल बजा दे)

लोकसंस्कृति की यही गंध अवनीश के गीतों को उम्मीदों से भर देती है। लेकिन बतौर जिम्मेदार लेखक अवनीश में समस्या को परखने, उसके यथार्थ को देखने और उसके उपाय सुझाने की समझ–इन सबका बड़ा संतुलन देखने को मिलता है, जो उनके लेखक को किसी प्रकार से 'नॉस्टेल्जिक' नहीं होने देता। उनके गीतों में एक तरफ सुलेखा, मुनिया, छबिया, जखई बाबा, चिड़िया-चिरौटे और गुड़-धानी की महक है तो दूसरी तरफ शहर, राजपथ, कंकरीट के मकड़जाल, चीलगाह और विज्ञापन की चकाचौंध भी है।

अवनीश के गीतों में कथ्य से अलग जब हम उसकी गीततत्त्व और भाषा-शैली पर बात करें तो पाते हैं कि इनके गीतों में गेयता के गुण तो हैं ही, साथ ही शब्दों का चयन और कहने की शैली इतनी बोलचाल वाली है कि गानेवाले के लिए गीत का याद हो जाना बड़ा स्वाभाविक सा लगता है। यथा–

'मीठी यादें उद्गम की/पानी में घुलती जातीं/
सूरज की किरणें-कलियाँ/लहरों पर खिलती जातीं।' (नदिया की लहरें)

हम अवनीश के लेखन के आग्रहमुक्त होने की बात कर आए हैं, तो ये आग्रहमुक्तता सिर्फ कथ्य या विषय तक ही नहीं वरन् भाषा और शब्दचयन तक है। अवनीश अपने गीतों को लोकप्रिय बनाने के लिए भी ऐसा करते हैं इसमें संदेह नहीं, लेकिन जैसा कि हम जानते हैं कि गीत गाने के लिए ही होते हैं ताकि उन्हें जनता के बीच गाया और सुनाया जा सके। इसलिए यह बहुत ज़रूरी हो जाता है कि गीत की भाषा किसी भी तरह कट्टर भाषायी मानसिकता से दूर रहे। लेकिन इसके और भी रास्ते हैं। कहना न होगा कि अवनीश ये सारे रास्ते जानते हैं। उनके गीतों में 'अजुध्या', 'कुट्टी', 'नैया', 'परसना', 'परती', 'सेंदुर', और 'कनबतियाँ' जैसे तमाम लोकपुट से लबरेज शब्द मिल जाएँगे।

कुल मिलाकर अवनीश के कागज के इस टुकड़े पर समाज का एक संतुलित सुंदर आख्यान उकेरा गया है, जो उम्मीद तो जगाता ही है कि समाज की नकारात्मक शक्तियों के प्रति किन प्रारूपों के तहत लामबंद होने की ज़रूरत है और किस तरह हुआ जा सकता है। पीछे फैज की जिस पंक्ति का उल्लेख किया गया है, उसी की अगली कड़ी है–'इक तमन्ना सताती रही रात भर' निश्चित ही उम्मीदों से तो दिल बहलते हैं, लेकिन ये तमन्ना तो हर इंसान को होगी कि समाज में ऐसे सकारात्मक तत्त्वों का सतत विकास होता रहे, जो प्रतिरोध के रूप में हमें, हमारी संस्कृति, हमारी सभ्यता और अंततः मानवता को बचाए रखें और उन्हें आने वाली पीढ़ियों तक संचरित करती रहें। और कहना न होगा कि अवनीश के गीतों से जो उम्मीद बनती है, उसका तमन्ना में बदल जाना ग़ैरवाजिब नहीं।

पुस्तकः **टुकड़ा काग़ज़ का** (गीत-संग्रह); कविः अवनीशसिंह चौहान; प्रकाशन वर्षः प्रथम संस्करण 2013; पृष्ठ : 119; मूल्यः 125.00; प्रकाशकः विश्व पुस्तक प्रकाशन, 304-ए,बी.जी. 7, पश्चिम विहार, नई दिल्ली 110063

हिंदी साहित्य निकेतन

महत्त्वपूर्ण कोश एवं संदर्भ ग्रंथ

- **निश्तर ख़ानक़ाही एवं डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल**

ग़ज़ल और उसका व्याकरण	250.00

- **डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल एवं डॉ॰ मीना अग्रवाल**

बृहत् हिंदी साहित्यकार संदर्भ कोश	1500.00
हिंदी तुलनात्मक शोधसंदर्भ	995.00
शोधसंदर्भ-भाग-1	500.00
शोधसंदर्भ-भाग-2	550.00
शोधसंदर्भ-भाग-3	525.00
शोधसंदर्भ-भाग-4	595.00
शोधसंदर्भ-भाग-5	895.00
हिंदी तुकांत कोश	300.00
शोध अंक भाग-1	100.00
शोध अंक भाग-2	100.00
शोध अंक भाग-3	100.00
शोध अंक भाग-4	100.00
शोध अंक भाग-5	100.00
शोध अंक भाग-6	100.00
शोध अंक भाग-7	100.00
शोध अंक भाग-8	100.00
शोध अंक भाग-9	100.00
शोध अंक भाग-10	100.00
शोध अंक भाग-11	100.00
शोध अंक भाग-12	100.00
शोध अंक भाग-13	100.00
शोध अंक भाग-14	100.00
शोध अंक भाग-15	100.00
शोध अंक भाग-16	100.00
शोध अंक भाग-17	150.00
शोध अंक भाग-18	200.00
शोध अंक भाग-19	200.00

शोध अंक भाग-20 200.00
शोध अंक भाग-21 200.00
शोध अंक भाग-22 200.00
शोध अंक भाग-23 200.00
शोध अंक भाग-24 200.00
शोध अंक भाग-25 200.00
शोध अंक भाग-26 200.00

समीक्षा एवं समालोचना

सवाल साहित्य के • **डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल** 200.00
हिंदी सिनेमा और दांपत्य संबंध • **डॉ॰ चंद्रकांत मिसाल** 500.00
सिनेमा और साहित्य का अंत:संबंध • **डॉ॰ चंद्रकांत मिसाल** 200.00
सिनेमा, साहित्य और संस्कृति • **नवलकिशोर शर्मा** 150.00
आमिर खान : हिंदी सिनेमा के सेवक • **धर्मेंद्र उपाध्याय** 300.00
डॉ॰ कुँअर बेचैन के साहित्य में प्रतीक विधान • **डॉ॰ अंजु भटनागर** 500.00
अमरकांत का कथासाहित्य • **डॉ॰ योगेश गोकुल पाटिल** 400.00
नारी-समस्याओं का समाजशास्त्रीय अध्ययन • **डॉ॰ अनुभूति** 450.00
राजस्थानी चित्र शैली में आखेट दृश्य • **डॉ॰ सुषमा सिंह** 250.00
भोपाल के संग्रहालयों की चित्रकला • **डॉ॰ सुषमा सिंह** 250.00
मृदुला गर्ग कृत अनित्य : इतिहास और आख्यान का संबंध • **डॉ॰ ज्योति सिंह** 150.00
मृदुला गर्ग और नारी-अस्मिता का प्रश्न • **डॉ॰ ज्योति सिंह** 300.00
काका हाथरसी : एक समीक्षा-यात्रा • **डॉ॰ मिथिलेश माहेश्वरी** 300.00
सांप्रदायिकता और हिंदी कथासाहित्य • **डॉ॰ मनोजकुमार** 250.00
अपनी कविताओं में अशोक चक्रधर • **डॉ॰ दीपा के॰** 250.00
आधुनिक हिंदी गीतिकाव्य में संगीत (पुरस्कृत)• **डॉ॰ मीना अग्रवाल** 450.00
डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल : व्यक्ति और साहित्य • **डॉ॰ हरीशकुमार सिंह** 350.00
डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल का व्यंग्य-साहित्य : कथ्य एवं भाषा • **डॉ॰ वी॰ जयलक्ष्मी** 450.00
साठोत्तरी हिंदी-ग़ज़ल : डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल का योगदान • **डॉ॰ अनिलकुमार शर्मा** 350.00
लोकरंगमंच के विविध आयाम • **डॉ॰ पूर्णचंद शर्मा** 200.00
देवबंद की स्वांग-परंपरा • **डॉ॰ सुरेंद्र शर्मा** 200.00
एक साक्षात्कार : पं॰ अमृतलाल नागर के साथ • **डॉ॰ शंकर क्षेम** 150.00
ग़ज़ल : सौंदर्य और यथार्थ • **अनिरुद्ध सिन्हा** 150.00
समय के हस्ताक्षर (हिंदी के आधुनिक कवि) • **डॉ॰ ज्योति व्यास** 150.00
कालिदास के साहित्य में भौगोलिक तत्त्व • **डॉ॰ लालबहादुर रावल** 300.00

जनपद बिजनौर के आधुनिककालीन साहित्यकार • **डॉ॰ अशोककुमार**	350.00
बिजनौर क्षेत्र की ग्रामोद्योग-संबंधी शब्दावली का अध्ययन • **डॉ॰ ओमदत्त आर्य**	500.00
आस्थावाद एवं अन्य निबंध • **डॉ॰ मिथिलेश दीक्षित**	300.00
साहित्य और संस्कृति • **डॉ॰ मिथिलेश दीक्षित**	300.00
हिंदी व्यंग्य-निबंध : स्वतंत्रता के बाद • **डॉ॰ आशा रावत**	350.00
आज़ादी के बाद का हिंदी गद्य व्यंग्य • **डॉ॰ प्रेम जनमेजय**	500.00
हिंदी बालकाव्य के विविध पक्ष • **विनोदचंद्र पांडेय**	300.00
हिंदी बालसाहित्य : डॉ॰ सुरेंद्र विक्रम का योगदान • **डॉ॰ स्वाति शर्मा**	450.00
भीष्म साहनी का कथासाहित्य : सांप्रदायिक सद्भाव • **डॉ॰ पी॰आर॰ वासुदेवन**	300.00
हिंदी ब्लॉगिंग : अभिव्यक्ति की नई क्रांति • **अविनाश वाचस्पति, रवींद्र प्रभात**	495.00
हिंदी ब्लॉगिंग का इतिहास • **रवींद्र प्रभात**	300.00
सूरदास का सौंदर्य-चित्रण • **डॉ॰ विजय इंदु**	250.00
हरिऔध का सौंदर्य-चित्रण • **डॉ॰ विजय इंदु**	500.00
साठोत्तरी हिंदी रेखाचित्र : शैलीवैज्ञानिक अध्ययन • **डॉ॰ मीनल रश्मि**	250.00
समकालीन हिंदी कविता में सामाजिक चेतना • डॉ॰ शीला गहलौत	500.00
हरिवंशराय बच्चन के काव्य में स्वच्छंदतावादी प्रवृत्तियाँ • डॉ॰ राजकुमार जमदग्नि	500.00
नाटककार पंडित राधेश्याम कथावाचक • डॉ॰ अशोक उपाध्याय	200.00
डॉ॰ महेंद्र सागर प्रचण्डिया समग्र (एक) • **डॉ॰ आदित्य प्रचण्डिया**	700.00
डॉ॰ महेंद्र सागर प्रचण्डिया समग्र (दो) • **डॉ॰ आदित्य प्रचण्डिया**	700.00
डॉ॰ महेंद्र सागर प्रचण्डिया समग्र (तीन) • **डॉ॰ आदित्य प्रचण्डिया**	700.00
डॉ॰ महेंद्र सागर प्रचण्डिया समग्र (चार) • **डॉ॰ आदित्य प्रचण्डिया**	700.00
डॉ॰ महेंद्र सागर प्रचण्डिया समग्र (पाँच) • **डॉ॰ आदित्य प्रचण्डिया**	700.00
डॉ॰ महेंद्र सागर प्रचण्डिया समग्र (छह) • **डॉ॰ आदित्य प्रचण्डिया**	700.00
डॉ॰ महेंद्र सागर प्रचण्डिया समग्र (सात) • **डॉ॰ आदित्य प्रचण्डिया**	700.00
साहित्य और संस्कृति का अंत:संबंध • **डॉ॰ आदित्य प्रचण्डिया**	400.00
वादविवाद प्रतियोगिता : पक्ष और विपक्ष • **डॉ॰ गिरिराजशरण, डॉ॰ मीना अग्रवाल**	200.00
फिजी में प्रवासी भारतीय • **डॉ॰ शुचि गुप्ता**	300.00
मुक्तिबोध का रचना-संसार • **डॉ॰ शिवशंकर लधवे**	200.00

हास्य-व्यंग्य

मेरी हास्य-व्यंग्य कविताएँ • **डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल**	150.00
मेरे इक्यावन व्यंग्य • **डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल**	300.00
चुनी हुई हास्य कविताएँ • **डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल**	250.00
मंचीय व्यंग्य एकांकी • **डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल**	200.00
बाबू झोलानाथ • **डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल**	60.00

राजनीति में गिरगिटवाद • **डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल**	100.00
आदमी और कुत्ते की नाक • **डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल**	150.00
आओ भ्रष्टाचार करें • **डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल**	200.00
दूध का धुला लोकतंत्र • **गोपाल चतुर्वेदी**	150.00
आधुनिक बेताल कथाएँ • **गिरीश पंकज**	200.00
भज्जी का जूता • **महेशचंद्र द्विवेदी**	150.00
क्लियर फंडा • **महेशचंद्र द्विवेदी**	120.00
प्रिय-अप्रिय प्रशासकीय प्रसंग • **महेशचंद्र द्विवेदी**	170.00
वीरप्पन की मूँछें • **महेशचंद्र द्विवेदी**	200.00
वसीयतनामा • **पं॰ सूर्यनारायण व्यास, सं॰ राजशेखर व्यास**	150.00
काका की विशिष्ट रचनाएँ • **काका हाथरसी**	300.00
काका के व्यंग्य-बाण • **काका हाथरसी**	200.00
कक्के के छक्के • **काका हाथरसी**	200.00
लूटनीति मंथन करी • **काका हाथरसी**	200.00
खिलखिलाहट • **काका हाथरसी**	200.00
पैसे कहाँ से दें • **डॉ॰ आशा रावत**	200.00
चाहिए एक और भगतसिंह • **डॉ॰ आशा रावत**	100.00
नमस्कार प्रजातंत्र • **महेश राजा**	150.00
ए जी सुनिए • **अशोक चक्रधर**	100.00
इसलिए बौड़म जी इसलिए • **अशोक चक्रधर**	100.00
चुटपुटकुले • **अशोक चक्रधर**	60.00
तमाशा • **अशोक चक्रधर**	60.00
सो तो है • **अशोक चक्रधर**	60.00
हँसो और मर जाओ • **अशोक चक्रधर**	60.00
नमस्ते जी • **डॉ॰ बलजीत सिंह**	150.00
अब हँसने की बारी है • **डॉ॰ बलजीत सिंह**	200.00
• **डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल**	
1995 की श्रेष्ठ हास्य-व्यंग्य रचनाएँ	65.00
1996 की श्रेष्ठ हास्य-व्यंग्य रचनाएँ	100.00
1997 की श्रेष्ठ हास्य-व्यंग्य रचनाएँ	100.00
1998 की श्रेष्ठ हास्य-व्यंग्य रचनाएँ	100.00
1999 की श्रेष्ठ हास्य-व्यंग्य रचनाएँ	120.00
2002 की श्रेष्ठ हास्य-व्यंग्य रचनाएँ	150.00
2003 की श्रेष्ठ हास्य-व्यंग्य रचनाएँ	150.00

2004 की श्रेष्ठ हास्य-व्यंग्य रचनाएँ	170.00
पिछले दशक की श्रेष्ठ हास्य-व्यंग्य कहानियाँ	200.00
पिछले दशक की श्रेष्ठ हास्य-व्यंग्य कविताएँ	200.00
पिछले दशक के श्रेष्ठ हास्य-व्यंग्य एकांकी	200.00
शिवशर्मा के चुने हुए व्यंग्य • **डॉ॰ शिव शर्मा**	50.00
बजरंगा (व्यंग्य-उपन्यास) • **डॉ॰ शिव शर्मा**	150.00
अपने-अपने भस्मासुर • **डॉ॰ शिव शर्मा**	150.00
प्रतिनिधि व्यंग्य • **दामोदरदत्त दीक्षित**	100.00
हँसते-हँसते कट जाएँ रस्ते • **मधुप पांडेय**	200.00
धमकीबाज़ी के युग में • **निश्तर ख़ानक़ाही**	60.00
नो टेंशन • **डॉ॰ सुरेश अवस्थी**	170.00
ला ख़र्चा निकाल • **गजेंद्र तिवारी**	200.00
जलनेवाले जला करें • **गजेंद्र तिवारी**	60.00
पेट में दाढ़ियाँ हैं • **सूर्यकुमार पांडेय**	100.00
ये है इंडिया • **डॉ॰ हरीशकुमार सिंह**	120.00
आँखों देखा हाल • **डॉ॰ हरीशकुमार सिंह**	150.00
सच का सामना • **हरीशकुमार सिंह**	150.00
लिफ़्ट करा दे • **डॉ॰ हरीशकुमार सिंह**	200.00
देवेंद्र के कार्टून • **देवेंद्र शर्मा**	80.00
कार्टून कौतुक • **देवेंद्र शर्मा**	120.00
लिफ़ाफ़े का अर्थशास्त्र • **डॉ॰ पिलकेंद्र अरोरा**	120.00
अजगर करे न चाकरी • **बाबूसिंह चौहान**	200.00
ज़िंदगी तेरे नाम डार्लिंग • **डॉ॰ लालित्य ललित**	200.00
नो कमेंट • **सुमित प्रताप सिंह**	200.00

कहानी

एक सपना मेरा भी था • **डॉ॰ आश रावत**	200.00
एक थी माया • **विजयकुमार**	200.00
सरहदों के पार • **सुरेशचंद्र शुक्ल**	200.00
छोटे-छोटे सुख • **डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल**	200.00
कथा जारी है • **बाबूसिंह चौहान**	150.00
इक्कीस कहानियाँ • **सत्यराज**	100.00
अंदर धूप बाहर धूप (नारी-मन की कहानियाँ) • **डॉ॰ मीना अग्रवाल**	150.00
कुत्तेवाले पापा • **मीना अग्रवाल**	150.00
उत्तराखंड की लोकगाथाएँ • **डॉ॰ दिनेशचंद्र बलूनी**	200.00

एक बौना मानव • **महेशचंद्र द्विवेदी** 100.00
लव जिहाद • **महेशचंद्र द्विवेदी** 200.00
इमराना हाज़िर हो • **महेशचंद्र द्विवेदी** 150.00
हैं आस्माँ कई और भी • **नीरजा द्विवेदी** 200.00
कौन कितना निकट • **रेणु 'राजवंशी' गुप्ता** 120.00
लघु कथाएँ • **डॉ॰ हरिशरण वर्मा** 150.00
कमरा नंबर 103 • **सुधा ओम ढींगरा** 150.00
कहानियाँ अमेरिका से • **सं॰ इला प्रसाद** 150.00
प्रेमचंद की कालजयी कहानियाँ • **सं॰ डॉ॰ कमलकिशोर गोयनका** 150.00
लघुकथाएँ जीवनमूल्यों की • **सं॰ सुकेश साहनी, रामेश्वर कांबोज 'हिमांशु'** 150.00
पंद्रह सिंधी कहानियाँ • **सं॰ देवी नागरानी** 200.00

उपन्यास

इतिहास की आवाज़ • **राजेन्द्र मिश्र** 450.00
अनोखा उपहार • **श्रीमती सुषमा अग्रवाल** 200.00
आसरा • **श्रीमती सुषमा अग्रवाल** 100.00
तीन बीघा ज़मीन • **श्रीमती सुषमा अग्रवाल** 200.00
मन के जीते जीत • **श्रीमती सुषमा अग्रवाल** 200.00
कुल का चिराग • **श्रीमती सुषमा अग्रवाल** 200.00
कालचक्र से परे • **श्रीमती नीरजा द्विवेदी** 200.00
भीगे पंख • **महेशचंद्र द्विवेदी** 200.00
मानिला की योगिनी • **महेशचंद्र द्विवेदी** 200.00
और लहरें उफनती रहीं • **डॉ॰ तारादत्त निर्विरोध** 200.00
बजरंगा (व्यंग्य-उपन्यास) • **डॉ॰ शिव शर्मा** 150.00
अराज-राज • **डॉ॰ मोहन गुप्त** 200.00
सुराज-राज • **डॉ॰ मोहन गुप्त** 350.00
एक गुमनाम फौजी की डायरी • **डॉ॰ आशा रावत** 150.00
एक चेहरे की कहानी • **डॉ॰ आशा रावत** 150.00
गुरुदक्षिणा (व्यंग्य-उपन्यास) • **डॉ॰ आशा रावत** 100.00
एक फरिश्ता ऐसा देखा • **प्रेमसागर तिवारी** 250.00

एकांकी-नाटक

• **डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल**
मंचीय हास्य-व्यंग्य एकांकी 200.00
मंचीय सामाजिक एकांकी 200.00
बच्चों के हास्य नाटक 200.00

बच्चों के रोचक नाटक	200.00
बच्चों के शिक्षाप्रद नाटक	200.00
बच्चों के अनुपम नाटक	200.00
बच्चों के उत्तम नाटक	200.00
भारतीय गौरव के बाल-नाटक	200.00
प्रेमचंद की कहानियों पर आधारित नाटक	200.00
ग्यारह नुक्कड़ नाटक	200.00
नीली आँखें	60.00
बच्चों के अनोखे नाटक • **प्रकाश मनु**	200.00
हास्य-व्यंग्य के बाल-नाटक • **प्रकाश मनु**	200.00
संसार : एक नाट्यशाला • **बाबूसिंह चौहान**	150.00
ग्यारह एकांकी • **डॉ॰ हरिशरण वर्मा**	200.00
दमन • **रामाश्रय दीक्षित**	100.00
स्वप्न पुरुष • **डॉ॰ उर्मिला अग्रवाल**	150.00
अफलातून की अकादमी • **डॉ॰ शिव शर्मा**	150.00

ललित निबंध एवं रेखाचित्र

कैसे-कैसे लोग मिले • **निश्तर ख़ानक़ाही**	125.00
यादों का मधुबन • **कृष्ण राघव**	150.00
समय के चाक पर • **डॉ॰ लालबहादुर रावल**	125.00
समय एक नाटक • **डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल**	160.00
दर्पण झूठ बोलता है • **बाबूसिंह चौहान**	60.00
मकड़जाल में आदमी • **बाबूसिंह चौहान**	80.00
उफनती नदियों के सामने • **बाबूसिंह चौहान**	100.00
पीठ पर नील गगन • **बाबूसिंह चौहान**	100.00
अनुभव के पंख • **चंद्रवीरसिंह गहलौत**	250.00
मेरे साक्षात्कार • **डॉ॰ बालशौरि रेड्डी**	250.00
आधी हकीकत आधा फसाना • **डॉ॰ बलजीत सिंह**	200.00
फूलों की महक • **डॉ॰ ओमदत्त आर्य**	200.00
संवाद साहित्यकारों से • **डॉ॰ गंगाप्रसाद गुप्त बरसैंया**	200.00

गीत-ग़ज़ल

निश्तर ख़ानक़ाही समग्र (प्रकाशनाधीन)/ **निश्तर ख़ानक़ाही**	500.000
ग़ज़ल मैंने छेड़ी (ग़ज़ल-संग्रह)/ **निश्तर ख़ानक़ाही**	80.00
ग़ज़लों के शहर में (ग़ज़ल-संग्रह)/ **निश्तर ख़ानक़ाही**	200.00
मेरे लहू की आग (ग़ज़ल-संग्रह)/ **निश्तर ख़ानक़ाही**	150.00

कोई आवाज़ देता है ● **डॉ॰ कुँअर बेचैन**	150.00
दिन दिवंगत हुए ● **डॉ॰ कुँअर बेचैन**	150.00
कुँअर बेचैन के नवगीत ● **डॉ॰ कुँअर बेचैन**	200.00
कुँअर बेचैन के प्रेमगीत ● **डॉ॰ कुँअर बेचैन**	150.00
पर्स पर तितली (हाइकु) ● **डॉ॰ कुँअर बेचैन**	200.00
अक्षर हूँ मैं (कविताएँ) ● **डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल**	150.00
सन्नाटे में गूँज (ग़ज़ल-संग्रह) ● **डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल**	200.00
भीतर शोर बहुत है (ग़ज़ल-संग्रह) ● **डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल**	200.00
मौसम बदल गया कितना (ग़ज़ल-संग्रह) ● **डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल**	200.00
रोशनी बनकर जिओ (ग़ज़ल-संग्रह) ● **डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल**	200.00
शिकायत न करो तुम (ग़ज़ल-संग्रह) ● **डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल**	200.00
आदमी है कहाँ (ग़ज़ल-संग्रह) ● **डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल**	200.00
प्रतिनिधि ग़ज़लें ● **डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल**	200.00
मान भी जा छुटकी ● **गीतिका गोयल**	150.00
आदमी के हक़ में (ग़ज़ल-संग्रह) ● **रामगोपाल भारतीय**	100.00
यहाँ तक वहाँ से (कविताएँ) ● **रमेश कौशिक**	200.00
हास्य नहीं व्यंग्य (कविताएँ) ● **रमेश कौशिक**	150.00
मातृभूमि के लिए ● **रमेश पोखरियाल 'निशंक'**	200.00
संघर्ष जारी है ● **रमेश पोखरियाल 'निशंक'**	170.00
जीवन-पथ में ● **रमेश पोखरियाल 'निशंक'**	150.00
देश हम जलने न देंगे ● **रमेश पोखरियाल 'निशंक'**	150.00
तुम भी मेरे साथ चलो ● **रमेश पोखरियाल 'निशंक'**	150.00
समय के भूगोल में ● **राजेंद्र मिश्र**	200.00
असाबिया ● **राजेंद्र मिश्र**	200.00
आठवाँ राग ● **राजेंद्र मिश्र**	200.00
हवाएँ खामोश हैं ● **राजेंद्र मिश्र**	200.00
झरनों का तराना है ● **लक्ष्मी खन्ना सुमन**	200.00
अहसासों के ताने-बाने ● **लक्ष्मी खन्ना सुमन**	200.00
उजियारा आशाओं का ● **तारा प्रकाश**	150.00
बुलंदी इरादों की ● **तारा प्रकाश**	150.00
चलने से मंज़िल मिलती है ● **तारा प्रकाश**	200.00
इंद्रधनुष ● **तारा प्रकाश**	200.00
संवेदनाओं के रंग ● **तारा प्रकाश**	200.00
तारा प्रकाश समग्र ● **तारा प्रकाश**	600.00
शमा हर रंग में जलती है ● **रामेश्वरप्रसाद**	150.00

गांधारी का सच (खंडकाव्य) • **आर्यभूषण गर्ग**	200.00
राधेय (खंडकाव्य) • **डॉ॰ आकुल**	120.00
असित चंद्र : अवदात चंद्रिका (काव्य-नाटक) • **डॉ॰ आकुल**	120.00
ज़िंदगी गाती तो है/(ग़ज़ल-संग्रह) • **डॉ॰ आकुल**	120.00
आसमान मेरा भी है (ग़ज़ल-संग्रह) • **किशनस्वरूप**	100.00
बूँद-बूँद सागर मैं (ग़ज़ल-संग्रह) • **किशनस्वरूप**	100.00
आँचल-आँचल खुशबू (ग़ज़ल-संग्रह) • **कर्नल तिलकराज**	100.00
ज़ख़्म खिलने को हैं (ग़ज़ल-संग्रह) • **कर्नल तिलकराज**	100.00
हिरना लौट चलें (गीत-संग्रह) • **शचींद्र भटनागर**	150.00
तिराहे पर (ग़ज़ल-संग्रह) • **शचींद्र भटनागर**	150.00
ढाई आखर प्रेम के (गीत-संग्रह) • **शचींद्र भटनागर**	200.00
अखंडित अस्मिता (मुक्तक) • **शचींद्र भटनागर**	200.00
सुरों के ख़त • **अश्विनीकुमार 'विष्णु'**	100.00
सुनहरे मंत्र का जादू • **अश्विनीकुमार 'विष्णु'**	100.00
सुनते हुए ऋतुगीत • **अश्विनीकुमार 'विष्णु'**	150.00
सुबह की अंगूठी • **अश्विनीकुमार 'विष्णु'**	150.00
सफ़र में साथ-साथ (मुक्तक-संग्रह) • **डॉ॰ मीना अग्रवाल**	150.00
जो सच कहे (हाइकु-संग्रह) • **डॉ॰ मीना अग्रवाल**	150.00
यादें बोलती हैं (कविताएँ) • **डॉ॰ मीना अग्रवाल**	200.00
गुलमुहर की छाँव में (ग़ज़ल-संग्रह) • **मनोज अबोध**	100.00
मेरे भीतर महक रहा है (ग़ज़ल-संग्रह) • **मनोज अबोध**	150.00
अग्निसुता • **राजेंद्र शर्मा**	150.00
सीतायनी • **डॉ॰ शंकर क्षेम**	150.00
गंगापुत्र भीष्म : शर-शैया से • **डॉ॰ शंकर क्षेम**	150.00
एक मुट्ठी धूप • **नीरजा सिंह**	100.00
कटे हाथों के हस्ताक्षर • **डॉ॰ कमल मुसद्दी**	150.00
फ़ासले मिट जाएँगे (ग़ज़ल-संग्रह) • **डॉ॰ बलजीत सिंह**	150.00
शब्द-शब्द संदेश (दोहे) • **डॉ॰ बलजीत सिंह**	150.00
जीवन है मुस्कान (दोहे) • **डॉ॰ बलजीत सिंह**	150.00
भीतर का संगीत (दोहे) • **डॉ॰ बलजीत सिंह**	200.00
सुख के बिरवे रोप (दोहे) • **डॉ॰ बलजीत सिंह**	200.00
इंद्रधनुष के रंग (दोहे) • **डॉ॰ बलजीत सिंह**	200.00
प्यार के गुलाल से (हाइकु) • **डॉ॰ बलजीत सिंह**	200.00
हारना हिम्मत नहीं (मुक्तक) • **डॉ॰ बलजीत सिंह**	200.00

बहती नदी हो जाइए (ग़ज़लें) • **डॉ॰ योगेंद्रनाथ शर्मा 'अरुण'** 150.00
अँधियारों से लड़ना सीखें (ग़ज़लें) • **डॉ॰ योगेंद्रनाथ शर्मा 'अरुण'** 200.00
जीवन-अमृत : पर्यावरण चेतना (दोहा-संग्रह) • **डॉ॰ योगेंद्रनाथ शर्मा 'अरुण'** 200.00
अक्षर-अक्षर हो अमर (दोहा-संग्रह) • **डॉ॰ योगेंद्रनाथ शर्मा 'अरुण'** 200.00
वैदुष्यमणि विद्योत्तमा (खंडकाव्य) • **डॉ॰ योगेंद्रनाथ शर्मा 'अरुण'** 200.00
अनजाने आकाश में • **महेशचंद्र द्विवेदी** 170.00
बातें कुछ अनकही • **सत्येंद्र गुप्ता** 200.00
मैंने देखा है • **सत्येंद्र गुप्ता** 200.00
हौसला तो है • **सत्येंद्र गुप्ता** 200.00
ज़िंदगी रुकती नहीं • **सत्येंद्र गुप्ता** 200.00
जज़्बात की धूप • **धूप धौलपुरी** 250.00
मैं एक समुद्र • **डॉ॰ तारादत्त 'निर्विरोध** 200.00
आड़ी-तिरछी यादों-सा कुछ • **नवलकिशोर शर्मा** 180.00
जब चाँद डूब रहा था • **नवलकिशोर शर्मा** 200.00
एड्स शतक • **पूरणसिंह सैनी** 150.00
श्रीगोगाचरित (महाकाव्य) • **पूरणसिंह सैनी** 300.00
खोजें जीवन सत्य (दोहे) • **डॉ॰ ओमदत्त आर्य** 150.00
अपनी एक लकीर (दोहे) • **डॉ॰ ओमदत्त आर्य** 200.00
राष्ट्र-शक्ति • **सलेकचंद संगल** 150.00
माँ तुझे प्रणाम • **सलेकचंद संगल** 150.00
लहरों के विरुद्ध • **डॉ॰ रामप्रकाश** 200.00
हर वृक्ष महाबोधि नहीं होता • **महेंद्र कुमार** 200.00
पीड़ा का राजमहल • **डॉ॰ उर्मिला अग्रवाल** 200.00
उड़ान जारी है • **विनोद भृंग** 200.00
सूर्यनगर की चाँदनी • **रामेश्वर वैष्णव** 150.00
कहता कुछ मौन (हाइकु-संग्रह) • **हरिराम पथिक** 200.00
धनुषभंजक राम • **चंद्रवीरसिंह गहलौत 'बेदाग'** 200.00
कविताएँ फेसबुक से • **लालित्य ललित** 200.00
एक कुल्हड़ चाय • **स्वर्ण ज्योति** 200.00
रात • **दामोदर खड़से** 200.00

आत्मकथा-संस्मरण, साक्षात्कार, पत्र

मेरा जीवन : ए-वन • **काका हाथरसी** 300.00
आमिर खान : हिंदी सिनेमा के सेवक • **धर्मेन्द्र उपाध्याय** 250.00
आत्मसरोवर • **ओम्प्रकाश अग्रवाल** 125.00

निष्ठा के शिखर-बिंदु • **नीरजा द्विवेदी**	200.00
स्विट्ज़रलैंड के वे 21 दिन • **नीरजा द्विवेदी**	200.00
सफ़र साठ साल का • **डॉ॰ अजय जनमेजय (सं)**	400.00
यादों की गुल्लक • **गीतिका गोयल, डॉ॰ अनुभूति (संपादक)**	300.00
आधी हक़ीक़त आधा फ़साना • **डॉ॰ बलजीतसिंह**	150.00
मेरे साक्षात्कार • **डॉ॰ बालशौरि रेड्डी**	250.00
संवाद : साहित्यकारों से • **डॉ॰ गंगाप्रसाद गुप्त 'बरसैंया'**	200.00
उत्तरोत्तर • **डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल (संपादक)**	250.00
श्रद्धांजलि • **डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल (संपादक)**	250.00

बाल-साहित्य

धरती पर चाँद (पुरस्कृत) • **शंभूनाथ तिवारी**	150.00
हम बगिया के फूल (बालगीत) • **डॉ॰ बलजीतसिंह**	150.00
आओ गीत सुनाओ गीत (बालगीत) • **डॉ॰ बलजीतसिंह**	150.00
छुट्टी के दिन बड़े सुहाने (बालगीत) • **डॉ॰ बलजीतसिंह**	200.00
दिन बचपन के (बालगीत) • **डॉ॰ बलजीतसिंह**	200.00
जादूगर बादल (बालगीत) • **विनोद भृंग**	150.00
आटे-बाटे दही चटाके (शिशुगीत) • **बालकृष्ण गर्ग**	150.00
चुनमुन की कहानियाँ (पुरस्कृत) • **गीतिका गोयल**	200.00
बातूनी कहानियाँ • **गीतिका गोयल**	200.00
किशोर मन की कहानियाँ • **डॉ॰ सरला अग्रवाल**	150.00
चलो आकाश को छू लें • **डॉ॰ तारादत्त निर्विरोध**	200.00
मानव-विकास की कहानी • **डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल**	200.00
पार्टी गेम्स • **चाँदनी कक्कड़**	125.00
कागज की नाव • **डॉ॰ सरोजनी कुलश्रेष्ठ**	150.00
गधा बत्तीसी • **लक्ष्मी खन्ना 'सुमन'**	200.00
ईनी-मीनी की मजेदार दुनिया • **लक्ष्मी खन्ना 'सुमन'**	200.00
कविताओं में पंचतंत्र • **लक्ष्मी खन्ना 'सुमन'**	250.00
छुटके-मुटके जंगल में • **लक्ष्मी खन्ना 'सुमन'**	200.00
नन्हे-मुन्ने गीत सुहाने • **लक्ष्मी खन्ना 'सुमन'**	200.00

विविध

उत्तराखंड में आध्यात्मिक पर्यटन • **डॉ॰ सरिता शाह** • **निश्तर ख़ानक़ाही, डॉ॰ गिरिराजशरण, डॉ॰ मीना अग्रवाल**	200.00
पर्यावरण : दशा और दिशा (पुरस्कृत)	300.00
नारी : कल और आज	300.00

● **निश्तर ख़ानक़ाही, डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल**

विश्व आतंकवाद : क्यों और कैसे	125.00
हिंसा : कैसी-कैसी	200.00
दंगे : क्यों और कैसे	250.00

● **रमेशचंद्र दीक्षित, निश्तर ख़ानक़ाही, डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल**

मानवाधिकार : दशा और दिशा (पुरस्कृत)	300.00
अपराध-अपराधी : अन्वेषण एवं अभियोजन ● **डॉ॰ गिरिराज शाह**	200.00
गुरु नानकदेव ● **डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल**	200.00
अमृतवाणी ● **डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल**	300.00
आप भी तनावमुक्त हो सकते हैं ● **डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल**	250.00
वेद-वेदान्त दर्शन ● **डॉ॰ मूलचन्द दालभ**	300.00
प्रकृति : एक ज्ञेय तत्त्व ● **डॉ॰ मूलचन्द दालभ**	300.00
कन्हैया गीता ● **डॉ॰ मूलचन्द दालभ**	900.00
टास्कफोर्स : हैल्थकेयर प्रोजेक्ट्स ● **डॉ॰ गोविंद शर्मा एवं रवि लंगर**	450.00
सिद्धाश्रम का संन्यासी ● **मनोज भारद्वाज**	300.00
समुद्री दैत्य सुनामी ● **डॉ॰ लालबहादुर रावल**	300.00
Ecosystem in The Central Himalyas ● **Dr.Vikram Singh IPS**	200.00

अपना आदेश निम्नलिखित पते पर भेजें

हिंदी साहित्य निकेतन

16 **साहित्य विहार, बिजनौर (उ॰प्र॰)**

फोन : 01342-263232, 0124-4076565

09557746346, 07838090732